विद्याविलास-ग्रन्थमालाया (२२) द्वाविंश पुष्पम्

श्रीव्यासमुनिप्रणीतम्—

एकादशीमाहात्म्यम्

'हरिप्रिया' हिन्दीटीकोपेतम्

टीकाकार —
पण्डित श्रीप्रेमदत्तशर्मा साहित्यशास्त्री



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

वि० स० २०१५] सुलभ संस्करण ३) राज संस्करण ४) College Section [ई. १९५८

प्रकाशकः—
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,
पो० बाक्स नं० ८, वाराणसी–१

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
Post Box 8, Varanasi–1

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस, वाराणसी–१

समर्पणम्



यः सर्वशिष्यजनचर्चितपादपद्मः, विद्वद्गुणैरखिलपण्डितवृन्दवन्द्यः ।
आनन्दधामपरमो गुरुदेव-देवः, तस्मै नमः कृतिमिमां च समर्पयामि ॥ १ ॥

सर्वज्ञाय त्वनन्ताय वेदविद्याशरीरिणे । समर्प्यतेकृतिरियं परमानन्दाय शास्त्रिणे ॥ २ ॥

—प्रेमदत्त शर्मा

आमुख

परमकृपालु स्वपितृव्य कर्मकांडी श्री पं० मुरारीलाल शर्मा ज्योतिषी जी की असीम अनुकम्पा से श्री पं० रामचन्द्र शर्मा गौड़ के सुपुत्र श्री पं० प्रेमदत्त शास्त्री ने अत्यधिक परिश्रम से 'एकादशीमाहात्म्य' का विधिवत् सम्पादन करके उसकी जो हिन्दी टीका की है वह प्रशंसनीय है।

अब तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उन सभी में मूल पाठ एवं अनुवाद सम्बन्धी कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। उन सभी त्रुटियों का परिमार्जन इस सस्करण में कर दिय गया है।

प्रस्तुत संस्करण की भापा भी बहुत सरल तथा ओजपूर्ण और सर्वसाधारण के लिए बहुत उपयोगी है। इसकी एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने पास रखनी चाहिए जिससे कि प्राचीन सनातन धर्म की रक्षा होती रहे। आशा है कि विद्वज्जन पुस्तक का आदर कर लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे और त्रुटियों को शुद्ध करके सूचित करेंगे।

'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' के अध्यक्ष श्रीयुत श्रेष्ठिप्रवर वावू जयकृष्ण दास जी गुप्त को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने बड़े प्रेम और श्रद्धा से इस पुस्तक का प्रकाशन कर जनता को विशेप लाभ पहुँचाया है। जगत्पिता परमात्मा से सानुरोध प्रार्थना है कि वह आपकी सर्व प्रकार से उन्नति करे और सदा धार्मिक कार्यों में आपकी वुद्धि को लगाये रखे। इति शम्।

श्री श्री महामहोत्सव
सवत् २०१५

विनीत —
वालमुकुन्द ओझा मंत्रशास्त्री
जहाँगीरावाद (वुलन्दशहर)

अथैकादशीमाहात्म्यप्रारम्भः



ध्यात्वा हृदीह गणनायकमेकदेवम्, स्मृत्वा कृपा गुरुवरस्य मनस्यमोघाम्। पाप-प्रणाशनफला पठन-श्रुताभ्याम्, भाषा करोमि रुचिरा जनमोदनाय ॥ १ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियोसे कहते हैं कि हे ऋषियो! मैं एकादशी माहात्म्यको कहता हूँ। तुम इसे ध्यानपूर्वक सुनो। बारह महीनोमे २४ एकादशियाँ होती हैं और दो शुभ अधिक मासमे होती हैं ॥ १ ॥ इस प्रकार ये सब मिलकर २६ एकादशियाँ

अथ एकादशीनामानि

श्रीगणेशाय नमः। सूत उवाच। अथ द्वादशमासेषु एकादश्यो भवन्ति याः। अधिके मासि चाप्यन्ये ये च द्वे भवतः शुभे ॥ १ ॥ एवं षड्विंशसंख्याका एकादश्यो भवन्ति हि। तासां नामान्यहं वच्मि शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ २ ॥ उत्पन्ना मोक्षदा चापि सफला पुत्रदा तथा। षट्तिलाख्या जयाख्या च विजयाऽऽमलकीति च ॥ ३ ॥

होती हैं। इनके नाम मैं बतलाता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥ उत्पन्ना, मोक्षदा, सफला, पुत्रदा, षट्तिला, जया, विजया, आमलकी ॥ ३ ॥

पापमोचनी, कामदा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी ॥ ४ ॥ देवशयनी, पुत्रदा, पवित्रा, अजा, परिवर्तिनी, इन्दिरा, पाशांकुशा, रमा ॥ ५ ॥ देवोत्थानी, ये २४ नामोंसे कही गई हैं। और पद्मिनी तथा परमा ये दो अधिक मासमे होती हैं ॥ ६ ॥ इनके जैसे नाम हैं वैसे ही गुण भी हैं ये अपने अपने नामके अनुसार निश्चय ही फलको देने-

पापमोचनिकाख्या च कामदा च वरूथिनी। मोहिनी चापराख्या च निर्जला योगिनी तथा ॥४॥
विष्णोर्देवस्य शयनी पवित्रा पुत्रदा त्वजा। परिवर्तिनीन्दिराख्या तथा पाशांकुशा रमा ॥ ५ ॥
देवोत्थानीति च प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिनामभिः। द्वे चाप्यधिकमासस्य पद्मिनी परमेति च ॥ ६ ॥
अन्वर्थानि च नामानि सर्वासां विद्धि निश्चितम्। तद्धि सर्वं कथाभिस्तु स्फुटतां यास्यति ध्रुवम् ॥ ७ ॥
व्रतमुद्यापनं चासां यदि कर्तुं न शक्नुयात्। तदा संकीर्त्तनान्नाम्नां सद्यस्तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

वाली हैं। यह वात इन सबकी कथा सुननेसे अवश्य ही स्पष्ट हो जायगी ॥ ७ ॥ यदि मनुष्य इन एकादशियोंके व्रत तथा उद्यापन करनेको समर्थ न हो तो इनके नामोंके कीर्त्तन मात्रसे ही शीघ्र उनके फलोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥

इति एकादशीनामानि

मार्गशीर्ष कृष्णमे होनेवाली उत्पन्नाको प्रथम कहता हूँ। सूतजी कहते हैं—हे ब्राह्मणो! पूर्व कालमे श्रीकृष्णजीने प्रेमके साथ युधिष्ठिरादिके प्रति उत्तम व्रतको कहा है, जो पुरुष इसको पृथ्वीपर प्रयत्नसे करेगा ॥ १ ॥ वह अनेक भोगोंको भोगकर विष्णु-लोकको जायगा। अर्जुन बोले—हे कृष्ण! उपवास और रात्रिमे भोजन तथा विना माँगे जो मिल जाय उसके भोजनका

अथ मार्गकृष्णैकादशीव्रतमाहात्म्यम्

सूत उवाच । एवं प्रीत्या पुरा विप्राः श्रीकृष्णेन परं व्रतम् । कथितं तत्प्रयत्नेन यः कुर्याद्भुवि मानवः ॥ १ ॥ भुक्त्वा भोगाननेकांस्तु विष्णुलोकं प्रयाति सः । पार्थ उवाच । उपवासस्य नक्तस्य तथैवायाचितस्य भोः । किं पुण्यं किं विधानं हि ब्रूहि सर्वं जनार्दन ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच । हेमन्ते चैव संप्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे । शुक्लपक्षे तथा पार्थ एकादश्यामुपोष्य च ॥ ३ ॥ दशम्यां चैव यत् किंचित् यः कुर्यात्सुदृढं व्रतम् । नक्तं च तद्दिने कृत्वा दशम्यां दन्तधावनम् ॥ ४ ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे । तत्र नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥ ५ ॥ ततः प्रभातसमये

क्या पुण्य और क्या विधान है वह सब मुझसे कहिये ॥२॥ कृष्णजी बोले—हे पार्थ! हेमन्त ऋतुके आनेपर कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमे एकादशीके दिन व्रत करे॥३॥ दशमीके दिन कुछ दृढ़ व्रत करके रात्रिके समय दाँतुन करे॥४॥ और दिनके आठवें भागमे सूर्यके मन्द हो जानेपर यदि रात्रिका समय होवे तो रात्रिमे भोजन न करे ॥५॥ हे पार्थ! इसके बाद प्रातःकाल संकल्प करके नियमोको करे।

और मध्याह्न समयमे शुद्ध सावधान होकर स्नान करे ॥ ६ ॥ नदीमें, तालावमे अथवा वावडीमें स्नान करे जो क्रमसे उत्तम, मध्यम और अधम हैं। तथा इनके अभावमे कुएँपर ही स्नान करना ठीक है ॥ ७ ॥ हे भूमि! तू अश्वसे, रथसे और विष्णुसे आक्रान्त है। अतः हे मृत्तिके! मेरे पूर्व जन्ममें किये हुए पापोंको दूर कर ॥ ८ ॥ तेरे द्वारा नष्ट किये गये पापोंसे मैं परम-गतिको प्राप्त हो

संकल्प्य नियमांश्चरेत्। मध्याह्ने च तथा पार्थ शुचिः स्नातः समाहितः ॥ ६ ॥ नद्यां तडागे वाप्यां वा उत्तमं मध्यमं त्वधः। क्रमाज्ज्ञेयं तथा कूपे तदभावे प्रशस्यते ॥७॥ अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥ ८ ॥ त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम्। अनेन मृत्तिकास्नानं विदधीत व्रती नरः ॥ ९ ॥ नालपेत् पतितैश्चौरैस्तथा पाखण्डिभिः सह। मिथ्यापवादिनो देववेदब्राह्मणनिन्दकान् ॥ १० ॥ अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागामिनस्तथा। परद्रव्यापहृतश्चैव देवद्रव्यापहारिणः ॥ ११ ॥ न सम्भाषेत दृष्ट्वाऽपि भास्करं चावलोकयेत्। ततो

जाऊँगा। इस मन्त्रसे व्रत करनेवाला मनुष्य शरीरमे मिट्टी लगावे ॥ ९ ॥ पतित, चोर और पाखंडियोंसे वात न करे। तथा झूठा अपवाद लगानेवाले, देवता, वेद और ब्राह्मणोंकी निंदा करनेवाले ॥ १० ॥ तथा अन्य दुराचार करनेवाले और अगम्या अर्थात् माता, वहन आदिमे गमन करनेवाले, दूसरेका धन हरनेवाले और देवताके धनको हरण करनेवालोंसे ॥ ११ ॥ वातचीत न करे।

यदि इनमेसे किसीको देख ले तो सूर्यका दर्शन करे और इसके बाद नैवेद्य (मिष्ठान्न) आदिसे आदरसहित गोविन्द भगवान्‌की पूजा करे ॥ १२ ॥ भक्तियुक्त चित्तसे घरमें दीपक जलावे, और हे अर्जुन ! उस दिन व्रत करनेवाला निन्दा और मैथुन न करे तथा गीत और कीर्त्तन आदिके आनन्दसे दिन और रात्रिको व्यतीत करे ॥ १३ ॥ रात्रिमें भक्तिके साथ जागरण करके ब्राह्मणोंको

गोविंदमभ्यर्च्य नैवेद्यादिभिरादरात् ॥ १२ ॥ दीपं दद्याद्गृहे चैव भक्तियुक्तेन चेतसा । तद्दिने वर्जयेत् पार्थ निन्दां मैथुनमेव च । गीतशास्त्रविनोदेन दिवारात्रं नयेद्व्रती ॥ १३ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा । विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ १४ ॥ यथा शुक्ला तथा कृष्णा मान्या वै धर्मतत्परैः । एकादश्योर्द्वयो राजन् विभेदं नैव कारयेत् ॥ १५ ॥ एवं हि कुरुते यस्तु शृणु तस्यापि यत्फलम् । शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥ १६ ॥ एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् । व्यतीपाते च दानस्य लक्षमेकं फलं स्मृतम् ॥ १७ ॥

प्रणाम करे, तथा दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! धर्मात्मा पुरुषोंको शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षोंकी एकादशी समान ही समझनी चाहिये, दोनोंमे किसी प्रकारका भेद न रखना चाहिए ॥ १५ ॥ इस प्रकार व्रत करनेके फलको सुनो, शंखोद्धार क्षेत्रमे स्नान करके गदाधर भगवान्‌के दर्शनका जो फल होता है ॥ १६ ॥ वह एकादशी व्रतके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं है ।

चाहिए ॥ २९ ॥ हे अर्जुन ! तुम मुझसे पूछते हो इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ—कि व्रतमे नखोंसे जल न पीवे, मछली तथा सूअरोंको न मारे, और एकादशीको भोजन न करे ॥ ३० ॥ यह सब व्रतोंमें उत्तम व्रत तुझसे कहा है क्योंकि सहस्र यज्ञ भी एकादशीके समान नहीं हैं ॥ ३१ ॥ अर्जुन बोले—हे देव ! आपने एकादशी सब तिथियोंमें पवित्र कैसे बतलाई है सो कहिये, श्रीकृष्ण

एकादश्यां न भुञ्जीत यन्मां त्वं पृच्छसेऽर्जुन ॥ ३० ॥ एतत्ते कथितं सर्वं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । एकादशीसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम् ॥ ३१ ॥ अर्जुन उवाच । उक्ता त्वया कथं देव पुण्येयं सर्वतस्तिथिः । श्रीकृष्ण उवाच । पुरा कृतयुगे पार्थ मुरुनामा हि दानवः । अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेवभयंकरः ॥ ३२ ॥ इन्द्रो विनिर्जितस्तेन ह्यत्युग्रेण च पांडव । इन्द्रेण कथितः सर्वो वृत्तांतः शंकराय वै ॥ ३३ ॥ सर्वलोकपरिभ्रष्टा विचरामो महीतले । उपायं ब्रूहि मे देव त्रिदशानां तु का गतिः ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच । देवराज सुरश्रेष्ठ यत्रास्ति गरुडध्वजः । शरण्यश्च जगन्नाथः

बोले—हे अर्जुन ! पहले सतयुगमे एक मरु नामका दैत्य था । जो बड़ा अद्भुत, महाभयानक और सब देवताओंको भय देनेवाला था ॥ ३२ ॥ हे पांडव ! उस प्रतापी दैत्यने इंद्रको भी जीत लिया था । इसके बाद इंद्रने सब वृत्तान्त शंकरजीसे कहा ॥ ३३ ॥ कि हे देव ! हम सब अपने लोकसे भ्रष्ट होकर भूमिपर विचर रहे हैं, अतः इसका मुझे उपाय बतलाइये कि देवताओंकी क्या गति होवेगी ॥ ३४ ॥ तब महादेवजी बोले—हे देवराज इन्द्र ! शरणागत रक्षक, जगत्पति और सबके रक्षक भगवान् विष्णु

जहाँ रहते हैं ॥ ३५ ॥ वहाँ हम सब चलते हैं, वे भगवान् विष्णु हमारा कार्य अवश्य करेंगे। शिवजीके वचन सुनकर महामना इन्द्रजी ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण गण और मरुद्गणोंके सहित शिवजीको आगे करके वहाँ गये जहाँपर भगवान् विष्णु शयन कर रहे थे ॥ ३७ ॥ जलके अन्दर सोते हुए भगवान् विष्णुको देखकर शंकरजी हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ कि हे

परित्राणपरायणः ॥ ३५ ॥ तत्र गच्छामहे सर्वे स नः कार्यं विधास्यति । ईशस्य वचनं श्रुत्वा देवराजो महामनाः ॥ ३६ ॥ पुरस्कृत्य महादेवं सगणं समरुद्गणम् । यत्र देवो जगन्नाथः प्रसुप्तो हि जनार्दनः ॥ ३७ ॥ जलमध्ये प्रसुप्तं तु दृष्ट्वा देवं जगत्पतिम् । कृतांजलिपुटो भूत्वा रुद्रः स्तोत्रमुदीरयत् ॥३८॥ ॐ नमो देवदेवाय देवदेवैः सुवंदित । दैत्यारे पुंडरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन ॥ ३९ ॥ दैत्यभीता इमे देवा मया सह समागताः । शरणं त्वं जगन्नाथ त्वं कर्ता त्वं च कारकः ॥ ४० ॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता । त्वं स्थितिस्त्वं तथोत्पत्तिस्त्वं च संहारकारकः ॥ ४१ ॥

देवताओंके भी देव! तुमको प्रणाम करते हैं, हे देवताओंसे वन्दित! हे दैत्योंका विनाश करनेवाले! हे पुण्डरीकाक्ष! हे मधुसूदन! तुम हमारी रक्षा करो ॥ ३९ ॥ हे देव! दैत्योंसे डरे हुए ये देवता मेरे साथ आये हैं, अतः तुम ही रक्षा करनेवाले, जगत्के पति, जगत्के कर्त्ता हो और करवानेवाले भी तुम ही हो ॥४०॥ और तुम ही सब लोकोंकी माता तथा जगत्के पिता हो, और तुम

ही जगत्को पैदा करनेवाले, पालन करनेवाले और विनाश करनेवाले हो ॥ ४१ ॥ हे प्रभो! तुम ही देवताओंके सहायक हो, और तुम ही उनको शान्ति देनेवाले हो, तुम ही पृथिवी, तुम ही आकाश और तुम ही विश्वका उपकार करनेवाले हो ॥ ४२ ॥ तुम ही शिव हो, तुम ही स्वयं ब्रह्मा हो, और तीनों लोकोका पालन करनेवाले विष्णु भी तुम ही हो। तुम ही सूर्य, चन्द्रमा और

सहायस्त्वं च देवानां त्वं च शांतिकरः प्रभो । त्वं धरा च त्वमाकाशः सर्वविश्वोपकारकः ॥४२॥
भवस्त्वं च स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्यप्रतिपालकः । त्वं रविस्त्वं शशांकश्च त्वं च देवो हुताशनः ॥ ४३ ॥
हव्यं होमो हुतस्त्वं च मंत्रतंत्रर्त्विजो जपः । यजमानश्च यज्ञस्त्वं फलभोक्ता त्वमीश्वरः ॥ ४४ ॥
न त्वया रहितं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे । भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल ॥ ४५ ॥
त्राहि त्राहि महायोगिन् भीतानां शरणं भव । दानवैर्निर्जिता देवाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ॥ ४६ ॥

अग्नि हो ॥ ४३ ॥ तुम ही हव्य (साकल्य), तुम ही होम तथा तुम ही हुत हो, मंत्र-तंत्र, ऋत्विज्, जप, यज्ञ और इनके फलोंको भोगनेवाले ईश्वर भी तुम्हीं हो ॥ ४४ ॥ इन चराचर तीनों लोकोंमें तुमसे रहित कोई वस्तु नहीं है। हे भगवान्! हे देवताओंके भी देव! तुम शरणमें आये हुए जनोंकी रक्षा करनेवाले हो ॥ ४५ ॥ हे महायोगिन्! डरकर शरणमें आये हुए हम लोगोंकी रक्षा करो (अब तुम ही हमलोगोंके रक्षक हो)। हे प्रभो! दैत्योंने देवताओंको जीत कर उन्हें स्वर्गसे भ्रष्ट कर दिया है ॥ ४६ ॥

हे जगन्नाथ ! अपने स्थानसे भ्रष्ट हुए देवता पृथ्वीपर विचर रहे है । शिवजीके ऐसे वचन सुनकर विष्णु भगवान् बोले—॥ ४७ ॥ वह कौनसा मायावी दैत्य है जिसने देवताओंको जीत लिया है। उसका कौनसा स्थान है, क्या नाम है, कैसा बल है और वह कहाँ रहता है ॥ ४८ ॥ हे इन्द्र ! तुम निडर हो करके सब वृत्तान्त सुनाओ । इन्द्र बोले—कि हे देवताओंके भी देव ! हे भक्तोंपर कृपा

स्थानभ्रष्टा जगन्नाथ विचरंति महीतले। रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥४७॥ श्रीभगवानुवाच । कोऽसौ दैत्यो महामायो देवा येन विनिर्जिताः । किं स्थानं तस्य किं नाम किं बलं कस्तदाश्रयः ॥४८॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व मघवन्निर्भयो भव । इन्द्र उवाच । भगवन्देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ॥ ४९ ॥ दैत्यः पूर्वं महानासीन्नाडीजंघ इति स्मृतः । ब्रह्मवंशसमुद्भूतो महोग्रः सुरसूदनः ॥ ५० ॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातो मुरनामा महासुरः । तस्य चन्द्रावती नाम नगरी च गरीयसी ॥ ५१ ॥ तस्यां वसन्स दुष्टात्मा विश्वं निर्जित्य वीर्यवान् । सुरान् स वशमानिन्ये निराकृत्य त्रिविष्टपात् ॥ ५२ ॥

करनेवाले ! आप सुनें ॥ ४९॥ पहले नाड़ीजंघ नामका दैत्य था जिसने ब्रह्म वंशमें उत्पन्न होकर अपनी उग्रतासे देवताओंको कष्ट पहुँचाया ॥ ५० ॥ उसका पुत्र अति प्रसिद्ध मुर नामका राक्षस था जिसकी चन्द्रावती नामकी बडी भारी नगरी थी ॥ ५१ ॥ उस नगरीमें रहते हुए उस दुष्टने अपने पराक्रमसे विश्वको जीतकर देवताओंको अपने वशमें करके स्वर्गसे निकाल बाहर किया ॥ ५२ ॥

हैमवती नामकी बड़ी सुन्दर गुफा है उस गुफामें महायोगी भगवान् सोनेके लिये घुस गये ॥ ६५ ॥ हे अर्जुन ! वह गुफा बारह योजन विस्तृत है और उसका एक ही द्वार है, उसमें मैं भयभीत होकर सो गया यह सत्य ही है ॥ ६६ ॥ हे अर्जुन ! मैं उस महायुद्धसे थक गया था इसलिये वह दानव मेरे पीछे लगा हुआ, उस गुफामे घुस गया ॥ ६७ ॥ उस दानवने मुझे सोते हुये देखकर

गुहा परमशोभना । तां प्रविश्य महायोगी शयनार्थं जगत्पतिः ॥ ६५ ॥ योजनद्वादशायामा एकद्वारा धनञ्जय । अहं तत्र प्रसुप्तोऽस्मि भयभीतो न संशयः ॥ ६६ ॥ महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽहं पाण्डुनन्दन । दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविवेश स तां गुहाम् ॥ ६७ ॥ प्रसुप्तं मां तदा दृष्ट्वाऽचिन्तयद्दानवो हृदि । हरिमेनं हरिष्येऽहं दानवानां क्षयावहम् ॥ ६८ ॥ एवं सुदुर्मतेस्तस्य व्यवसायं व्यवस्यतः । समुद्भूता ममाङ्गेभ्यः कन्यैका च महाप्रभा ॥ ६९ ॥ दिव्यप्रहरणा देवी युद्धाय समुपस्थिता । ईक्षिता दानवेन्द्रेण अरुणा पाण्डुनन्दन ॥ ७० ॥ युद्धं समाहिता तेन स्त्रिया तत्र प्रयाचितम् । तेनायुध्यत सा नित्यं तां

अपने हृदयमें विचार किया कि मैं दानवोंके नाश करनेवाले इस हरिको मारूंगा ॥ ६८ ॥ वह दैत्य इस प्रकारके विचारको कर ही रहा था कि उसी समय मेरे शरीरसे एक बड़ी कान्तिवाली कन्या उत्पन्न हो गई ॥ ६९ ॥ हे अर्जुन ! दिव्य अस्त्रोंको धारण करनेवाली देवी युद्धको तैयार हो गई, दैत्यराजने उस देवीको क्रोधसे लालवर्णकी देखी ॥ ७० ॥ वहाँ उस दैत्यने उस देवीसे युद्धकी

प्रार्थना की, उसके बाद देवीने नित्य उससे युद्ध किया और उसको देखकर वह दैत्य आश्चर्यको प्राप्त हो गया ॥ ७१ ॥ अति उग्र वज्रपात करनेवाली भयंकर इस देवीको किसने पैदा किया है, ऐसा कहकर वह दैत्य उस कन्याके साथ युद्ध करने लगा ॥ ७२ ॥ इसके बाद उस महादेवीने शीघ्र ही उस दैत्यके सब शस्त्रोंको काटकर, क्षणमें ही उसे रथहीन कर दिया ॥ ७३ ॥ बाहुयुद्ध करने

दृष्ट्वा विस्मयं गतः ॥ ७१ ॥ केनेयं निर्मिता रौद्रा अत्युग्राऽशनिपातिनी । इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ युयुधे कन्यया तया ॥ ७२ ॥ ततस्तया महादेव्या त्वरया दानवो बली । छित्वा सर्वाणि शस्त्राणि क्षणेन विरथः कृतः ॥ ७३ ॥ बाहुप्रहरणोपेतो धावमानो महाबलात् । तलेनाहत्य हृदये तया देव्या निपातितः ॥ ७४ ॥ पुनरुत्थाय सोऽधावत् कन्याहननकांक्षया । दानवं पुनरायान्तं रोषेणाहत्य तच्छिरः ॥ ७५ ॥ क्षणान्निपातयामास भूमौ तत्र महासुरम् । दैत्यः कृताशिराः सोऽथ ययौ वैवस्वतालयम् ॥ ७६ ॥ शेषा भयार्दिता दीनाः पातालं विविशुर्द्विषः । ततः समुत्थितो देवः पुरो दृष्ट्वाऽ-

के लिये दौड़े हुए उस दैत्यको देवीने बलपूर्वक छातीपर प्रहार करके गिरा दिया ॥ ७४ ॥ फिर वह उठकर कन्याको मारनेकी इच्छासे दौड़ा, फिर आये हुये उस दैत्यको देखकर देवीने उसका शिर काट दिया ॥ ७५ ॥ वहाँ क्षणमे ही देवीने उस दैत्यको पृथ्वीपर गिरा दिया । फिर वह सिर कटा हुआ दैत्य यमराजके लोकको चला गया ॥ ७६ ॥ बाकी बचे हुए असुर भयसे पीडित

होकर पातालको चले गये। इसके वाद भगवान् उठे और उन्होंने अपने आगे मरे हुए दैत्यको देखा ॥ ७७ ॥ अपने सामने
नम्रतासे हाथ जोड़कर खड़े हुये दैत्यको देखकर, आश्चर्यसे खिले हुये मुखवाले भगवान् देवीसे बोले ॥ ७८ ॥ जिसने देवता,
गंधर्व, इन्द्र और मरुद्गणके सहित सबको जीत लिया है उस दुष्ट दैत्यको युद्धमे किसने मारा है ॥ ७९ ॥ जिसने नागोंको

**सुरं हतम् ॥ ७७ ॥ कन्यां पुरः स्थितां चापि कृताञ्जलिपुटां नताम्। विस्मयोत्फुल्लवदनः प्रोवाच
जगतां पतिः ॥ ७८ ॥ केनायं निहतः संख्ये दानवो दुष्टमानसः। येन देवाः सगन्धर्वाः सेन्द्राश्च
समरुद्गणाः ॥ ७९ ॥ सनागाः सहलोकेशा लीलयैव विनिर्जिताः। येनाहं निर्जितो भूत्वा भीतः सुप्तो
गुहामिमाम् ॥ ८० ॥ कन्योवाच। मया विनिहतो दैत्यस्त्वदंशोद्भूतया प्रभो ॥ ८१ ॥ दृष्ट्वा सुप्तं
हरे त्वां तु यतो हन्तुं समुद्यतः। त्रैलोक्यकण्टकस्येत्थं व्यवसायं प्रबुध्य च ॥ ८२ ॥ हतो मया
दुरात्माऽसौ देवता निर्भयाः कृताः। श्रीभगवानुवाच। निहते दानवेन्द्रेऽस्मिन्सन्तुष्टोऽहं त्वयाऽनघे ॥८३॥**

लोकपालोंके सहित आसानीसे ही जीत लिया और जिससे भयभीत होकर मैं गुफामे सो गया ॥ ८० ॥ कन्या बोली—हे प्रभु !
तुम्हारे अंशसे पैदा हुई मुझ कन्याके द्वारा ही वह दैत्य मारा गया है ॥ ८१ ॥ हे भगवन् ! तुमको सोते हुए देखकर वह मारनेको
तैयार हो गया, इस प्रकार तीनों लोकोंको दुःख पहुँचानेवाले उस दैत्यका ऐसा विचार देखकर ॥ ८२ ॥ मैंने उस दुष्ट दैत्यको
मारकर देवताओंको निर्भय किया, भगवान् बोले—हे पापरहित देवी ! उस दैत्यके मारनेसे मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ ८३ ॥

देवता हृष्ट पुष्ट और आनन्दित हो गये, उनके आनन्दित होनेसे तीनों लोकोंमे आनन्द छा गया ॥८४॥ हे अनघे ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रते ! तू वर माँग। मैं तुझे ऐसा वर दूँगा जो देवताओंको भी दुर्लभ है ॥८५॥ कन्या बोली—हे देव ! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं व्रत करनेवाले मनुष्योंको महापापसे मुक्त कर सकूँ ॥ ८६ ॥ उपवासका जो फल होता है

हृष्टाः पुष्टाश्च वै देवा आनन्दः समजायत। आनन्दास्त्रिषु लोकेषु देवानां यस्त्वया कृतः ॥ ८४ ॥ प्रसन्नोऽस्म्यनघे तुभ्यं वरं वरय सुव्रते। ददामि तं न सन्देहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ८५ ॥ कन्योवाच। यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम। तारयेऽहं महापापादुपवासपरं नरम् ॥ ८६ ॥ उपवासस्य यत्पुण्यं तस्यार्द्धं नक्तभोजने। तदर्धं च भवेत्तस्य एकभुक्तं करोति यः ॥ ८७ ॥ यः करोति व्रतं भक्त्या दिने मम जितेन्द्रियः। स गत्वा वैष्णवं स्थानं कल्पकोटिशतानि च ॥ ८८ ॥ भुञ्जानो विविधान् भोगानुपवासी जितेन्द्रियः। भगवंस्त्वत्प्रसादेन भवत्वेष वरो मम ॥ ८९ ॥ उपवासं च नक्तं

उसका आधा फल रात्रिमे भोजन करनेवालेको होता है और उससे आधा फल दिनमे एक बार भोजन करनेवालेको होता है ॥८७॥ जो पुरुष भक्तिके साथ एकादशीके दिन जितेन्द्रिय होकर व्रत करता है वह विष्णुके स्थानमे पहुँचकर करोड़ों कल्प तक वास करता है ॥ ८८ ॥ जो इन्द्रियोंको जीतकर व्रत करता है वह अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता है। हे भगवन् ! आपकी कृपासे मुझे ऐसा ही वर प्राप्त होवे ॥ ८९ ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष एकादशीके दिन व्रत करे या केवल रात्रिमे ही भोजन करे अथवा

च एकभुक्तं करोति यः । तस्य धर्मं च वित्तं च मोक्षं देहि जनार्दन ॥ ९० ॥ श्रीभगवानुवाच । यत्त्वं
वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति । मम भक्ताश्च ये लोकास्तव भक्ताश्च ते नराः ॥ ९१ ॥ त्रिषु
लोकेषु विख्याताः प्राप्स्यन्ति मम सन्निधिम् । एकादश्यां समुत्पन्ना मम भक्तिपरायणा ॥ ९२ ॥ अत
एकादशीत्येवं तव नाम भविष्यति । दग्ध्वा पापानि सर्वाणि दास्यामि पदमव्ययम् ॥ ९३ ॥ तृतीया
चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी । एकादशी विशेषेण तिथयो मे महाप्रियाः ॥ ९४ ॥ सर्वतीर्थाधिकं
पुण्यं सर्वदानाधिकं फलम् । सर्वव्रताधिकं चैव सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ ९५ ॥ एवं दत्त्वा वरं तस्या-

दिनमें एक बार ही भोजन करे उसको आप धर्म, धन और मोक्ष देवें ॥ ९० ॥ श्रीभगवान् बोले—हे कल्याणि ! तू जैसा कहती है वैसा ही होवेगा, जो मनुष्य मेरे भक्त हैं वे तेरे भी भक्त हैं ॥ ९१ ॥ वे भक्त तीनों लोकोमें प्रसिद्ध होकर मेरे समीप आ जावेंगे, मेरी भक्तिमें तत्पर तू एकादशीके दिन पैदा हुई है ॥ ९२ ॥ इसलिये तेरा नाम एकादशी होवेगा, मैं व्रती पुरुषोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके उन्हें नाशरहित पद दूँगा ॥ ९३ ॥ तृतीया, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और एकादशी ये तिथियाँ मुझे विशेष करके अतिप्रिय हैं ॥ ९४ ॥ एकादशीका पुण्य सर्वतीर्थोंसे अधिक है और इसका फल सब दान और सब व्रतोंसे अधिक है यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥ ९५ ॥ इस प्रकार उस एकादशी (कन्या) को वर देकर भगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये, तत्पश्चात्

वह एकादशी तिथि हृष्ट पुष्ट हो गई ॥ ९६ ॥ हे अर्जुन ! जो मनुष्य इस एकादशीके व्रतको करेंगे, मैं उनके शत्रुओंको मारूँगा और उनको परमगति (मोक्ष) दूँगा ॥ ९७ ॥ और भी, जो मनुष्य एकादशीके महाव्रतको करेंगे, उनके विघ्नोंको मैं दूर करूँगा और उन्हे सर्वसिद्धि दूँगा ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! मैंने इस प्रकार एकादशीकी उत्पत्ति तुमको सुना दी । यह एकादशी नित्य- सब

स्तत्रैवान्तरधीयत । हृष्टा पुष्टा तु सा जाता तदा एकादशी तिथिः ॥ ९६ ॥ इमामेकादशीं पार्थ करिष्यन्ति नरास्तु ये । तेषां शत्रुं हनिष्यामि दास्यामि परमां गतिम् ॥ ९७ ॥ अन्येऽपि ये करिष्यन्ति एकादश्या महाव्रतम् । हरामि तेषां विघ्नांश्च सर्वसिद्धिं ददामि च ॥ ९८ ॥ एवमुक्ता समुत्पत्तिरेका-दश्याः पृथासुत । इयमेकादशी नित्या सर्वपापक्षयङ्करी ॥ ९९ ॥ एकैव च महापुण्या सर्वपापनिषूदनी । उदिता सर्वलोकेषु सर्वसिद्धिकरी तिथिः ॥ १०० ॥ शुक्ला वाप्यथवा कृष्णा इति भेदं न कारयेत् । कर्तव्ये उभये पार्थ न तुल्या द्वादशी तिथिः ॥ १०१ ॥ अन्तरं नैव कर्त्तव्यं समस्तैर्व्रतकारिभिः ।

पापोंको नष्ट करनेवाली है ॥ ९९ ॥ महापुण्यवाली, सब पापोंको हरनेवाली और सर्व सिद्धियोंको देनेवाली है । यह एक ही एकादशी तिथि तीनों भुवनोंमे पैदा हुई है ॥ १०० ॥ हे अर्जुन ! शुक्ला अथवा कृष्णा यह भेद नहीं करना चाहिये, व्रत दोनों पक्षोमे ही करना चाहिए, द्वादशीयुक्त एकादशी सबसे श्रेष्ठ है ॥ १०१ ॥ एकादशी व्रत करनेवालोंको इसमे अन्तर नहीं समझना

वे करोड़ों कल्प तक विष्णुलोकमे वास करते हैं और जो एकादशी माहात्म्यका एक पाद भी श्रवण करता है ॥ ११३ ॥

कल्पकोटिसमायुक्तो विष्णुलोके महीयते । एकादश्याश्च माहात्म्यं पादमेकं शृणोति यः ॥ ११३ ॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं नश्यते नात्र संशयः । विष्णुधर्मसमं नास्ति व्रतं नाम सनातनम् ॥ ११४ ॥

उसके ब्रह्महत्या आदि पाप निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं, वैष्णवधर्म के समान कोई प्राचीन व्रत नहीं है ॥ ११४ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मार्गशीर्षकृष्णैकादशीमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥ १ ॥



अथ मार्गशीर्षशुक्लैकादशीव्रतमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । वन्दे विष्णुं प्रभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखप्रदम् । विश्वेशं विश्वकर्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ पृच्छामि देवदेवेश संशयोऽस्ति महान् मम । लोकानां तु हितार्थाय पापानां च क्षयाय

युधिष्ठिर बोले—मैं साक्षात् तीनों लोकोंको सुख देनेवाले, जगत्पति और जगत्के कर्त्ता पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको नमस्कार करता हूँ ॥१॥ हे देवताओंके देव ! मुझे बड़ा भारी सन्देह है अतः संसारकी भलाई की इच्छासे पापोंके क्षयके लिए आपसे

पूछता हूँ ॥ २ ॥ मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है और उसकी क्या विधि है और उसमें किस देवताका पूजन होता है ॥ ३ ॥ हे स्वामिन्! यह मुझसे विस्तारपूर्वक ठीक-ठीक कहियेगा। श्री भगवान् बोले—हे राजन्! तुमने यह अच्छा प्रश्न किया, इसीसे संसारमे तुम्हारी विमल कीर्ति है ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र! मैं तुमसे उत्तम हरिवासरको कहूँगा। शुक्लपक्ष

च ॥ २ ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे किन्नामैकादशी भवेत्। कीदृशश्च विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥३॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण यथातथम्। श्रीभगवानुवाच। सम्यक्पृष्टं त्वया राजन् साधु ते विपुलं यशः ॥ ४ ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र हरिवासरमुत्तमम्। उत्पन्ना सा सिते पक्षे द्वादशी मम वल्लभा ॥ ५ ॥ मार्गशीर्षे समुत्पन्ना मम देहान्नराधिप। मुरासुरवधार्थाय प्रख्याता मम वल्लभा ॥ ६ ॥ कथिता सा मया चैव त्वदग्रे राजसत्तम। पूर्वमेकादशी राजँस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७ ॥ मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे चोत्पत्तिरिति नामतः। अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षे सितां तथा ॥८॥ तस्याः श्रवणमात्रेण

की उत्पन्ना नामकी एकादशी मुझे अधिक प्रिय है ॥ ५ ॥ हे नृप! मुर नामक दैत्यको मारनेके लिए मार्गशीर्षके महीनेमें मेरे शरीरसे पैदा हुई अतः मेरी अधिक प्रिय यह प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! वह मैं तोनों लोक और चराचरमे तुम्हारे सम्मुख पहले ही कह चुका हूँ ॥ ७ ॥ मार्गशीर्षके कृष्णपक्षमे उत्पन्न होनेके कारण इसका नाम उत्पन्न हुआ, इसके बाद मैं मार्गशीर्ष

शुक्लपक्षकी एकादशीको कहूँगा ॥ ८ ॥ इस एकादशीके सुनने मात्रसे ही वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, यह मोक्षदा नामसे प्रसिद्ध है और सब पापोंको नष्ट करनेवाली है ॥ ९ ॥ इस एकादशीमें तुलसीकी मंजरी और धूप दीपसे यत्नके सहित दामोदर भगवान्का पूजन करे ॥ १० ॥ हे राजेन्द्र ! तुम सुनो ! मैं पुराणकी सुन्दर कथाको कहूँगा, जो पिता, माता और सुत अधोगति-

वाजपेयफलं भवेत् । मोक्षा नाम्नीति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ ९ ॥ देवं दामोदरं तस्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः । तुलस्या मञ्जरीभिश्च धूपदीपैर्मनोरमैः ॥ १० ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् । अधो गतिं गता ये वै पितृमातृसुतादयः ॥ ११ ॥ अस्या पुण्यप्रभावेण स्वर्गं यान्ति न संशयः । एतस्मात्कारणाद्राजन्महिमानं शृणुष्व तम् ॥ १२ ॥ चम्पके नगरे रम्ये वैष्णवैः सुविभूषिते । वैखानसेति राजर्षिः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ १३ ॥ द्विजाश्च न्यवसंस्तत्र चतुर्वेदपरायणाः । एवं स राज्यं कुर्वाणो रात्रौ तु स्वप्नमध्यतः ॥ १४ ॥ ददर्श जनकं स्वं तु अधोयोनिगतं नृपः । एवं दृष्ट्वा

को प्राप्त हो गये हों ॥ ११ ॥ वे इसके पुण्यके प्रभावसे निश्चय ही स्वर्गको जायँगे, हे राजन् ! इस कारणसे इसकी महिमाको सुनिये ॥ १२ ॥ वैष्णवोंसे सुशोभित, सुन्दर चम्पक नगरमें वैखानस नामका राजर्षि था जो प्रजाका पालन पुत्रके समान करता था ॥ १३ ॥ उस चम्पक नगरमें चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण रहते थे, इस प्रकार राज्य करते हुए राजाने रात्रिमें स्वप्नमें ॥ १४ ॥

अपने पिताको नरकमे गये हुए देखा, इस प्रकार नरकमे अपने पिताको देखकर उसके नेत्र आश्चर्यसे खुले रह गये ॥ १५ ॥ और स्वप्नमे देखे हुए वृत्तान्तको राजाने ब्राह्मणोके सम्मुख कहा । राजा बोला—हे विप्रो ! मैंने अपने पिता को नरकमें पड़े हुए देखा है, और पिताने कहा है कि हे पुत्र ! नरकमे गये हुए मुझको तारो ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहते हुए पिताको मैने स्वयं देखा

तु तं तत्र विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ १५ ॥ कथयामास वृत्तान्तं द्विजाग्रे स्वप्नसम्भवम् । राजोवाच । मया तु स्वपिता दृष्टो नरके पतितो द्विजाः । तारयस्वेति मां तात अधोयोनिगतं सुत ॥ १६ ॥ इति ब्रुवाणः स तदा मया दृष्टः पिता स्वयम् । तदाप्रभृति भो विप्रा नाहं शर्म लभाम्यहो ॥ १७ ॥ एतद्राज्यं मम महदसह्यमसुखं तदा । अश्वा गजा रथाश्चैव मे रोचन्ते न सर्वथा ॥ १८ ॥ न कोशोऽपि सुखायेति न किञ्चित्सुखदं मम । न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तमाः ॥ १९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि शरीरं मे सुदह्यते । दानं व्रतं तपो योगो येनैव मम पूर्वजाः ॥ २० ॥ मोक्षमायान्ति

है—हे ब्राह्मणो ! तभीसे मैं दुखी हूँ ॥ १७ ॥ यह मेरा बड़ा राज्य और सुख मुझे सहन नहीं हो रहा है, घोड़े, हाथी और रथ ये मुझे अच्छे नहीं लगते हैं ॥१८॥ खजाना भी मुझे सुखकारी नहीं लगता है तथा कोई भी वस्तु मुझे सुखदायी नहीं है, हे ब्राह्मणो ! मुझको स्त्री, पुत्र कुछ भी अच्छा नहीं लगता है ॥ १९ ॥ मै क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरा शरीर जला जा रहा है, यदि कोई दान, व्रत, तप, योग इत्यादि उपाय हो जिससे मेरे पितर ॥ २० ॥ मोक्षको प्राप्त हो जावे, हे विप्रो ! वह मुझे बतलाओ, उस

बलवान् पुत्रके जीवनका क्या फल है ॥ २१ ॥ जिसका पिता नरकमे पड़ा हो, उसका जीवन व्यर्थ है। ब्राह्मण बोले—हे राजन् ! यहाँसे पर्वतमुनिका आश्रम पास ही है ॥ २२ ॥ हे राजसिंह ! तुम वहीं जाओ क्योंकि वे मुनि भूत-भविष्य सबको जानते हैं, इसके बाद वैखानस राजा उनके वचन सुनकर ॥ २३ ॥ शान्त ब्राह्मणों और प्रजाओंके सहित पर्वतमुनिके आश्रमको गया ॥ २४ ॥

विप्रेन्द्रास्तदेव कथयन्तु मे। किं तेन जीवता लोके सुपुत्रेण बलीयसा ॥ २१ ॥ पिता तु यस्य नरके तस्य जन्म निरर्थकम्। ब्राह्मणा ऊचुः। पर्वतस्य मुनेरत्र आश्रमो निकटे नृप ॥ २२ ॥ गम्यतां राजशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः। तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं वैखानो राजसत्तमः ॥ २३ ॥ जगाम तत्र यत्राऽसौ आश्रमे पर्वतो मुनिः। ब्राह्मणैर्वेष्टितः शान्तैः प्रजाभिश्च समन्ततः ॥ २४ ॥ आश्रमो विपुलस्तस्य मुनिभिः सन्निषेवितः। ऋग्वेदिभिर्याजुषैश्च सामाथर्वणकोविदैः ॥ २५ ॥ वेष्टितो मुनिभिस्तत्र द्वितीय इव पद्मजः। दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैखानसस्तदा ॥ २६ ॥ जगाम चावनिं मूर्ध्ना

न है मुनिका बड़ा आश्रम ऋग्वेदादि याज्ञिक, सामवेद, अथर्ववेदके जाननेवाले विद्वान् तथा मुनियोंसे सेवित था ॥ २५ ॥ वहाँ पर्वतमुनि मुनियोंके सहित दूसरे ब्रह्माके समान मालूम पड़ते थे, तब वैखानस राजाने पर्वतमुनिको देखकर ॥ २६ ॥ पृथिवीपर

मस्तक नवाकर दण्डवत् प्रणाम किया, तत्पश्चात् मुनिने राजासे उसके सातो अंगोंकी कुशल पूछी ॥ २७ ॥ कि तुम्हारा राज्य तो निष्कण्टक है और राज्यमे सुख शान्ति तो है, ऐसा सुनकर राजा बोले कि—हे विप्र ! तुम्हारी कृपासे सातो अंग कुशलपूर्वक हैं ॥ २८ ॥ विभव (ऐश्वर्य) के अनुकूल होनेपर भी कोई विघ्न पैदा हो गया है, अतः हे ब्रह्मन् ! मुझे यह संदेह है और इसी

दण्डवत्प्रणनाम च । पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वङ्गेष्वसौ मुनिः ॥ २७ ॥ राज्ये निष्कण्टकत्वं च राजसौख्यसमन्वितम् । राजोवाच । तव प्रसादाद्ब्रह्मो विप्र कुशलं मेऽङ्गसप्तके ॥ २८ ॥ विभवेष्वनुकूलेषु कश्चिद्विघ्न उपस्थितः । एतन्मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वां च समागतः ॥ २९ ॥ एवं श्रुत्वा नृपवचः पर्वतो मुनिसत्तमः । ध्यानस्तिमितनेत्रोऽसौ भूतं भव्यं व्यचिन्तयत् ॥ ३० ॥ मुहूर्त्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् । मुनिरुवाच । जानेऽहं तव राजेन्द्र पितुः पापं विकर्मणः ॥ ३१ ॥ पूर्वजन्मनि ते पित्रा सपत्नीकृतद्वेषतः । कामासक्तेन चैकत्र ऋतुभङ्गः कृतः स्त्रियाः ॥ ३२ ॥ त्राहि देहीति जल्पन्त्या

कारण तुमसे पूछने आया हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार पर्वतमुनिने राजाके वचन सुनकर ध्यानसे निश्चल नेत्र करके भूत और भविष्यका विचार किया ॥ ३० ॥ और एक क्षण विचार करके राजासे कहने लगे । मुनि बोले—हे राजन् ! मैंने तुम्हारे कुकर्मी पिताके पापको जान लिया है ॥३१॥ पूर्व जन्ममें तुम्हारे पिताने काममें आसक्त होकर दूसरी स्त्रीके दोपके कारण एक बार स्त्रीका ऋतुकाल

भंग कर दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! रक्षा करो, ऋतुदान दो, ऐसा स्त्रीने कहा, परन्तु तुम्हारे पिताने उसके आग्रह करने पर भी ऋतुदान नहीं दिया ॥ ३३ ॥ उसी कर्मसे तुम्हारे पिता नरकमें पड़े हैं । राजा बोला—हे मुने ! ऐसा कौनसा व्रत और दान है जिससे मेरे पिताको मोक्ष हो जाय ॥ ३४ ॥ पापयुक्त इस नरकसे कैसे मुक्ति होवेगी, वह मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम बतलाओ ।

ऋतुदानं नराधिप । तेन वै तव पित्रा तु न दत्तो ऋतुराग्रहात् ॥ ३३ ॥ कर्मणा तेन सततं नरके पतितो ह्ययम् । राजोवाच । केन वै व्रतदानेन मोक्षस्तस्य भवेन्मुने ॥ ३४ ॥ निरयात्पापसंयुक्तात्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः । मुनिरुवाच । मार्गशीर्षे सिते पक्षे मोक्षा नाम्नी हरेस्तिथिः ॥ ३५ ॥ सर्वैस्तु तद्व्रतं कृत्वा पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् । तस्याः पुण्यप्रभावेण मोक्षस्तस्य भविष्यति ॥ ३६ ॥ मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा नृपः स्वगृहमागतः । आग्रहायणिकीं कृच्छ्रात्प्राप्तो भरतसत्तम ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरचरैस्सर्वैः पुत्रदारैस्तथा नृपः । व्रतं कृत्वा विधानेन पुण्यं दत्त्वा नृपाय तत् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्दत्ते तदा पुण्ये

मुनि बोले—मार्गशिर महीनेके शुक्लपक्षमें मोक्षदा नामकी विष्णुकी तिथि एकादशी है ॥ ३५ ॥ तुम सब एकादशीका व्रत करके उसके पुण्यको अपने पिताको दो, उसके पुण्य-प्रभावसे तुम्हारे पिताका मोक्ष हो जायगा ॥ ३६ ॥ इसके बाद राजा मुनिके वचन सुनकर अपने घरको आगया । हे युधिष्ठिर ! राजाको बड़ी कठिनतासे मार्गशिर मासकी एकादशी प्राप्त हुई ॥३७॥ इसके बाद सब अन्तःपुरचारी और स्त्री-पुत्रके सहित राजाने विधियुक्त व्रत किया और उसका पुण्य अपने पिताको दिया

॥ ३८ ॥ तब उस पुण्यके देने पर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई, उस पुण्यके प्रभावसे देवताओंसे स्तुति किया गया राजाका पिता स्वर्गको गया ॥ ३९ ॥ और वह आकाशसे राजासे शुद्ध वाणीयुक्त बोला—हे पुत्र ! तेरा सदा कल्याण हो, ऐसा कहकर स्वर्गको चला गया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जो इस प्रकार मोक्षदा एकादशीका व्रत करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते है, और

पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः । वैखानसपिता तेन गतः स्वर्गं स्तुतो गणैः ॥ ३९ ॥ राजानमन्तरिक्षाच्च शुद्धां गिरमभाषत । स्वस्त्यस्तु ते पुत्र सदेत्युक्त्वा स त्रिदिव गतः ॥ ४० ॥ एवं यः कुरुते राजन्मोक्षदैकादशीमिमाम् । तस्य पापं क्षयं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा । पुण्यसंख्यां तु राजेन्द्र न जानेऽहं तु यैः कृता ॥ ४२ ॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी ॥ ४३ ॥

मरने पर मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ हे राजेन्द्र ! इसके अलावा कोई और मोक्षको देनेवाली निर्मल और शुभ नहीं है, जिन्होंने इसका व्रत किया है उनके पुण्यकी संख्याको मैं भी नहीं जानता हूँ ॥ ४२ ॥ यह एकादशी चिन्तामणिके समान है और स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाली है ॥ ४३ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे मार्गशीर्षशुक्लैकादश्या मोक्षदानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! पौषके कृष्ण पक्षमें कौनसी एकादशी होती है, उसका क्या नाम है और क्या विधि है तथा उसमें किस देवताका पूजन होता है ॥ १ ॥ हे स्वामी जनार्दन! यह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये। श्रीकृष्ण बोले—हे राजेन्द्र! तेरे स्नेहके कारण अवश्य कहूँगा ॥ २ ॥ हे राजन्! मैं अधिक द..णावाले यज्ञोंसे वैसा प्रसन्न नहीं होता हूँ जैसा

अथ पौषकृष्णसफलैकादशीव्रतमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच। पौषस्य कृष्णपक्षे तु केयमेकादशी भवेत्। किं नामको विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण जनार्दन। श्रीकृष्ण उवाच। कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहकारणात् ॥ २ ॥ तथा तुष्टिर्न मे राजन् क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः। यथा तुष्टिर्भवेन्मह्यमेकादश्या व्रतेन वै ॥ ३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो हरिवासरः। पौषस्य कृष्णपक्षे तु द्वादशी या भवेन्नृप ॥ ४ ॥ तस्याश्चैव च माहात्म्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः। गदिता याश्च वै राजन्नेकादश्यो भवन्ति हि ॥ ५ ॥ तासामपि हि सर्वासां विकल्पं नैव कारयेत्। एकादश्यास्तथाप्यस्याः शृणु राजन् कथा-

कि एकादशीके व्रतसे प्रसन्न होता हूँ ॥ ३ ॥ अतः यत्नपूर्वक हरिवासरका व्रत करना चाहिए, हे नृप! पौषके कृष्ण पक्षमें द्वादशी-युक्त जो एकादशी होती है ॥४॥ उसका माहात्म्य एकाग्र मनसे सुनो, हे राजन्! पहले कही गई जो जो एकादशी होती हैं ॥५॥

उन सबमे किसी प्रकारका भेद न करे, हे राजन् ! तो भी इस एकादशीकी कथाको सुनो ॥ ६ ॥ अब मैं तुमरो मनुष्योके हितके लिए पौषकी एकादशी की विधिको कहता हूँ ॥७॥ पौषके कृष्णपक्षकी सफला नामकी एकादशो होती है। उसके स्वामी नारायण देव हैं, उनकी यत्नके साथ पूजा करनी चाहिए ॥ ८ ॥ हे राजन् ! पहले कही गई विधिके अनुसार मनुष्योंको एकादशीका व्रत करना चाहिए, सर्पों मे जैसे शेषजी श्रेष्ठ हैं, पक्षियोंमे जैसे गरुड श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥ जैसे यज्ञोमें अश्वमेध यज्ञ, और नदियोमे

न्तरम् ॥ ६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पौषस्यैकादशीं तव । लोकानां च हितार्थाय कथयिष्य विधिं तव ॥७॥ पौषस्य कृष्णपक्षे या सफला नाम नामतः। नारायणोऽधिदेवोऽस्याः पूजयेत्तं प्रयत तः ॥८॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यैकादशी जनैः । नागानां च य । शेषः पक्षिणां गरुडो यथा ॥ ९ ॥ यथाश्वमेधो यज्ञानां नदीनां जाह्नवी यथा । व्रतानां च तथा राजन् प्रवरैकादशी तिथिः ॥ १० ॥ ते जना भरतश्रेष्ठ मम पूज्याश्च सर्वशः । हरिवासरसंयुक्ता वर्तन्ते ये जना भृशम् ॥ १ ॥ सफला नाम या प्रोक्ता तस्याः पूजाविधिं शृणु । फलैर्मां पूजयेत्तत्र कालदेशोद्भवैः शुभैः ॥ १२ ॥ नारिकेलफलैः

गंगा श्रेष्ठ है, हे राजन् ! उसी प्रकार व्रतों मे एकादशीतिथि श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर ! वे मनुष्य मेरे लिए सदा पूज्य हैं, जो हरिवासरके सहित एकादशीका व्रत नित्य करते हैं ॥ ११ ॥ सफला नामकी जो एकादशी कही है उसकी विधि सुनो । ऋतु के अनुसार देशमे पैदा हुए सुन्दर फलों से एकादशीके दिन मेरा पूजन करे ॥ १२ ॥ शुद्ध नारियल, बिजौरा नीबू, अनार और

सुपारीसे ॥ १३ ॥ लवङ्गोंसे, और आम आदि अनेक प्रकारके फलोसे क्रमके साथ धूप और दीपसे देवताओंके देव विष्णुका पूजन करे ॥ १४ ॥ सफला एकादशीको दीपदान विशेष रूपसे कहा है, उसमें यत्नके साथ रात्रिको जागरण करना चाहिए ॥१५॥ जब तक नेत्र खुले रहे तब तक रात्रिमे एकाग्रचित्तसे जागरण करनेके पुण्यको सुनो ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उसके समान न यज्ञ है,

शुद्धैस्तथा वै बीजपूरकैः । जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा पूगीफलैरपि ॥ १३ ॥ लवङ्गैर्विविधैश्चान्यैस्तथा चाम्रफलादिभिः । पूजयेद्देवदेवेशं धूपैर्दीपैर्यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ सफलायां दीपदानं विशेषेण प्रकीर्तितम् । रात्रौ जागरणं तत्र कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ यावदुन्मीलयेन्नेत्रं तावज्जागर्ति यो निशि । एकाग्रमानसो भूत्वा तस्य पुण्यं शृणुष्व तत् ॥ १६ ॥ तत्समो नास्ति वै यज्ञस्तीर्थं तत्सदृशं न हि । तत्समं न व्रतं किञ्चिदिह लोके नराधिप ॥ १७ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा च यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति सफलाया व्रतेन वै ॥ १८ ॥ श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथानकम् । चम्पावतीति

न तीर्थ है, और इस लोकमें उसके समान कोई व्रत भी नहीं है ॥ १७ ॥ पांच हजार वर्ष तप करनेसे जो फल मिलता है वही फल सफला एकादशीके व्रतसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ हे राजसिंह ! सफला-एकादशीकी कथाको सुनिये, माहिष्मत राजाकी चम्पावती

नामकी नगरी प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥ माहिष्मत राजाके चार पुत्र थे उनमे जो बडा पुत्र था वह महापापी था ॥ २० ॥ दूसरोंकी स्त्रियोंमे गमन करनेवाला, और सदा वेश्यामे ही अनुरक्त रहता था । उसने पिताके धनको सब प्रकारसे नष्ट कर दिया ॥ २१ ॥ वह नित्य बुरे काममे ही लगा रहता, देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता रहता, तथा नित्य वैष्णव और देवताओंकी निन्दामे

विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च ॥ १९ ॥ माहिष्मतस्य राजर्षेश्चत्वारश्चाभवन्सुताः । तेषां मध्ये तु यो ज्येष्ठः स महापापसंयुतः ॥ २० ॥ परदाराभिगामी च वेश्यासङ्गरतः सदा । पितुर्द्रव्यं स पापिष्ठो गमयामास सर्वशः ॥ २१ ॥ असद्वृत्तिरतो नित्यं देवताद्विजनिन्दकः । वैष्णवानां च देवानां नित्यं निंदारतः स वै ॥ २२ ॥ ईदृग्विधं तदा दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः । नाम्ना स वै लुंपकं तु कृतवान-त्यमर्षितः ॥ २३ ॥ राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैवापि बन्धुभिः । परिवारजनैः सर्वैस्त्यक्तो राज्ञो भयादिति ॥ २४ ॥ लुंपकोऽपि तदा त्यक्तश्चिन्तयामास एकलः । मयाऽत्र किं प्रकर्त्तव्यं त्यक्तः पित्रा

तत्पर रहता था ॥२२॥ तब माहिष्मत राजाने पुत्रको इस प्रकार देखा और क्रोधित होकर उसका नाम लुम्पक रख दिया ॥२३॥ उसके पिता तथा भाइयोने उसे राज्यसे निकाल दिया, और राजाके भयसे सब कुटुम्बीजनोने भी उसे त्याग दिया ॥ २४ ॥ इसके बाद त्याग किया हुआ लुम्पक अकेला चिन्ता करने लगा, कि पिता और बांधवोंसे त्यागे हुए मुझको अब क्या करना चाहिए,

गिरता हुआ लँगड़े की तरह चलने लगा ॥ ३९ ॥ भूख-प्याससे दुःखी वह वनमें गया और उस दुष्ट लुम्पकके जीवोंको मारनेकी
शक्ति नहीं रही ॥ ४० ॥ तब वह लुम्पक भूमिपर पड़े फलोंको खानेके लिए लेकर अपने स्थानको आया । तब ही सूर्य भगवान्
अस्त हो गये ॥ ४१ ॥ तब दुःखी होकर विलाप करने लगा कि हे पिता क्या हो गया और उन सब फलोंको उसने वृक्षकी

मध्याह्नसमये प्राप्ते संज्ञां लेभे स लुंपकः ॥ ३८ ॥ प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन चोत्थितोऽसौ तदाऽऽसनात् ।
प्रस्खलंश्च पदन्यासैः पंगुवच्चलितो मुहुः ॥ ३९ ॥ वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्तृषापीडितोऽभवत् । न शक्ति-
र्जीवघातस्य लुंपकस्य दुरात्मनः ॥ ४० ॥ फलानि भूमौ पतितान्याजहार स लुंपकः । यावत्स चाग-
तस्तत्र तावदस्तमगाद्रविः ॥ ४१ ॥ किं भविष्यति तातेति विललापातिदुःखितः । फलानि तानि
सर्वाणि वृक्षमूले न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥ प्रत्युवाच फलैरेभिः प्रीयतां भगवान्हरिः । उपविष्टो लुंपकश्च
निद्रां लेभे न वै निशि ॥ ४३ ॥ तेन जागरणं जातं भगवान्मधुसूदनः । फलानां पूजनं मेने सफ-
लायास्तथा व्रतम् ॥ ४४ ॥ कृतमेवं लुंपकेन ह्यकस्माद्व्रतमुत्तमम् । तेन व्रतप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्ट-

जड़में रख दिया ॥ ४२ ॥ और बोला कि इन फलोंसे विष्णु भगवान् प्रसन्न हो जायँ ऐसा कहकर बैठा रहा और रात्रिमें उसे
नींद भी नहीं आई ॥ ४३ ॥ उसके जगनेसे मधुसूदन भगवान् ने उसका जागरण, और सफला एकादशीका व्रत तथा फलोंका
पूजन मान लिया ॥ ४४ ॥ इस भाँति लुम्पक ने अकस्मात् ही व्रत कर लिया, और उस व्रत के प्रभावसे उसने निष्कंटक राज्यको

प्राप्त किया ॥ ४५ ॥ हे राजन्! पुण्यके अंकुरसे जैसे उसने राज्य पाया उसे सुनो, कि सूर्योदयके समय वहाँ एक सुन्दर घोड़ा आया ॥ ४६ ॥ सुन्दर वस्तुओंसे शोभित वह घोड़ा लुम्पकके पास आकर खड़ा हो गया, हे राजन्! उस समय आकाशवाणी हुई कि ॥ ४७ ॥ हे राजाके पुत्र! तुम वासुदेव की कृपा और सफला एकादशीके प्रभावसे निष्कण्टक राज्यको प्राप्त करो ॥ ४८ ॥ और तुम पिताके समीप जाकर विघ्नरहित राज्यको भोगो, (तथास्तु) ऐसा कहकर उसने दिव्य रूपको धारण किया ॥ ४९ ॥ तब

कम् ॥ ४५ ॥ पुण्यांकुरोदयाद्राजन् यथा प्राप्तं तथा शृणु । रवेरुदयवेलायां दिव्योऽश्वश्चाजगाम ह ॥ ४६ ॥ दिव्यवस्तुपरीवारो लुंपकस्य समीपतः । तस्थौ स तुरगो राजन्वागुवाचाऽशरीरिणीम् ॥४७॥ प्राप्नुहि त्वं नृपसुत स्वं राज्यं हतकण्टकम् । वासुदेवप्रसादेन सफलायाः प्रभावतः ॥ ४८ ॥ पितुः समीपं गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राज्यमकंटकम् । तथेत्युक्त्वा त्वसौ तत्र दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥ ४९ ॥ कृष्णे मतिश्च तस्याऽसीत परमा वैष्णवी तथा । दिव्याभरणशोभाढ्यस्तातं नत्वा स्थितो गृहे ॥ ५० ॥ वैष्णवाय तता दत्तं पित्रा राज्यमकण्टकम् । कृतं राज्यं तु तेनैव वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ ५१ ॥ हरिवास-

उसकी कृष्ण भगवान्‌मे परम वैष्णवी भक्ति हो गई और सुन्दर आभूषणोंकी शोभासे युक्त उसने पिताको प्रणाम किया और वहीं घरमे रहने लगा ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् वैष्णव पुत्रको पिताने अकंटक राज्य दे दिया और उस पुत्रने बहुत वर्षोंतक राज्य किया ॥ ५१ ॥ और वह सदा हरिवासरमे लीन तथा विष्णुभक्तिमे रत हो गया, भगवान् कृष्णके प्रसादसे उसको मनोवांछित चार

रसंलीनो विष्णुभक्तिरतः सदा । मनोज्ञास्तस्य पुत्राः स्युर्दाराः कृष्णप्रसादतः ॥५२॥ ततः स वार्धके
प्राप्ते राज्ये पुत्रं निवेश्य च । वनं गतः संयतात्मा विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ५३ ॥ साधयित्वा तथा-
त्मानं विष्णुलोकं जगाम ह । गतः कृष्णस्य सान्निध्ये यत्र गत्वा न शोचति ॥ ५४ ॥ एवं ये वै
प्रकुर्वन्ति सफलैकादशीव्रतम्। इह लोके यशः प्राप्य मोक्षं यास्यंत्यसंशयम् ॥ ५५ ॥ धन्यास्ते मानवा
लोके सफलाव्रतकारिणः । तस्मिञ्जन्मनि ते मोक्षं लभन्ते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥ सफलायाश्च माहा-
त्म्यश्रवणाद्धि विशांपते । राजसूयफलं प्राप्य वसेत्स्वर्गे च मानवः ॥ ५७ ॥

पुत्र और स्त्री प्राप्त हो गई ॥ ५२ ॥ इसके बाद जब वह वृद्धावस्थाको प्राप्त हो गया तब उसने पुत्रको राज्य दिया और आप जितेन्द्रिय तथा विष्णुकी भक्तिमे तत्पर होकर वनको चला गया ॥ ५३ ॥ और वहाँ आत्मका साधन करके विष्णुलोकको गया, और फिर कृष्ण भगवान्के पास गया जहाँ जाकर शोक नहीं रहता है ॥ ५४ ॥ इस भाँति जो सफला एकादशीका व्रत करते हैं वे इस लोकमे यशको प्राप्त करके अन्तमें निश्चय ही मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ लोकमें जो सफलाका व्रत करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं, और वे उसी जन्ममे मोक्षको प्राप्त हो जावेंगे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! सफला एकादशीके व्रतको सुनकर मनुष्य राजसूय यज्ञके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमे वास करते हैं ॥ ५७ ॥

इति श्रीपौषकृष्णैकादश्याः सफलानाम्न्या माहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण ! तुमने सफला नामकी शुभ एकादशी तो सुना दी, अब प्रसन्न होकर पौषके शुक्ल पक्षकी एकादशीको भी सुनाओ ॥ १ ॥ उसका क्या नाम है, कैसी विधि है, और उसमे किस देवताका पूजन होता है, हे हृषीकेश पुरुषोत्तम ! और आप किस पर प्रसन्न हुए सो सब कहिये ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! सुनो, मैं पौष शुक्ल पक्षकी

अथ पौषशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा । कथयस्व प्रसादेन शुक्ला पौषस्य या भवेत् ॥ १ ॥ किं नाम का विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते । कस्मै तुष्टो हृषीकेश त्वमेव पुरुषोत्तम ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच । शृणु राजन्! प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत्। तस्या विधिं महाराज लोकानां च हिताय वै ॥३॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः। पुत्रदेति च नाम्नाऽसौ सर्वपापहरा परा । विद्यानारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः ॥ ४ ॥ नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे । विद्या-

एकादशी को कहता हूँ । हे महाराज ! लोकहितके लिये उसकी विधिको भी कहूँगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पहलेके समान यत्नपूर्वक इसको भी करना चाहिए, पुत्रदा इसका नाम है, यह सब पापोंको हरनेवाली है, कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और सिद्धियोंको देनेवाले नारायण भगवान् इसके देवता हैं ॥ ४ ॥ चराचर तीनो लोकोंमे इसके समान कोई दूसरी नही है, इसके व्रत करनेवाले

पुत्र, पौत्र, और लोक ये सब प्राप्त होते हैं, पुण्य और विष्णु-भक्तिके बिना इनकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ १७ ॥ पुत्रोंकी संपत्ति और विद्याकी संपत्ति विना पुण्यके नहीं होती है, इस प्रकार विचार करता हुआ राजा सुखको प्राप्त नहीं हुआ (दुःखी ही रहा) ॥ १८ ॥ इसके बाद प्रातः काल और रात्रिमें विचार करते हुए राजाने अपना सब प्रकारसे विनाश जाना ॥ १९ ॥

च न प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना तथा ॥ १७ ॥ पुत्राणां संपदो वापि विद्यायाश्चेति मे मतिः । एवं विचिंत्यमानोऽसौ राजा शर्म न लब्धवान् ॥ १८ ॥ प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्तथा । ततश्चात्मविनाशं वै विचार्याथ सुकेतुमान् ॥ १९ ॥ आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः । दृष्ट्वाऽऽत्मदेहं प्रक्षीणमपुत्रत्वं तथैव च ॥ २० ॥ पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या ह्यात्मनो हितकारणम् । अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम् ॥ २१ ॥ पुरोहितादयः सर्वे न जानंति गतं नृपम् । गंभीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते ॥ २२ ॥ विचचार तदा तस्मिन्वने वृक्षान्विलोकयन् । वटानश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान् पनसां-

फिर राजाने आत्मघातमें दुर्गति जानकर और पुत्रहीन अपने शरीरको क्षीण जाना ॥ २० ॥ फिर अपनी बुद्धिसे अपने हितका कारण विचार करके और फिर घोड़ेपर सवार होकर राजा बडे घने वनको गया ॥ २१ ॥ पुरोहित आदि जनोंने गये हुए राजाको नहीं जाना, मृग और पक्षियोंसे युक्त गहन वनको राजा गया ॥ २२ ॥ फिर उस वनमे राजाने बड़, पीपल, बेल, खजूर, और

कटहल आदिके वृक्षोंको देखते हुए विचरण किया ॥ २३ ॥ और मौलसिरी, सप्तपर्ण, तेंदू, तिलक, शाल, तमाल और सरल इत्यादि वृक्षोंको देखा ॥ २४ ॥ और हिंगोट, अर्जुन, लभेरा, शल्लकी, करौंदा, पाटल, खैर, इन सब वृक्षोंको भी देखा ॥ २५ ॥ राजाने शाख और ढाकको शोभायमान देखा, तथा मृग, व्याघ्र, सुअर, सिंह और वानरोंको देखा ॥ २६ ॥ और राजाने बमईसे

स्तथा ॥२३॥ बकुलान् सप्तपर्णांश्च तिंदुकांस्तिलकानपि । शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः ॥२४॥ इंगुदीककुभांश्चैव श्लेष्मातकविभीतकान् । शल्लकीकरमर्दांश्च पाटलान् खदिरानपि ॥ २५ ॥ शाखांश्चैव पलाशांश्च शोभितान्ददृशे नृपः । मृगव्याघ्रवराहांश्च सिंहाञ्छाखामृगानपि ॥ २६ ॥ ददर्श भुजगान् राजा वल्मीकादभिनिस्सृतान् । तथा वनगजान्मत्तान्कलभैः सह संगतान् ॥ २७ ॥ गवयान्कृष्णसारान् गाः शृगालाञ्छशकानपि । वनमार्जारकान् क्रूराञ्झल्लकांश्चमरानपि ॥ २८ ॥ यूथपांश्च चतुर्दन्तान्करिणीगणमध्यगान् । तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास ह्यात्मनस्स गजान्नृपः ॥ २९ ॥ तेषां स विचरन्मध्ये राजा शोक-

निकलते हुए सर्पोंको देखा, तथा बच्चोंके सहित उन्मत्त वनके हाथिओंको देखा ॥ २७ ॥ नीलगवय, काले मृग, गौ, स्यार, खरगोश, विलाव, शल्लक, और चमर इन सबको देखा ॥ २८ ॥ राजाने हथिनियोंके झुण्डमे स्थित चार दाँतवाले हाथियोंको देखकर अपने हाथियोंका स्मरण किया ॥ २९ ॥ उनके बीचमे विचरता हुआ राजा शोकको प्राप्त हुआ और महान् आश्चर्यसे युक्त

तुमपर संतुष्ट हैं, जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो उसे कहो ॥ ४३ ॥ राजा बोला कि आप कौनसे तपस्वी हैं और आपकी कथा प्रसिद्धि है, और किसलिए यहाँ आये हैं सो सब मुझसे सच-सच कहिये ॥ ४४ ॥ मुनि बोले—हे राजन् ! हम विश्वेदेवा हैं, स्नान करनेको यहाँ आये हैं, आजसे पाँचवें दिन माघका महीना आनेवाला है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! आज पुत्रदा नामकी

कथयस्वाद्य वै राजन् यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४३ ॥ राजोवाच । के यूयमग्रतपसः किमाख्या भवतामपि । किमर्थमागता यूयं वदंतु मम तत्त्वतः ॥ ४४ ॥ मुनय ऊचुः । विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह चागताः । माघो निकटमायात एतस्मात्पंचमेऽहनि ॥ ४५ ॥ अद्य ह्येकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः । पुत्रं ददात्यसौ शुक्ला पुत्रदा पुत्रमिच्छताम् ॥ ४६ ॥ राजोवाच । एष वै संशयो मह्यं सुतस्योत्पादने महान् । यदि तुष्टा भवन्तो मे पुत्रो वै दीयतां तदा ॥ ४७ ॥ मुनय ऊचुः । अस्मिन्नेव दिने राजन्पुत्रदा नाम वर्त्तते । एकादशीति विख्याता क्रियतां व्रतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ आशीर्वादेन चास्माकं केशवस्य प्रसादतः ।

एकादशी है, यह शुक्ल पक्षकी एकादशी पुत्र चाहनेवालोंको पुत्र देती है ॥ ४६ ॥ राजा बोला कि पुत्रके पैदा होनेमें मुझे महान् संदेह है, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिए ॥ ४७ ॥ मुनि बोले—हे राजन् ! आजके दिन ही पुत्रदा नामसे प्रसिद्ध एकादशी है अतः उसके उत्तम व्रतको कीजिए ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! तुमको हमारे आशीर्वादसे और

भगवान् केशवकी कृपासे अवश्य पुत्रकी प्राप्ति होगी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार मुनियोंके वचनोंसे राजाने उत्तम व्रतको किया और द्वादशीके दिन पारण करके बार-बार मुनियोंको नमस्कार करके ॥ ५० ॥ राजा घरको आ गया, तब मुनियोंके प्रभावसे और पुत्रदा एकादशीके प्रभावसे रानी गर्भवती हुई ॥ ५१ ॥ कुछ समयके बाद तेजस्वी और पुण्य कर्म करनेवाला पुत्र पैदा

अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ॥ ४९ ॥ इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतं शुभम् । द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः ॥ ५० ॥ आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भं समादधौ । मुनीनां वचनेनैव पुत्रदायाः प्रभावतः ॥ ५१ ॥ पुत्रो जातस्तथा काले तेजस्वी पुण्यकर्मकृत् । पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ॥ ५२ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यं पुत्रदाव्रतम् । लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥ ५३ ॥ एतद्व्रतं तु ये मर्त्याः कुर्वंति पुत्रदाभिधम् । तेषां चैव भवेत्पुत्रो ह्यवश्यं मोक्षभागिनाम् ॥ ५४ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५५ ॥

हुआ, उसने पितरोंको संतुष्ट किया और प्रजाका पालन किया ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! इस कारणसे पुत्रदाका व्रत अवश्य करना चाहिए, संसारके हितके लिए मैंने तुमसे कहा है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य इस पुत्रदा एकादशीके व्रतको करते है उन मोक्षभागी मनुष्योंको अवश्य पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इसके पढ़ने और सुननेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे पौषशुक्लैकादश्याः पुत्रदानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अब षट्तिला नामकी माघकृष्ण एकादशीकी कथा आरम्भ होती है ॥ दाल्भ्य ऋषि बोले कि मर्त्यलोकमें प्राणी पापोंको करते हैं, ब्रह्महत्या आदि अनेक प्रकारके पापोंसे युक्त होते हैं ॥ १ ॥ दूसरोंके द्रव्यको हरनेवाले दूसरोंके व्यसनोंसे मोहित पुरुष किस उपायसे नरकको नहीं जाते हैं। हे ब्राह्मणो! वह मुझसे सच सच कहिये ॥ २ ॥ हे भगवन्! अनायास ही जिस किसी थोड़ेसे

अथ माघकृष्णैकादशीव्रतमाहात्म्यम्

दाल्भ्य उवाच। मर्त्यलोके तु सम्प्राप्ताः पापं कुर्वन्ति जन्तवः। ब्रह्महत्यादिपापैश्च ह्यन्यैश्च विविधैर्युताः ॥ १ ॥ परद्रव्यापहाराश्च परव्यसनमोहिताः। कथं न यांति नरकान् ब्रह्मंस्तद् ब्रूहि तत्त्वतः ॥२॥ अनायासेन भगवन् दानेनाल्पेन केनचित्। पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच। साधु साधु महाभाग गुह्यमेतदुदाहृतम्। यन्न कस्यचिदाख्यातं ब्रह्मविष्णिवन्द्रदेवतैः ॥ ४ ॥ तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम। ततो माघे तु संप्राप्ते शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ कामक्रोधा-

दानसे पाप शान्त हो जाय वह तुम कहने मे समर्थ हो ॥ ३ ॥ पुलस्त्य बोले कि हे महाभाग! तुमने यह बहुत गुह्य बात कही जिसको ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इत्यादि देवताओने किसीसे भी नहीं कहा है ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम! तुम्हारे पूछनेसे यह गुप्त बात तुमसे मैं कहता हूँ। जब माघका महीना आवे तो शुद्ध होकर स्नान करे और जितेन्द्रिय रहे ॥ ५ ॥ काम, क्रोध, अभिमान,

ईर्ष्या, लोभ, और चुगलीको त्याग दे । और पैरोंको जलसे धोकर देवोंके देव भगवान्का स्मरण करे ॥६॥ भूमिपर जो न गिरा हो
ऐसा गोबर लेकर उसमे तिल और कपास मिलाकर पिण्ड बनावे ॥ ७ ॥ इस प्रकार १०८ पिण्ड बनावे, इसमे कुछ विचार न
करे, इस कार्यका आरम्भ माघ मासके शुरूसे ही करे ॥ ८ ॥ अथवा कृष्ण पक्षके आरम्भमे ही पुत्रफल देनेवाली एकादशीका

भिमानेर्ष्यालोभपैशुन्यवर्जितः । देवदेवं च संस्मृत्य पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ॥ ६ ॥ भूमावपतितं ग्राह्यं
गोमयं तत्र मानवः । तिलान् प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डकांश्चैव कारयेत ॥ ७ ॥ अष्टोत्तरशतं चैव नात्र
कार्या विचारणा । ततो माघे च संप्राप्ते ह्यादौ चैव भवेद्यदि ॥ ८ ॥ मूले वा कृष्णपक्षस्यैकादश्यां नियमं
ततः । गृह्णीयात्पुत्रफलदं विधानं तत्र मे शृणु ॥ ९ ॥ देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः । कृष्ण-
नामानि संकीर्त्य क्षुज्जृम्भासु च सर्वदा ॥ १० ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्रात्रौ होमं च कारयेत् । अर्चये-
द्देवदेवेशं शंखचक्रगदाधरम् ॥११॥ चन्दनागरुकर्पूरैर्नैवेद्यैः शर्करादिभिः । संस्मृत्य नाम्ना च ततः कृष्णा-

नियम ग्रहण करे, और उसके विधानको मुझसे सुनो ॥ ९ ॥ स्नानके द्वारा शुद्ध होकर देवताओंके देव भगवान्का पूजन करे,
छींक और जँभाई आनेपर हमेशा कृष्णके नामका कीर्तन करे ॥ १० ॥ रात्रिको जागरण करे और रात्रिमे ही १०८ पिडोंका
हवन करे, और शंख, चक्र, गदाको धारण करनेवाले देवताओंके देव भगवान्का पूजन ॥ ११ ॥ चन्दन, अगर, कपूर,

शर्करा, नैवेद्य आदिसे करे तथा बार-बार कृष्णके नामका स्मरण करे ॥ १२ ॥ हे विप्रदेव ! कूष्माण्ड, नारियल, अथवा बिजौरा नीबूसे पूजन करे, ये सब न हों तो सुपारीसे ही पूजन करे ॥ १३ ॥ विधानसे अर्घ देवे, और जनार्दन भगवान्‌की पूजा करके इस प्रकार कहे कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृपालो ! तुम गतिहीनोंको भी मोक्ष देनेवाले हो ॥ १४ ॥ हे परमेश्वर !

ख्येन पुनः पुनः ॥ १२ ॥ कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः । सर्वाभावेऽपि विप्रेन्द्र शस्तं पूगीफलं तदा ॥ १३ ॥ अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् । कृष्ण ! कृष्ण ! कृपालो ! त्वमगतीनां गतिप्रदः ॥ १४ ॥ संसारार्णवमग्नानां प्रसीद परमेश्वर । नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ १५ ॥ सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ॥ १६ ॥ ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदकुंभं प्रदापयेत् । छत्रोपानहवस्त्रैश्च कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥ १७ ॥ कृष्णा धेनुः प्रदातव्या यथा-

तुम संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंपर प्रसन्न हो जाओ, हे कमलके समान नेत्रवाले ! हे विश्वभावन ! तुमको नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे सुब्रह्मण्य ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! तुमको नमस्कार है, हे जगत्‌के स्वामी ! लक्ष्मीके सहित मेरा दिया हुआ अर्घ ग्रहण करो ॥ १६ ॥ इसके बाद छाता, जूता, वस्त्र, से ब्राह्मणकी पूजा करे, और घटोंका दान देवे, तत्पश्चात् कहे कि श्री कृष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ ॥ १७ ॥ हे विप्र ! अपनी शक्तिके अनुसार कृष्णा गौका दान देवे, हे विप्रश्रेष्ठ ! उस दिन तिलके

सहित पात्रका दान करे ॥१८॥ हे मुनि ! स्नानमें सफेद और खानेमें काले तिल श्रेष्ठ बतलाये गये हैं (अथवा—दोनों प्रकारके भी ग्रहण हो सकते हैं) हे द्विजोत्तम ! उन तिलोंका दान यथाशक्ति, यत्नपूर्वक करे ॥ १९ ॥ जितने तिलोंका दान करता है उतने ही हज़ार वर्ष तक मनुष्य स्वर्गमें वास करता है । तिलसे स्नान करे, तिलको शरीरमें लगावे (उबटन करे) तिलसे होम करे,

शक्त्या द्विजोत्तम । तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठ दद्यात्तत्र विचक्षणः ॥१८॥ स्नानप्राशनयोः शस्ताः श्वेताः कृष्णास्तिला मुने । तान् प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥२०॥ तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशकाः ॥ नारद उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते भक्तभावन ॥ २१ ॥ षट्तिलैकादशीभूतं कीदृशं फलमश्नुते। सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि यादव ॥२२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु ब्रह्मन्यथावृत्तं दृष्टं तत् कथयामि ते । मृत्युलोके पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणी तत्र नारद ॥२३॥ व्रतचर्यरता नित्यं देवपूजारता तदा ।

तिलको जलमें मिलाकर पीवे ॥ २० ॥ तिलका भोजन और तिलका दान करे, ये छः प्रकारके तिल पापोंको नाश करनेवाले हैं । नारद बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे भक्तभावन ! आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ षट्तिला एकादशीसे कैसा फल मिलता है, हे यादव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो कथानकसहित मुझको बतलाइये ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन् ! सुनो, जैसा वृत्तान्त मैंने देखा है वैसा मैं तुमसे कहता हूँ । हे नारद ! मृत्युलोकमें पहले एक ब्राह्मणी थी ॥ २३ ॥ वह नित्य

व्रतादिके करनेमे तथा देवताओंकी पूजामे लगी रहती थी, और मेरी भक्तिन वह सदा महीनेके संपूर्ण व्रत करती थी ॥ २४ ॥ कृष्णके व्रतमें युक्त वह मेरी पूजामे तत्पर थी । हे विप्रवर ! नित्य व्रतोंके करनेसे उसका शरीर कृश हो गया ॥ २५ ॥ वह बुद्धिमती स्त्री सदा दीन, ब्राह्मणो और कुमारियोंको भक्तिके साथ गृहादि दान देती थी ॥ २६ ॥ हे द्विज ! वह अत्यन्त कठिन व्रत

मासोपवासनिरता मम भक्ता च सर्वदा ॥ २४ ॥ कृष्णोपवाससंयुक्ता मम पूजापरायणा । शरीरं क्लेशितं नित्यमुपवासैर्द्विजोत्तम ॥ २५ ॥ दीनानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः । गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महामतिः ॥ २६ ॥ अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्वकालेषु वै द्विज । शुद्धमस्याः शरीरं हि व्रतैः कृच्छ्रैर्न संशयः ॥ २७ ॥ अर्थिनं वैष्णवं लोके कायक्लेशेन वै तया । न दत्तमन्नदानं हि, येन तृप्तिः परा भवेत् ॥ २८ ॥ एतज्जिज्ञासया ब्रह्मन्मृत्युलोकमुपागतः । कापिलं रूपमास्थाय भिक्षापात्रेण याचिता ॥२९॥

करनेमें तत्पर थी और कृच्छ्र व्रतोंके करनेसे उसका शरीर शुद्ध हो गया, यह बात निश्चय ही है ॥२७॥ किन्तु उसने लोकमे किसी वैष्णव भिक्षुकको शरीरके कष्टके कारण अन्नदान नही दिया, जिससे कि मेरी परम तृप्ति होती ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस बातको जाननेकी इच्छासे मैं मृत्युलोकमे आया और कपिल ब्राह्मण अर्थात् भिक्षुकका रूप धारण करके भिक्षापात्र लेकर मैंने (ब्राह्मणीसे) भिक्षा माँगी ॥ २९ ॥ ब्राह्मणी बोली—हे ब्रह्मन् ! तुम कहाँसे आये हो, जहाँसे आये हो उसको बतलाओ, फिर

भी मैंने उस ब्राह्मणीसे यही कहा कि हे सुन्दरी ! भिक्षा दो ॥ ३० ॥ हे द्विज ! जब उस देवीने बड़े क्रोधसे ताँबेके पात्रमें मिट्टीका पिंड डाल दिया तब फिर मैं स्वर्गलोकको चला गया ॥ ३१ ॥ इसके बाद बहुत समय बीतनेपर बड़े भारी तपको करनेवाली वह तपस्विनी व्रतचर्याके प्रसादसे किसी प्रकार स्वर्गमें आ गई ॥३२॥ उस ब्राह्मणीने मिट्टीके पिण्डके प्रभावसे सुन्दर घर प्राप्त किया।

ब्राह्मण्युवाच ॥ कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन्वद यस्मात्समागतः । पुनरेव मया प्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि ॥३०॥ तया कोपेन महता मृत्पिंडस्ताम्रभाजने । क्षिप्तो यावत्तया देव्या पुनः स्वर्गं गतो द्विज ॥ ३१ ॥ ततः कालेन महता तापसी सुमहाव्रता । कदाचित्स्वर्गमायाता व्रतचर्याप्रसादतः ॥ ३२ ॥ मृत्पिंडस्य प्रभावेण गृहं प्राप्तं मनोरमम् । संजातं चैव विप्रर्षे धान्यकोशादिवर्जितम् ॥ ३३ ॥ गृहं यावन्निरीक्षेत न किंचित्तत्र पश्यती । तावद् गृहाद्विनिष्क्रांता ममान्ते चागता द्विज ॥ ३४ ॥ क्रोधेन महताविष्टा त्विदं वचनमब्रवीत् । मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च उपवासैरनेकशः ॥ ३५ ॥ पूजयाऽऽराधितो देवः सर्वलोकस्य भावनः । न

किन्तु हे ब्राह्मण ऋषि ! वह घर धन–धान्य से रहित हो गया ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! जब उसने घरको देखा तो उसमे कुछ भी दिखाई नही दिया, और तब वह घरसे निकलकर मेरे पास आई ॥ ३४ ॥ और क्रोधके आवेशमे आकर वह ऐसे बचन बोली, कि मैंने अनेक कृच्छ्र व्रत और उपवासोंके द्वारा ॥ ३५ ॥ सब लोकोंके स्वामी भगवान् विष्णुकी

पुराणमे कही है ॥ ७॥ एक समय स्वर्गमें इन्द्रदेवता राज्य करते थे। तब उस समय मनोहर स्वर्गमें देवगण सुखसे वास कर रहे थे ॥ ८ ॥ उस स्वर्गमें देवगण अमृत पी रहे हैं और अप्सरायें उनको सेवा कर रही हैं तथा नन्दनवन चन्दनके वृक्षोंसे शोभित हो रहा है ॥ ९ ॥ वहॉं देवता अप्सराओके साथ रमण करते हैं, हे राजन्! एक समय इन्द्रदेव अपनी इच्छासे वहॉं विहार करने

मनोरमे ॥ ८ ॥ पीयूषपाननिरता ह्यप्सरोगणसेविताः। नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपशोभितम् ॥९॥
रमयन्ति रमंत्यत्र ह्यप्सरोभिर्दिवौकसः। एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रः स्वेच्छया नृप ॥ १० ॥ नर्तया-
मास हर्षात्स पञ्चाशत्कोटिनायिकाः। गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वः पुष्पदन्तकः ॥ ११ ॥ चित्रसेनश्च
तत्रैव चित्रसेनसुता तथा। मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य कामिनी ॥ १२ ॥ मालिन्यां तु
समुत्पन्नः पुष्पवानिति नामतः। पुष्पदन्तस्य पुत्रो वै माल्यवान्नाम नामतः ॥ १३ ॥ गन्धर्वी पुष्प-
वत्याख्या माल्यवत्यतिमोहिता। कामस्य च शरैस्तीक्ष्णैर्विद्धांगी सा बभूव ह ॥ १४ ॥ तया भावैः

लगे ॥ १० ॥ वहॉं इन्द्रने हर्षसे पचास करोड़ नागिकाओंको नचाया, और वहॉं पुष्पदन्त सहित गंधर्व गान कर रहे थे ॥ ११ ॥ चित्रसेन, चित्रसेनकी पुत्री और मालिनी नामकी उसकी स्त्री भी वहींपर थी ॥ १२ ॥ मालिनीके पुष्पवान् नामका पुत्र पैदा हुआ और पुष्पदन्तके माल्यवान् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ पुष्पवान् गन्धर्वकी कन्या पुष्पवती माल्यवान् पर मोहित

हा गई, और कामदेवके तीक्ष्ण वाणोंसे उसका शरीर विंध गया अर्थात् वह कामातुर हो गई ॥ १४ ॥ उसने हाव-भाव और कटाक्षोंसे माल्यवान्‌को अपने वशमे कर लिया। हे नृप! उसके सुन्दर स्वरूपसे सम्पन्न रूपको सुनो ॥ १५॥ उसकी भुजा ऐसी है कि मानो कामदेवने गलेमें डालनेके लिए कण्ठपाश बनाया हो, उसका मुख चन्द्रमाके समान और नेत्र कान तक विस्तृत हैं

कटाक्षैश्च माल्यवांश्च वशीकृतः। लावण्यरूपसंपन्नां तस्या रूपं नृप शृणु ॥ १५ ॥ बाहू तस्यास्तु कामेन कण्ठपाशौ कृताविव। चन्द्रवद्वदनं तस्या नयने श्रवणायते ॥ १६ ॥ कर्णौ तु शोभितौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम। कंबुग्रीवायुता चैव दिव्याभरणभूषिता ॥ १७ ॥ पीनोन्नतौ कुचौ तस्या मुष्टिमात्रं च मध्यमम्। नितम्बौ विपुलौ तस्या विस्तीर्णं जघनस्थलम् ॥ १८ ॥ चरणौ शोभमानौ तौ रक्तोत्पलसमद्युती। ईदृश्या पुष्पवत्या च माल्यवानतिमोहितः ॥ १९ ॥ शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं

॥१६॥ हे राजाओमे श्रेष्ठ! उसके कान कुण्डलोंसे शोभित हो रहे हैं, सुन्दर गहनोंसे शोभित, शंखके समान उसकी ग्रीवा है॥१७॥ उसके कुच (स्तन) पुष्ट तथा ऊँचे हैं, और मुट्ठी भरकी पतली कमर है, उसके नितम्ब बड़े-बड़े हैं, और जघनस्थल बहुत विस्तीर्ण है ॥ १८ ॥ लाल कमलके समान कान्तिवाले उसके चरण शोभित हैं, ऐसी पुष्पवतीको देखकर माल्यवान् भी मोहित हो गया ॥१९॥ वे दोनो इन्द्रको प्रसन्न करने लिए वहाँ पर आये और अप्सरागणके सहित गान करने लगे ॥ २० ॥

आपसमें मोहित होनेके कारण उनका चित्त भ्रममें हो गया, जिसके कारण वे शुद्ध गान न कर सके, और परस्पर दृष्टि मिलाते हुए वे दोनों कामदेवके बाणोंके वशमे हो गये ॥ २१ ॥ वहाँ इन्द्रने उस समय रागकी गति आदि क्रिया भंग होनेसे उन दोनोंके मनके विकारको जान लिया ॥ २२ ॥ इन्द्र अपना तिरस्कार जानकर उन दोनोंपर कुपित होकर शाप देनेके लिए इस

तौ समागतौ । गायमानौ च तौ तत्र ह्यप्सरोगणसंगतौ ॥ २० ॥ शुद्धं गानं न गायेतां चित्तभ्रमसमन्वितौ । बद्धदृष्टी तथाऽन्योऽन्यं कामबाणवशं गतौ ॥ २१ ॥ ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः । तालकालक्रियामानलोपाद्गीतावभुञ्जनात् ॥ २२ ॥ चिन्तयित्वा तु मघवा ह्यवज्ञानं तथाऽऽत्मनः । कुपितश्च तयोरित्थं शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ २३ ॥ धिग्वां पापरतौ मूढावाज्ञाभंगकरौ मम । युवां पिशाचौ भवतां दम्पतीरूपधारिणौ ॥ २४ ॥ मृत्युलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणः फलम् । मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ ॥ २५ ॥ हिमवन्तमनुप्राप्ताविन्द्रशापविमोहितौ । उभौ पिशाचतां

प्रकार कहने लगा ॥ २३ ॥ पापी, मूर्ख और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले तुम दोनोंको धिक्कार है, तुम दोनों स्त्री-पुरुष मेरे शापसे पिशाच हो जाओ ॥ २४ ॥ और मृत्युलोकमें जाकर अपने कर्मोंके फलको भोगो, इस प्रकारसे शाप दिये हुए वे दोनों स्त्री-पुरुष मनमें दुःखी हुए ॥ २५ ॥ इन्द्रके शापसे युक्त वे दोनों हिमालय पर्वतपर गये, वहाँ पिशाच योनिको प्राप्त वे दोनों कठिन

वहाँ बड़े भारी दुःखको प्राप्त हुए, और शापयुक्त होनेके कारण उनको दुःख भोगने लगे ॥ २६ ॥ दुःखी मनवाले वे दोनों वहाँ बड़े भारी दुःखको प्राप्त हुए, और शापयुक्त होनेके कारण उनको गंध, रस, और स्पर्श आदिका ज्ञान भी न रहा ॥ २७ ॥ वे शरीरका पतन करनेवाले दाहसे पीडित हुए और किये हुए कर्मके कारण उन्हें निद्रा और सुख प्राप्त न हुए ॥ २८ ॥ आपसमें वाद-विवाद करते हुए पर्वत और गुफाओंमें घूमने लगे और बर्फसे

प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ॥ २६ ॥ सन्तप्तमानसौ तत्र महाकृच्छ्रगतावुभौ । गन्धं रसं च स्पर्शं च न जानन्तौ विमोहितौ ॥ २७ ॥ पीड्यमानौ तु दाहेन देहपातकरेण च । तौ न निद्रासुखं प्राप्तौ कर्मणा तेन पीडितौ ॥ २८ ॥ परस्परं वादमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरम् । पीड्यमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ ॥ २९ ॥ दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमांचितवपुर्धरौ । ऊचे पिशाचः शीतार्त्तः स्वपत्नीं तां पिशाचिकाम् ॥३०॥ किमावाभ्यां कृतं पापमत्यन्तं दुःखदायकम् । येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा ॥ ३१ ॥ नरकं दारुणं गत्वा पिशाचत्वं च गर्हितम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैव समाचरेत् ॥ ३२ ॥ इति चिन्तापरौ

उत्पन्न शीतसे पीड़ित हुए ॥ २९ ॥ शीतके कारण दाँत बजाने लगे जिससे उनके शरीरमें रोम खडे हो गये, तब वह पिशाच अपनी पिशाचिनीसे बोला ॥ ३० ॥ अत्यन्त दुःख देनेवाला ऐसा कौन-सा पाप हमने किया है, जिस अपने बुरे कर्मसे हमको पिशाचयोनि प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ निन्दित पिशाच योनिको घोर नरक मानकर सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक पाप न करे ॥ ३२ ॥

वहाँ वे दोनों दुःखसे दुर्बल चिन्तामें तत्पर हो गये, और दैवयोगसे उनको माघके शुक्लपक्षकी एकादशी प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥
जब सब तिथियोंमें उत्तम तिथि जया नामसे प्रसिद्ध एकादशी आई तब उस दिन उन दोनोंने निराहार व्रत किया ॥ ३४ ॥ हे
राजन्! वहाँ उन्होंने न तो जीव ही मारे और न फल-पत्र ही खाये, परन्तु निर्जल व्रत किया॥३५॥ वे दुःखी होकर पीपलके पेड़के

तत्र ह्यास्तां दुःखेन कर्शितौ। दैवयोगात्तयोः प्राप्ता माघस्यैकादशी सिता ॥ ३३ ॥ जयानाम्नीति
विख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः। तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते तावाहारविवर्जितौ ॥ ३४ ॥ आसाते तत्र
नृपते जलपानविवर्जितौ। न कृतौ जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम् ॥ ३५ ॥ अश्वत्थस्य समीपे
तु पतितौ दुःखसंयुतौ। रविरस्तं गतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः ॥ ३६ ॥ प्राप्ता चैव निशा घोरा
दारुणा शीतकारिणी। वेपमानौ तु तौ तत्र हिमेन च जडीकृतौ ॥ ३७ ॥ परस्परेण संलग्नौ गात्रयो-
र्भुजयोरपि। न निद्रां न रतिं तत्र न तौ सौख्यमविन्दताम् ॥ ३८ ॥ एवं तौ राजशार्दूल शापे-

नीचे पड़े रहे, हे राजन्! उन दोनोंके इस प्रकार पड़े हुए ही सूर्य अस्त हो गये ॥ ३६ ॥ और इसके बाद कड़ी शीत करनेवाली
घोर रात्रि हो गई, उसमें वे शीतसे काँपते हुए जड़के समान हो गये ॥ ३७ ॥ और रात्रिमें वे जाड़ेके मारे आपसमें शरीरसे
शरीर और भुजासे भुजा मिलाकर पड़े रहे, परन्तु उन्हें न तो निद्रा ही आई और न रति (मैथुन) की ही इच्छा हुई, और न

वे सुखको हो प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ हे राजसिंह ! इस प्रकार वे इन्द्रके शापसे पीडित हुए, और इसी प्रकार दुःखसे उनकी रात्रि व्यतीत हुई ॥ ३९ ॥ उन दोनोंके जया व्रत और रात्रि में जागरण करनेपर व्रतके प्रभावसे जैसा हुआ उसे सुनो ॥ ४० ॥ हे नृप ! उनके जया व्रत करनेपर विष्णु भगवान्के प्रभावसे द्वादशीके दिन उनकी पिशाच योनि दूर हो गई ॥ ४१ ॥

नेन्द्रस्य पीडितौ। इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम तदा निशा ॥ ३९ ॥ जयायास्तु व्रते चीर्णे रात्रौ जागरणे कृते। तयोर्व्रतप्रभावेण यथा ह्यासीत्तथा शृणु ॥ ४० ॥ द्वादशीदिवसे प्राप्ते ताभ्यां चीर्णे जयाव्रते। विष्णोः प्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम् ॥ ४१ ॥ पुष्पवती माल्यवांश्च पूर्वरूपौ बभूवतुः। पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालंकारसंयुतौ ॥ ४२ ॥ विमानमधिरूढौ तावप्सरोगणसेवितौ। स्तूयमानौ तु गंधर्वैस्तुम्बुरुप्रमुखैस्तथा ॥ ४३ ॥ हावभावसमायुक्तौ गतौ नाके मनोरमे। देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ॥ ४४ ॥ तथाविधौ तु तौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत्। इंद्र उवाच। वदेतं केन

पुष्पवती और माल्यवान् पहले रूपके समान, पहली प्रीतिसे युक्त तथा अलंकारयुक्त हो गये ॥ ४२ ॥ जब वे विमानपर चढ़ गये तब अप्सरागण और तुम्बुरु आदि प्रधान गन्धर्व उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४३ ॥ हाव-भावसे युक्त वे दोनों सुन्दर स्वर्गको गये, और देवराज इन्द्रके आगे प्रसन्नतासे उन्होंने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार उन दोनोंको देखकर इन्द्र

आश्चर्यमें होकर कहने लगे । इन्द्र बोले कि तुम दोनों बताओ कि किस पुण्यसे तुम्हारी पिशाचयोनि दूर हुई ॥ ४५ ॥ मेरे शापको प्राप्त हुए तुम दोनोंको किस देवताने छुड़ाया है ? माल्यवान् बोला कि वासुदेवके प्रसादसे और जया नामकी एकादशीके व्रत करनेसे ॥ ४६ ॥ हे स्वामी ! भक्तिके प्रसादसे हमारी पिशाचयोनि दूर हुई यह सत्य ही है। उसके ऐसे वचन सुनकर

पुण्येन पिशाचत्वं विनिर्गतम् ॥ ४५ ॥ मम शापवशं प्राप्तौ केन देवेन मोचितौ । माल्यवानुवाच । वासुदेवप्रसादेन जयायाः सुव्रतेन च ॥ ४६ ॥ पिशाचत्वं गतं स्वामिन् सत्यं भक्तिप्रसादतः । इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्युवाच सुरेश्वरः ॥ ४७ ॥ इन्द्र उवाच । पवित्रौ पावनौ जातौ वन्दनीयौ ममापि च । हरिवासरकर्त्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ ॥ ४८ ॥ हरिभक्तिरता ये च शिवभक्तिरतास्तथा । अस्मा-कमपि ते मर्त्याः पूज्या वंद्या न संशयः ॥ ४९ ॥ विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवत्या सुरालये । एतस्मा-त्कारणाद्राजन्कर्तव्यो हरिवासरः ॥ ५० ॥ जयाव्रतं तु राजेन्द्र ब्रह्महत्यापहारकम् । सर्वदानानि

इन्द्र कहने लगे ॥ ४७ ॥ इन्द्र बोले कि हरिवासरको करनेवाले तथा विष्णुकी भक्तिमें तत्पर, पवित्र और पावन, तुम मेरे लिए भी वन्दनीय हो ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य विष्णुभक्ति तथा शिवभक्तिमें तत्पर हैं वे निःसंदेह हमारे लिए भी पूज्य और वंदनीय हैं ॥ ४९ ॥ अब तुम पुष्पवतीके साथ स्वर्गमें आनन्दसे विहार करो । हे राजन् ! इस कारणसे हरिवासर अवश्य करना

चाहिए ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! जयाका व्रत ब्रह्महत्याको हरनेवाला है, हे नृप ! उसने सब दान दिये और सब यज्ञ किये ॥ ५१ ॥ और उसने सब तीर्थोंमें स्नान किया, जिसने कि जया एकादशीका व्रत किया है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ भक्तिसे

दत्तानि यज्ञास्तेन कृता नृप ॥ ५१ ॥ सर्वतीर्थेषु स स्नातः कृतं येन जयाव्रतम्। यः करोति नरो भक्त्या श्रद्धायुक्तो जयाव्रतम् ॥ ५२ ॥ कल्पकोटिशतं यावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम्। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५३ ॥

जयाके व्रतको करता है ॥ ५२ ॥ वह निश्चय ही सौ करोड़ कल्पतक वैकुण्ठ लोकमें आनन्द करता है। हे राजन्! इस जयाके माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके फलको प्राप्त करता है ॥ ५३ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे माघशुक्लैकादशीजयामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथ फाल्गुनकृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच। फाल्गुनस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्। वासुदेव प्रसादेन कथयस्व

युधिष्ठिर बोले—कि फाल्गुन कृष्ण पक्षमे किस नामकी एकादशी होती है, हे वासुदेव! कृपा करके मुझसे

ममाग्रतः ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । कथयिष्यामि राजेंद्र कृष्णे या फाल्गुने भवेत् । विजयेति च सा प्रोक्ता कर्तॄणां जयदा सदा ॥ २ ॥ तस्याश्च व्रतमाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् । नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ ३ ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजया नाम या तिथिः । तस्या व्रतं सुरश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ इति पृष्टो नारदेन प्रत्युवाच पितामहः । ब्रह्मोवाच । शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥ ५ ॥ पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम् ॥ ६ ॥ जयं ददाति विजया नृणां चैव न संशयः । रामस्तपोवनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश ॥ ७ ॥

कहिये ॥ १ ॥ कृष्णजी बोले—हे राजेन्द्र ! फाल्गुनके कृष्णमे होनेवाली एकादशीका नाम विजया है । जो मनुष्य इसका व्रत करते हैं उनको यह सदा विजय देती है, उसकी कथा मैं तुमसे कहूँगा ॥२॥ विजयाके व्रतका माहात्म्य सब पापोंको नष्ट करनेवाला है, एक समय नारदमुनिने भी कमलासन ब्रह्माजी से पूछा कि ॥ ३ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! फाल्गुनके कृष्ण पक्षमें जो विजया नामकी एकादशी तिथि है उसके व्रतको कृपा करके आप मुझसे कहिए ॥ ४ ॥ इस प्रकार नारदके पूछनेपर ब्रह्माजी कहने लगे, ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! सुनो, मैं तुमसे पापोंको हरनेवाली उत्तम कथाको कहता हूँ ॥ ५ ॥ यह पुराना पवित्र व्रत पापोंको नष्ट करनेवाला है, और इस विजया व्रतको मैंने किसीसे भी नहीं कहा है अर्थात् यह गोपनीय है ॥ ६ ॥ यह विजया मनुष्योंकी विजय

करानेवाली है यह बात निश्चित हो है। भगवान् रामचन्द्रजी चौदह वर्षके लिए तपोवनको गये ॥ ७ ॥ और सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने पञ्चवटीपर वास किया, वहाँ महात्मा रामके रहते हुए ॥ ८ ॥ रावणने सीता नामकी तपस्विनी रामकी स्त्रीको चुरा लिया, इसके बाद उस दुःखसे राम मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् महान् दुःखी हुए ॥ ९ ॥ वनमें घूमते हुए रामने मरे हुए

न्यवसत्पञ्चवट्यां तु ससीतश्च सलक्ष्मणः। तत्रैव वसतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥ ८ ॥ रावणेन हृता भार्या सीतानाम्नी तपस्विनी। तेन दुःखेन रामोऽसौ मोहमभ्यागतस्तदा ॥ ९ ॥ भ्रमञ्जटायुषं तत्र ददर्श विगतायुषम्। कबन्धो निहतः पश्चाद्भ्रमताऽरण्यमध्यतः ॥ १० ॥ राज्ञे विज्ञाप्य तत्सर्वं सोऽपि मृत्युवशं गतः। सुग्रीवेण समं सख्यं रामस्य समजायत ॥ ११ ॥ वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि वै। ततो हनुमता दृष्टा लंकोद्याने तु जानकी ॥ १२ ॥ रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम्। समेत्य रामेण पुनः

जटायुको देखा, और फिर वनमें घूमते हुए रामने कबन्ध नामक राक्षसको मारा ॥ १० ॥ रामसे सीताका सब समाचार कहकर जटायु भी मृत्युको प्राप्त हो गया, और सुग्रीवके साथ रामको मित्रता हो गई ॥ ११ ॥ और रामके लिए वानरोंकी सेना इकट्ठी हुई, इसके बाद हनुमान् ने लंकाके बगीचेमें जानकीको देखा ॥ १२ ॥ रामका चिह्न (अँगूठी) सीताको देकर हनुमान्ने बड़ा भारी काम

किया, और फिर रामके पास आकर हनुमान्ने वहाँका सब वृत्तांत रामको सुना दिया ॥ १३ ॥ इसके बाद हनुमान्के वचनोंको
सुनकर रामचन्द्रने सुग्रीवके मतानुसार प्रस्थान किया ॥ १४ ॥ वानरोंके साथ राम समुद्रके किनारेपर गये, और वहाँ समुद्रको पार
करनेमे कठिन देखकर वानरप्रिय राम विस्मित हो गये ॥ १५ ॥ फिर उत्फुल्ल नेत्र होकर लक्ष्मणसे बोले कि हे सुमित्रानन्दन ! यह

सर्वं तत्र निवेदितम् ॥ १३ ॥ अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यं चैव हनूमतः । सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत् ॥ १४ ॥ स गत्वा वानरैः सार्धं तीरं नदनदीपतेः । दृष्ट्वाऽब्धिं दुस्तरं रामो विस्मितोऽभूत्कपिप्रियः ॥१५॥ प्रोत्फुल्ललोचनो भूत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः ॥१६॥ अगाधसलिलैः पूर्णो नक्रैर्मीनैः समाकुलः । उपायं नैव पश्यामि येनायं सुतरो भवेत् ॥ १७ ॥ लक्ष्मण उवाच । आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तमः । बकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्त्तते द्वीपमध्यतः ॥ १८ ॥ अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्तस्य राघव । अनेन दृष्टा बहवो ब्रह्माणो रघुनन्दन ॥ १९ ॥ तं पृच्छ

समुद्र किस पुण्यसे पार किया जाय ॥ १६ ॥ यह मगर और मीनसे युक्त अगाध जलसे परिपूर्ण है, मैं ऐसा कोई उपाय नहीं देख
रहा हूँ जिससे यह आसानीसे पार किया जाय ॥ १७ ॥ लक्ष्मण बोले—कि आदिदेव और पुराणपुरुषोत्तम आप ही हैं, इसी
द्वीपके अन्दर बकदाल्भ्य मुनि रहते हैं ॥ १८ ॥ हे राघव ! यहाँ से दो कोशकी दूरीपर उनका आश्रम है, हे रघुनन्दन ! इन

मुनिने बहुतसे ब्रह्मा देखे हैं ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! उन पुरातन मुनिश्रेष्ठ के पास जाकर पूछिये, तत्पश्चात् लक्ष्मण के ऐसे सुन्दर वचन सुनकर ॥ २० ॥ रामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्यको देखनेको गये, और दूसरे विष्णुके समान उन मुनिको रामने मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥ २१ ॥ फिर मुनिने रामको पुराणपुरुषोत्तम जानकर कहा कि हे राम ! तुम कहाँसे आये

गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुङ्गवम् । इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम् ॥ २० ॥ जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम् । प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवापरम् ॥ २१ ॥ मुनिर्ज्ञात्वा ततो रामं पुराणपुरुषोत्तमम् । उवाच स ऋषिस्तत्र कुतो राम तवागमः ॥ २२ ॥ राम उवाच । त्वत्प्रसादादहो विप्र वरुणालयसन्निधिम् । आगतोऽत्र ससैन्योऽस्मि लंकां जेतुं सराक्षसाम् ॥ २३ ॥ भवतश्चानुकूल्येन तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया । तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ २४ ॥ मुनिरुवाच । कथयिष्याम्यहं राम व्रतानां व्रतमुत्तमम् । कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति ॥ २५ ॥ लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च

हो ॥ २२ ॥ राम बोले—हे विप्र ! तुम्हारी कृपासे मैं राक्षसोंसे युक्त लंकाको जीतनेके लिए सेना सहित समुद्रके तटपर आया हूँ ॥ २३ ॥ हे मुनि ! आपकी कृपासे जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके ऐसा उपाय बतलाइये, और हे सुव्रत ! प्रसन्न हो जाइये ॥२४॥ मुनि बोले—हे राम ! मैं सब व्रतोंमे उत्तम व्रतको कहता हूँ जिसके करनेसे तुम्हारी शीघ्र विजय हो जायगी ॥२५॥

करेंगे उनकी इस लोकमे तथा परलोकमें सदा विजय होवेगी ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी नारद मुनिसे कहते हैं कि हे पुत्र ! इस कारणसे विजया एकादशीका व्रत अवश्य करना चाहिए, इसके माहात्म्यको पढ़ने तथा सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ ४० ॥

इह लोके जयस्तेषां परलोके सदा जयः ॥ ३९ ॥ एतस्मात्कारणात्पुत्र ! कर्त्तव्यं वियजाव्रतम् । पठनाच्छ्रवणात्तस्य वाजपेयफलं लभेत् ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कंदपुराणे फाल्गुनकृष्णैकादश्या विजयानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथ फाल्गुनशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

मान्धातोवाच ॥ वद ब्रह्मन्महाभाग येन श्रेयो भवेन्मम । ईदृग्व्रतं ब्रह्मयोने तेऽनुकम्पाऽस्ति चेन्मयि ॥ १ ॥ वसिष्ठ उवाच । सरहस्यं सेतिहासं व्रतानां व्रतमुत्तमम् । कथयाम्यधुना तुभ्यं सर्वभूतफलप्रदम् ॥२॥ आमलक्या व्रतं राजन् महापातकनाशनम् । मोक्षदं सर्वलोकानां गोसहस्रफलप्रदम् ॥३॥

मान्धाता बोले—हे ब्रह्मन् ! हे महाभाग ब्रह्मयोने ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा हो तो ऐसे व्रतको बतलाइए जिससे मेरा कल्याण होवे ॥ १ ॥ वसिष्ठ बोले—रहस्य और इतिहासके सहित सब प्राणियोंको फल देनेवाले और सब व्रतोंमे उत्तम व्रतको इस समय तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ हे राजन् ! आमलकी एकादशीका व्रत बड़े-बड़े पातकों को नष्ट करनेवाला है, सब

लोगोंको मोक्ष और सहस्र गोदानके फलको देनेवाला है ॥ ३ ॥ हिंसामे लगा हुआ शिकारी भी मुक्तिको प्राप्त हो गया, इसका यहाँ प्राचीन उदाहरण देते है ॥ ४ ॥ हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे युक्त तथा चारों वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रसे शोभायमान वैदिश नामका नगर था ॥ ५ ॥ हे राजसिंह ! उस सुन्दर नगरमें कोई नास्तिक तथा बुरी वृत्तिवाला मनुष्य न था

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यथा मुक्तिमनुप्राप्तो व्याधो हिंसासमन्वितः ॥ ४ ॥ वैदिशं नाम नगरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च समलंकृतम् ॥ ५ ॥ रुचिरं नृपशार्दूल ब्रह्मघोषनिनादितम्।न नास्तिको न दुर्वृत्तस्तस्मिन् पुरवरे सदा ॥६॥ तत्र शोमान्वये राजा विख्यातश्शशविन्दुकः । राजा चैत्ररथो नाम धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ ७ ॥ नागायुतबलः श्रीमान् शस्त्रशास्त्रार्थपारगः । तस्मिन् शासति धर्मज्ञे धर्मात्मनि धरां प्रभो ॥ ८ ॥ कृपणो नैव कुत्रापि दृश्यते नैव निर्धनः । सुकालः क्षेममारोग्यं तस्मिन् राज्यं प्रशासति ॥९॥ विष्णुभक्तिरता लोकास्तस्मिन् पुरवरे सदा । हरपूजारताश्चैव राजा चापि

और वह नगर हमेशा वेदध्वनिसे शब्दायमान हाता रहता था ॥ ६ ॥ उस नगरमे शशविन्दु नामका राजा प्रसिद्ध था, उसीके चन्द्रवंशमे चैत्ररथ नामका धर्मात्मा और सत्यवादी राजा उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह राजा दश हजार हाथियोंके समान बलशाली, लक्ष्मीसे सम्पन्न तथा शस्त्र-शास्त्रोंको जाननेवाला था । हे प्रभो ! उस धर्मात्मा और धर्मज्ञ राजाके शासनकालमे ॥ ८ ॥

कहीं भी कृपण और निर्धन दिखाई नहीं देते थे, हमेशा सुभिक्ष, क्षेम और आरोग्यका ही साम्राज्य था ॥ ९ ॥ उसके राज्यमे प्रजा विष्णुभक्ति और शिवभक्तिमे रत थी और विशेपकर राजा भी उनकी भक्तिमे तत्पर था ॥ १० ॥ शुक्लपक्षकी तथा कृष्णपक्षको द्वादशीयुक्त एकादशीमे मनुष्य भोजन नहीं करते थे और सब धर्मोंको छोडकर विष्णुकी भक्तिमे ही

विशेषतः ॥१०॥ न कृष्णायां न शुक्लायां द्वादश्यां भुञ्जते जनाः। सर्वधर्मान्परित्यज्य हरिभक्तिपरायणाः ॥११॥ एवं संवत्सरा जग्मुर्बहवो राजसत्तम। जनस्य सौख्ययुक्तस्य हरिभक्तिरतस्य च ॥ १२ ॥ अथ कालेन संप्राप्ता द्वादशी पुण्यसंयुता। फाल्गुनस्य सिते पक्षे नाम्ना ह्यामलकी स्मृता ॥१३॥ तामवाप्य जनाः सर्वे बालकास्स्थविरा नृप। नियमं चोपवासं च सर्वे चक्रुर्नरा विभो ॥ १४ ॥ महाफलं व्रतं ज्ञात्वा स्नानं कृत्वा नदीजले। तत्र देवालये राजा लोकयुक्तो महाप्रभुः ॥१५॥ पूर्णकुम्भमवस्थाप्य छत्रोपानहसंयुतम्।

तत्पर रहते थे ॥ ११ ॥ हे राजश्रेष्ठ! इस प्रकार सुखपूर्वक विष्णुभक्तिमे लीन मनुष्योंके बहुतसे वर्ष व्यतीत हो गये ॥ १२ ॥ इसके बाद कुछ समय बीतनेपर फाल्गुन शुक्लपक्षकी आमलकी नामकी द्वादशीयुक्त पुण्य तिथि एकादशी आई ॥ १३ ॥ हे नृप! एकादशीके आनेपर बालक तथा वृद्ध सब मनुष्योंने नियमपूर्वक उपवास किया ॥ १४ ॥ उस व्रतको महाफलप्रद जानकर राजा नदीमें स्नान करके मनुष्योंके सहित भगवान्‌के मन्दिरमें गया ॥ १५ ॥ वहाँ राजाने

छाता, जूता तथा पञ्चरत्नोंसे युक्त सुन्दर गन्धसे सुगन्धित कलशको स्थापित किया ॥ १६ ॥ हे धात्रि ! हे ब्रह्मासे पैदा होनेवाली ! हे सब पापोंको नष्ट करनेवाली ! हे आमलकि ! तुमको नमस्कार है, तुम मेरे अर्घको ग्रहण करो ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मासे उत्पन्न ! तुम ब्रह्मस्वरूप हो और रामने तुम्हारी पूजा की है, परिक्रमा करनेसे तुम मेरे सब पापोंको हर लो ॥ १८ ॥

पंचरत्नसमायुक्तं दिव्यगंधादिवासितम् ॥ १६ ॥ धात्रि धातृसमुद्भूते सर्वपातकनाशिनि । आमलकि नमस्तुभ्यं गृहाणार्घोदकं मम ॥ १७ ॥ धात्रि ब्रह्मस्वरूपाऽसि त्वं तु रामेण पूजिता । प्रदक्षिणविधानेन सर्वपापहरा भव ॥ १८ ॥ तत्र जागरणं चक्रुर्जनाः सर्वे स्वभक्तितः । एतस्मिन्नेव काले तु व्याधस्तत्र समागतः ॥ १९ ॥ क्षुधाश्रमपरिव्याप्तो महाभारेण पीडितः । कुटुम्बार्थं जीवघाती सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥२०॥ जागरं तत्र सोऽपश्यदामलक्यां क्षुधान्वितः । दीपमालाकुलं दृष्ट्वा तत्रैव निषसाद सः ॥२१॥ किमेतदिति संचिन्त्य प्राप्तो विस्मयतां भृशम् । ददर्श कुम्भं तत्रस्थं देवं दामोदरं तथा ॥ २२ ॥ ददर्शा-

वहाँ सब मनुष्योंने भक्तिपूर्वक जागरण किया, उसी समय वहाँ कोई शिकारी आ गया ॥ १९ ॥ वह भूख और परिश्रमसे युक्त, बडे भारी बोझसे दुःखी, जीवों को मारनेवाला सब धर्मोंसे बहिष्कृत था (अर्थात् बाहर निकाल दिया गया था) ॥ २० ॥ वह भूखा व्याध वहाँ आमलकी एकादशीके जागरणको और दीपमालाओंसे युक्त उस स्थानको देखकर वहींपर बैठ गया ॥ २१ ॥ और यह क्या है ऐसा विचार कर आश्चर्यको प्राप्त हो कर उसने वहाँपर स्थापित कलशके ऊपर दामोदर भगवान्-

को देखा ॥ २२ ॥ और वहाँ ऑवलेके वृक्षको तथा दीपकोंको देखा और कथा पढ़नेवाले मनुष्योसे विष्णु भगवान्‌की
कथा सुनी ॥ २३ ॥ और भूखसे पीडित व्याधने एकादशी का माहात्म्य सुना तथा आश्चर्यको प्राप्त हुए उसकी रात्रि जागते
हुए ही बीत गई ॥ २४ ॥ प्रातःकालके समय सब मनुष्य नगर को चले गये, और व्याधने भी घर आकर प्रेमके साथ भोजन

मलकीवृक्षं तत्रस्थांश्चैव दीपकान् । वैष्णवं च तथाऽऽख्यानं शुश्राव पठतां नृणाम् ॥ २२ ॥ एकादश्याश्च
माहात्म्यं शुश्राव क्षुधितोऽपि सन् । जाग्रतस्तस्य सा रात्रिर्गता विस्मितचेतसः ॥ २४ ॥ ततः प्रभात-
समये विविशुर्नगरं जनाः । व्याधोऽपि गृहमागत्य बुभुजे प्रीतमानसः ॥ २५ ॥ ततः कालेन महता
व्याधः पंचत्वमागतः । एकादश्याः प्रभावेण रात्रौ जागरणेन च ॥ २६॥ राज्यं प्रपेदे सुमहच्चतुरङ्गबला-
न्वितम् । जयन्ती नाम नगरी तत्र राजा विदूरथः ॥ २७ ॥ तस्मात्स तनयो जज्ञे ताम्ना वसुरथो बली ।
चतुरङ्गबलोपेतो धनधान्यसमन्वितः ॥२८॥ दशायुतानि ग्रामाणां बुभुजे भयवर्जितः । तेजसाऽऽदित्यस-

किया ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् बहुत समय बीतनेपर वह व्याध मर गया, एकादशीकी कृपासे तथा रात्रिमे जागरण करनेसे ॥ २६ ॥
उस व्याधने अगले जन्ममे चतुरंगिणी सेनासे युक्त राज्य प्राप्त किया और वह जयन्ती नामकी नगरीमें विदूरथ नामका
प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ २७ ॥ उस राजाके चतुरंगिणी सेनासे युक्त तथा धनधान्यवाला, महाबली, वसुरथ नामका पुत्र पैदा

हुआ ॥ २८ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान कान्तिवाला और निर्भय वह पुत्र दश सहस्र ग्रामोंपर राज्य करता था ॥ २९ ॥ वह पराक्रममें विष्णुके समान तथा सहनशीलतामे पृथिवीके समान था और धर्मात्मा, सत्यवादी तथा विष्णुकी भक्तिमे तत्पर था ॥ ३० ॥ वह राजा ब्रह्मज्ञानी, अच्छे कर्म करनेवाला तथा प्रजाके पालनमे तत्पर था, शत्रुओं-

ङ्काशः कांत्या चन्द्रसमप्रभः ॥ २९ ॥ पराक्रमे विष्णुसमः क्षमया पृथिवी समः । धार्मिकः सत्यवादी च विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञः कर्मशीलश्च प्रजापालनतत्परः । यजते विविधान्यज्ञान्स राजा परदर्पहा ॥ ३१ ॥ दानानि विविधान्येव प्रददाति च सर्वदा । एकदा मृगयां यातो दैवान्मार्गपरिच्युतः ॥३२॥ न दिशो नैव विदिशो वेत्ति तत्र महीपतिः । उपधाय च दोर्मूलमेकाकी गहने वने ॥३३॥ श्रांतश्च क्षुधितोऽत्यन्तं संविवेश महीपतिः । अत्रान्तरे म्लेच्छगणः पर्वतान्तरवासभाक् ॥ ३४ ॥ आययौ

के अभिमानको चूर-चूर करनेवाला तथा अनेक प्रकारके यज्ञोंका कर्ता था ॥ ३१ ॥ वह हमेशा अनेक प्रकारके दान करता था, एक समय वह राजा शिकार खेलने गया और दैवयोगसे मार्ग भूल गया ॥ ३२ ॥ वहाँ उसे दिशा इत्यादिका ज्ञान न रहा तब वह अकेला गहन वनमे अपनी भुजा शिरके नीचे रखकर सो गया ॥ ३३ ॥ अत्यन्त थका हुआ वह राजा भूखा ही सो गया, इसके बाद पर्वतपर रहनेवाला म्लेच्छोंका गण ॥ ३४ ॥ वहाँपर आया जहाँ कि शत्रुके बलको मर्दन

करनेवाला वह राजा सो रहा था, राजासे वैर करनेसे वह म्लेच्छ गण राजाके द्वारा सदा दुखी रहता था ॥ ३५ ॥ इसके बाद
उस म्लेच्छगणने उस भूरिदक्षिण राजाको घेर लिया, पहले वैररो विरुद्ध बुद्धिवाला वह गण 'राजाको मारो-मारो' इस प्रकार
कहने लगा ॥ ३६ ॥ पहले इस राजाने हमारे पिता, भाई, पुत्र, पौत्र, भानजे और मामा वगैरहको मारा है ॥ ३७ ॥ अपने

तत्र यत्रास्ते राजा परबलार्दनः । कृतवैरास्तु ते राज्ञा सर्वदैवोपतापिताः ॥ ३५ ॥ परिवार्य ततस्तस्थू
राजानं भूरिदक्षिणम् । हन्यतां हन्यतां चायं पूर्ववैरविरुद्धधीः ॥ ३६ ॥ अनेन निहताः पूर्वं पितरो
भ्रातरः सुताः । पौत्राश्च भागिनेयाश्च मातुलाश्च निपातिताः ॥ ३७ ॥ निष्कासिताश्च स्वस्थानाद्विक्षिप्ताश्च
दिशो दश । एतावदुक्त्वा ते सर्वे तत्रैनं हंतुमुद्यताः ॥३८॥ पाशैश्च पट्टिशैः खड्गैर्बाणैर्धनुषि संस्थितैः ।
सर्वतोऽरिगणास्ते च राजानं हंतुमुद्यताः ॥ ३९ ॥ सर्वाणि शस्त्राणि समा द्रवन्ति न वै शरीरे प्रविशंति
तस्य । ते चापि सर्वे हतशस्त्रसंघा म्लेच्छा बभूवुर्गतदेहजीवाः ॥ ४० ॥ पदापि चलितुं तत्र न शेकुस्ते-

स्थानसे निकाले गये हम लोग दशों दिशाओं मे फैल गये, इस प्रकार कहकर वे सब राजाको मारनेको तैयार हो गये ॥३८॥
अपने हाथोंमे लिए हुए पाश, पट्टिश, तलवार और धनुषपर चढ़ाये हुए बाणोंसे वह शत्रुगण चारों तरफसे राजाको
मारनेके लिए तैयार हो गया ॥ ३९ ॥ राजाके ऊपर छोड़े हुए सब शस्त्र राजाके शरीरमें न घुस सके, तब नष्ट हो गये हैं

शस्त्र जिनके ऐसे वे म्लेच्छ मृतकके समान हो गये ॥ ४० ॥ वे शत्रुगण वहाँ एक पद भी न चल सके और नष्ट
चित्तवाले उन सबके शस्त्र खोटे हो गये ॥ ४१ ॥ जो राजाको मारनेके लिए आये थे वे सब दीन हो गये, और उसी
समय राजाके शरीरसे ॥ ४२ ॥ दिव्यगन्धसे युक्त तथा सुन्दर गहनोंसे सुशोभित और सब अङ्गोंसे सुन्दर एक कन्या

ऽरयो भृशम् । शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुः सर्वेषां हतचेतसाम् ॥४१॥ दीना बभूवुस्ते सर्वे यं ते हन्तुं समा-
गताः । एतस्मिन्नेव काले तु तस्य राज्ञः शरीरतः ॥४२॥ निःसृता प्रमदा ह्येका सर्वावयवशोभना । दिव्य-
गन्धसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिता ॥ ४३ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरा भ्रुकुटीकुटिलानना । सस्फुलिंगं च
नेत्राभ्यां वमन्ती पावकं बहु ॥ ४४ ॥ चक्रोद्यतकरा चैव कालरात्रिरिवापरा । अभ्यधावत संक्रुद्धा म्लेच्छा-
नत्यन्तदुःखितान् ॥ ४५ ॥ निहताश्च यदा म्लेच्छास्ते विकर्मरतास्तया । ततो राजा विबुद्धः सन् ददर्श
महदद्भुतम् ॥ ४६ ॥ हतान् म्लेच्छगणान्दृष्ट्वा राजा हर्षमवाप सः । इह केन हता म्लेच्छा अत्यन्तं वैरिणो

निकली ॥ ४३ ॥ सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, क्रोधसे भौंहे चढ़ाये हुए और नेत्रोंसे चिनगारियाँ बरसाती
हुयी वह ऐसी लग रही थी मानो बहुतसी अग्नि उगल रही हो ॥ ४४ ॥ दूसरी कालरात्रिके समान क्रोधित होकर तथा हाथमे
चक्र लेकर वह उन दुःखी म्लेच्छोंपर दौड़ी ॥ ४५ ॥ जब कुकर्ममे लगे हुए म्लेच्छ उस स्त्रीके द्वारा मारे गये तब राजा उठा
और उसने बड़े भारी इस अद्भुत कार्यको देखा ॥ ४६ ॥ मरे हुए म्लेच्छगणोंको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और बोला

कि मेरे अत्यन्तवैरी इन म्लेच्छोंको यहाँ किसने मारा है ॥ ४७ ॥ हमारे किस हितैषीने यह बड़ा भारी कार्य किया है, ऐसा राजाके कहनेके समय ही ॥ ४८ ॥ निष्काम और आश्चर्ययुक्त राजाको देखकर आकाशवाणी हुई कि केशव भगवान्-

मम ॥ ४७ ॥ केन चेदं महत्कर्म कृतमस्मद्धितार्थिना । एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ॥४८॥ तं स्थितं नृपतिं दृष्ट्वा निष्कामं विस्मयान्वितम् । शरणं केशवादन्यो नास्ति कोऽपि द्वितीयकः ॥ ४९ ॥ वनात्तस्मात्स कुशली समायातोऽपि भूमिभुक् । राज्यं चकार धर्मात्मा धरायां देवतेशवत् ॥ ५० ॥ वसिष्ठ उवाच । तस्मादामलकीं राजन् ये कुर्वंति नरोत्तमाः । ते यांति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५१ ॥

के अतिरिक्त कोई दूसरा शरण या रक्षक नहीं है ॥ ४९ ॥ वह धर्मात्मा राजा वनसे कुशलपूर्वक घर आया और उसने पृथिवी-पर इन्द्रके समान राज्य किया ॥ ५० ॥ वसिष्ठजी बोले-हे राजन् ! जो उत्तम पुरुष इस आमलकी एकादशीका व्रत करते हैं वे विष्णुलोकको जाते हैं यह बात बिना विचारे ही सत्य है ॥ ५१ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे फाल्गुनशुक्लैकादश्यामलकीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ८ ॥



युधिष्ठिर बोले—कि मैंने फाल्गुनके शुक्ल पक्षकी आमला एकादशीकी कथा सुनी, अब चैत्रके कृष्ण पक्षकी एकादशीका क्या नाम है उसे भी बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले—हे राजेन्द्र! सुनो, पापोंको दूर करनेवाली एकादशी, जिसको चक्रवर्ती मान्धाता राजाने लोमश ऋषिसे पूछा था उसे मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ मान्धाता बोले—हे भगवन्!

अथ चैत्रकृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । फाल्गुनस्य सिते पक्षे श्रुता साऽऽमलकी मया । चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि पापमोचनिकाव्रतम् । यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥ २ ॥ मान्धातोवाच । भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया । चैत्रमासासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ ३ ॥ को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः । लोमश उवाच । श्रूयतां राजशार्दूल कामदा सिद्धिदा तथा । कथा विचित्रा शुभदा पापहा धर्मदायिनी ॥ ४ ॥ पुरा

मैं संसारकी भलाईकी इच्छासे चैत्रके कृष्णपक्ष की एकादशीका नाम सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ उसकी विधि और फल आप कृपा करके कहिये, लोमश ऋषि बोले—हे नृप! कामनाको पूर्ण करनेवाली, सिद्धिको देनेवाली, मंगलदात्री, पापोको नष्ट करनेवाली और धर्मको बढ़ानेवाली विचित्र कथाको कहता हूँ ॥ ४ ॥ पहले वसन्त ऋतुके समयमे पुष्पोसे

युक्त चैत्ररथ नामके वनमें अप्सरायें विहार कर रहीं थीं ॥ ५ ॥ उस वनमे गन्धर्वोंको कन्या किन्नरोंके साथ रमण करती थीं और इन्द्र आदि मुख्य देवता उसमे क्रीडा करते थे ॥ ६ ॥ उस चैत्ररथ वनसे सुन्दर कोई वन नहीं है, उसमे मुनिगण बड़ा भारी तप कर रहे थे ॥ ७ ॥ वहाँ चैत्र मासमें देवराज इन्द्र देवताओंके साथ विहार करता था, और उसी वनमे

चैत्ररथोद्देशे ह्यप्सरोगणसेविते । वसन्तसमये प्राप्ते पुष्पैराकुलिते वने ॥ ५ ॥ गन्धर्वकन्यास्तत्रैव रमंते सह किन्नरैः । पाकशासनमुख्याश्च क्रीडन्ते च दिवौकसः ॥ ६ ॥ नापरं सुंदरं किंचिद्वनाच्चैत्ररथाद्वनम् । तस्मिन्वने तु मुनयस्तपंति बहुलं तपः ॥ ७ ॥ सह देवैस्तु मघवा रमते मधुमाधवे । एको मुनिवरस्तत्र मेधावी नाम नामतः ॥ ८ ॥ अप्सरास्तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे । मंजुघोषेति विख्याता भावं तस्य विचिन्वती ॥ ९ ॥ क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रमसन्निधौ । गायंती मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ॥ १० ॥ गायन्तीं तामथालोक्य पुष्पचंदनवेष्टिताम् । कामोऽपि विजयाकांक्षी

मेधावी नामका एक मुनिवर रहता था ॥ ८ ॥ उनमेंसे मंजुघोषा नामकी प्रसिद्ध अप्सराने मुनिके भावको जाननेकी इच्छा की उस मुनिको मोहित करनेका उपाय सोचने लगी ॥ ९ ॥ और वह मुनिके भयसे आश्रमसे एक कोश दूर ठहरकर वीणा बजाती हुई मधुर और सुन्दर गान करने लगी ॥ १० ॥ इसके बाद फूल और चन्दनसे शोभित उस अप्सरा-

को गाती हुई देखकर कामदेवने शिवके भक्त मुनिराजको जीतनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ शिवके वैरको याद करते हुए कामदेवने अप्सराके शरीरसे संसर्ग करनेकी इच्छासे उसकी भौंहोंका धनुष और उसके कटाक्षोंको डोरी बनाई ॥ १२ ॥ इस प्रकार क्रमसे उसके नेत्रोंको पक्षयुक्त बाण बनाया, और कुचोंको पटकुटी बनाकर विजय करने लिए तैयार हो गया

शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥ ११ ॥ तस्याः शरीरसंसर्गं शिववैरमनुस्मरन्। कृत्वा भ्रुवोर्धनुष्कोटो गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ॥ १२ ॥ मार्गणौ नयने कृत्वा पक्षयुक्तौ यथाक्रमम्। कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपसंस्थितः ॥ १३ ॥ मंजुघोषाऽभवत्तत्र कामस्येव बरूथिनी। मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वा साऽपि कामेन पीडिता ॥ १४ ॥ यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यतिविराजते। सितोपवीतसंवीतो दण्डी स्मर इवापरः ॥ १५ ॥ मेधावी वसति स्मासौ च्यवनस्याश्रमे शुभे। मंजुघोषा स्थिता तत्र दृष्ट्वा तं मुनिपुंगवम् ॥ १६ ॥ मदनस्य वशं प्राप्ता मंदं मंदमगायत। रणद्वलयसंयुक्ता शिंजन्नूपुरमेखला ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ वहाँ मंजुघोषा कामदेवकी सेनाके समान हो गई और मेधावी मुनिको देखकर वह कामसे पीड़ित हो गई ॥ १४ ॥ यौवनसे युक्त वह मेधावी मुनि शोभाको प्राप्त हुआ और सफेद यज्ञोपवीतको पहने हुए दूसरे दण्डधारी कामदेवके समान लगने लगा ॥ १५ ॥ वह मेधावी च्यवन ऋषिके जिस सुन्दर आश्रममे वास करता था वहींपर मुनियोमे श्रेष्ठ

रातके समान ही जाना, इसके बाद उस समयके बीतने पर वह अप्सरा मुनसे बोली—हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दो मैं अपने घर जाना चाहती हूँ ॥ २८ ॥ मेधावी बोले—हे सुन्दरी मेरे वचनोंको सुनो, अभी तो प्रातःकाल ही है अतः जबतक मैं सन्ध्याकरूँ तबतक तुम यहीं ठहरो ॥ २९ ॥ ऐसे मुनिके वचनोंको सुनकर वह भयसे व्याकुलहो गई, और फिर वह आश्चर्यको प्राप्त करती हुई

मेधाव्युवाच । प्रातः कालोऽधुनैवास्ते श्रूयतां वचनं मम । कुर्वे संध्यामहं यावत्तावत्त्वं वै स्थिरा भव ॥ २९ ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा भयेन च समाकुला । स्मितं कृत्वा तु सा किञ्चित् प्रत्युवाच सुविस्मिता ॥ ३० ॥ अप्सरा उवाच । कियत्प्रमाणी विप्रेन्द्र ! तव संध्या गता न वा । मयि प्रसादं कृत्वा तु गतः कालो विचार्यताम् ॥ ३१ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः । ध्यात्वा हृदि विप्रेन्द्रः प्रमाणमकरोत्तदा ॥ ३२ ॥ समाश्च सप्तपंचाशद्गता मम तया सह । नेत्राभ्यां विस्फुलिंगान्स मुंचमानोऽतिकोपनः ॥ ३३ ॥ कालरूपां च तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् । दुःखार्जितं

कुछ मुसकराकर बोली ॥ ३० ॥ हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारी सन्ध्याका कितना प्रमाण है, अभी वह बीती या नहीं, मेरे ऊपर कृपा करके तुम बीते हुए समयका विचार करो ॥ ३१ ॥ उसके ऐसे वचनोंको सुनकर आश्चर्यसे युक्त और खिले हुए नेत्रवाले मुनिने हृदयमे ध्यान करके समयका प्रमाण किया ॥ ३२ ॥ तो मालूम हुआ कि अप्सराके साथ सत्तावन वर्ष बीत गये, तत्पश्चात्

वह मुनि नेत्रोंसे चिनगारी निकालता हुआ अति क्रोधसे ॥ ३३ ॥ उस अप्सराको काल रूप तथा तपको नष्ट करनेवाली समझ कहने लगा कि तुमने कठिनतासे पैदा किया हुआ मेरे तपको नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥ काँप रहे हैं ओष्ठ जिसके तथा व्याकुल इन्द्रिय वाले मुनिने अप्सराको शाप दिया कि तू पिशाचनी हो जा ॥३५॥ हे पापिनी ! हे बुरे आचरण करने वाली ! हे कुलटा !

मम तपो नीतं तदनया क्षयम् ॥ ३४ ॥ सकंपोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः । स तां शशाप मेधावी त्वं पिशाची भवेति च ॥ ३५ ॥ धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये । तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनता स्थिता ॥ ३६ ॥ उवाच वचनं सुभ्रूः प्रसादं वांछती मुनिम् । प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र ! शापस्यानुग्रहं कुरु । सतां संगो हि फलति वचोभिः सप्तमे पदे ॥ ३७ ॥ त्वया सह मम ब्रह्मन् ! गताः सुबहवः समाः । एतस्मात् कारणात्स्वामिन्प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ ३८ ॥ मुनिरुवा

तथा हे पापोंको करनेवाली! तुझको धिक्कार है, यह सुनकर वह मुनिके शापसे व्याकुल होती हुई विनयसे नतमस्तक हो गई॥३६॥ और मुनिसे प्रसाद चाहती हुई वह सुन्दर भौंह वाली बोली—हे विप्रेन्द्र ! प्रसन्न होकर शापको दूरकरो क्योकि सज्जनों की संगति बचनोंके द्वारा सातवें पदमे फलको देती है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे साथ मेरे बहुतसे वर्ष बीत गये हैं इसलिए हे स्वामी ! मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ३८ ॥ मुनि बोले—हे भद्रे ! मैं क्याकरूँ तेरे साथ मेरा बहुत बड़ा तप नष्ट होगया,

अतः हे पापिनी ! शापको दूर करनेवाले मेरे वचनोंको सुनो ॥ ३९ ॥ चैत्रके कृष्ण पक्षमे जो शुभ एकादशी होती है उसका
पापमोचनी नाम है क्योकि वह पापोको नष्ट करनेवाली है ॥ ४ ॥ हे सुन्दर भौंहवाली ! उसका व्रत करनेसे तेरी पिशाचयोनि
दूर होजायगी, उससे ऐसा कहकर वह मेधावी पिताके आश्रमको चला गया ॥ ४१ ॥ उसको आता हुआ देखकर च्यवन ऋषि

च । शृणु मद्वचनं भद्रे ! शापानुग्रहकारणम् । किं करोमि त्वया पापे ! क्षयं नीतं महत्तपः ॥ ३९ ॥
चैत्रस्य कृष्णपक्षे या भवत्येकादशी शुभा । पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयंकरी ॥ ४० ॥ तस्या व्रते
कृते सुभ्रु ! पिशाचत्वं प्रयास्यति । इत्युक्त्वा तां स मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ॥ ४१ ॥ तमागतं
समालोक्य च्यवनः प्रत्युवाच ह । किमेतद्विहितं पुत्र ! त्वया पुण्यक्षयः कृतः ॥ ४२ ॥ मेधाव्युवाच ।
पापं कृतं महत्तात ! रमिता चाप्सरा मया । प्रायश्चित्तं ब्रूहि तात ! येन पापक्षयो भवेत् ॥ ४३ ॥
च्यवन उवाच । चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी । यस्या व्रते कृते पुत्र पापराशिः

बोले—हे पुत्र ! तुमने यह क्या किया जो अपना पुण्य भी नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥ मेधावी बोला—हे पिता ! अप्सराके
साथ रमण करके मैंने बड़ा पाप किया है, अतः हे तात ! उसका प्रायश्चित्त बतलाओं जिससे पाप नष्ट हो जाय ॥ ४३ ॥
च्यवनऋषि बोले—चैत्रके कृष्ण पक्षमें पापमोचनी नाम की एकादशी होती है, हे पुत्र ! उसका व्रत करनेसे पापोंका समूह

नष्ट हो जायगा ॥ ४४ ॥ ऐसे पिताके वचनको सुनकर मेधावीने सब व्रतोंमे उत्तम इस व्रतको किया जिससे उसके पाप नष्ट हो गये तथा वह पुण्य युक्त हो गया ॥ ४५ ॥ और वह मञ्जुघोषा भी इस व्रतको किया और इसके प्रभावसे पिशाचयोनिसे छूट गई ॥ ४६ ॥ और दिव्यरूपको धारण कर वह स्वर्ग लोकको चली गई। लोमशऋषि कहने लगे कि

क्षयं व्रजेत् ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम्। गतं पापं क्षयं तस्य पुण्ययुक्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥ साऽप्येवं मंजुघोषा च कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम्। पिशाचत्वविनिर्मुक्ता पापमोचनिकाव्रतात् ॥ ४६ ॥ दिव्यरूपधरा साऽपि गता नाकं वराऽप्सराः। लोमश उवाच। इत्थंभूतप्रभावं हि पापमोचनिकाव्रतात् ॥ ४७ ॥ पापमोचनिकां राजन् ये कुर्वंति च मानवाः। तेषां पापं च यत्किंचित्तत्सर्वं क्षयमाव्रजेत् ॥ ४८ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलप्रदा। ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापो गुरुत-

पापमोचनी एकादशीका ऐसा ही प्रभाव होता है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इस पापमोचनी एकादशीका व्रत करते हैं उनके जो भी कुछ पाप हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ इसके माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है, और ब्रह्महत्या करनेवाला, गर्भगिरानेवाला, मदिरा पान करनेवाला तथा गुरुकी पत्नीमे गमन करनेवाला भी मनुष्य,

॥ ४९ ॥ इस व्रतको करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है, इस कारण यह उत्तम व्रत बहुतसे पुण्योंको देनेवाला है ॥ ५० ॥

त्पगः ॥ ४९ ॥ व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवंति ते । बहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम् ॥ ५० ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे चैत्रकृष्णे पापमोचनिकानामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अथ चैत्रशुक्लैकादशीमाहात्म्यम् ।

सूत उवाच । देवकीनन्दनं कृष्णं वसुदेवात्मजं हरिम् । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिराय कृष्णेन कथितानि महात्मना । एकादशीमहात्म्यानि नानापापहराणि च ॥ २ ॥ अष्टादश पुराणेभ्यो विविच्य सुमहात्मना । चतुर्विंशतिसंख्यानि नानाख्यानैर्युतानि च ॥ ३ ॥ तानि वक्ष्यामि भो विप्राः शृणुध्वं सुसमाहिताः । युधिष्ठिर उवाच । वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममा-

सूतजी बोले—देवकीनन्दन कृष्ण, वसुदेवके पुत्र भगवान् हरिको नमस्कार करके बड़े-बड़े पातकों को नष्ट करनेवाले व्रतको कहता हूँ ॥ १ ॥ महात्मा कृष्णने युधिष्ठिरके प्रति अनेक पापोंको दूर करनेवाले माहात्म्य कहे हैं ॥ २ ॥ भगवान्ने अठारह पुराणों से विचार कर अनेक कथाओंसे युक्त चौवीस माहात्म्य कहे हैं ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैं उन चौवीसोंको कहता

हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो। युधिष्ठिर बोले—हे वासुदेव ! तुमको नमस्कार है मेरे सामने सब कहिये ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! चैत्रके शुक्ल पक्षमे किस नामकी एकादशी होती है। श्रीकृष्णजी बोले—हे राजन् ! इस पुरानी कथाको एकाग्रचित्त करके सुनो ॥ ५ ॥ जिसको राजा दिलीपके पूछने पर वसिष्ठजीने कही है। दिलीप बोले—हे भगवन् ! मैं सुनना चाहता हूँ आप कृपा

ग्रतः ॥ ४ ॥ चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्। श्रीकृष्ण उवाच। शृणुष्वैकमना राजन् कथामेतां पुरातनीम् ॥ ५ ॥ वसिष्ठो यामकथयत्प्राग् दिलीपाय पृच्छते। दिलीप उवाच। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ॥ ६ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्। वसिष्ठ उवाच। साधु पृष्ठं नृपश्रेष्ठ कथयामि तवाग्रतः ॥ ७ ॥ एकादशी पुण्यतमा पापेन्धनदवानलः। शृणु राजन् कथामेतां पापघ्नीं पुत्रदायिनीम् ॥ ८ ॥ पुरा रत्नपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषिते। पुण्डरीकप्रमुखा नागा निवसंति मदोत्कटाः ॥ ९ ॥ तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं करोति च। गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव

करके कहिये ॥ ६ ॥ कि चैत्रके शुक्ल पक्षमे किस नामकी एकादशी होती है। वसिष्ठजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है अतः मै तुमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ यह एकादशी बडी पुण्यावली और पापरूपी ईंधनके लिए अग्निके समान है, हे राजन् ! पापोंको नष्ट करनेवाली तथा पुत्रको देनेवाली इस कथाको सुनिये ॥ ८ ॥ पहले स्वर्ण और रत्नोसे शोभित रत्नपुर

ह्यप्सरोभिः सुसेव्यते ॥ १० ॥ वराऽप्सरा तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा । उभौ रागेण संयुक्तौ
दम्पती कामपीडितौ ॥ ११ ॥ रमेते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते सदा । ललितायास्तु हृदये पतिर्वसति
सर्वदा ॥ १२ ॥ हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी । एकदा पुण्डरीकाद्याः क्रीडंति सदसि
स्थिताः ॥ १३ ॥ गीतगानं प्रकुरुते ललितो दयितां विना । पदबंधे स्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन्
॥ १४ ॥ मनोभावं विदीत्वाऽस्य कर्कोटो नागसत्तमः । पदवन्धच्युतिं तस्य पुण्डरोके न्यवेदयत्

नामके सुन्दर नगरमे मदोन्मत्त पुण्डरीकको प्रधान मानकर नागा लोग रहते थे ॥ ९ ॥ गन्धर्व, किन्नर (देवता विशेष) तथा अप्सराओंसे युक्त उस नगरमें पुण्डरीक नामका राजा राज्य करता था ॥ १० ॥ वहाँ ललिता नामकी श्रेष्ठ अप्सरा और ललित नामका गन्धर्व दोनों स्त्री-पुरुष अनुरागके कारण कामसे पीडित होकर ॥ ११ ॥ सदा धन धान्यसे युक्त होकर अपने सुन्दर घरमे रमण करते थे। ललिताके हृदयमें सर्वदा पतिका वास रहता था ॥ १२ ॥ और ललितके हृदयमे भी सदा ललिता वसी हुई रहती थी। एक समय पुण्डरीक आदि गन्धर्व सभामे स्थित होकर क्रीडा कर रहे थे ॥ १३ ॥ और ललित गीत गान कर रहा था इसी समय ललिताका स्मरण हो आनेसे ललितके गानका छन्दभंग हो गया ॥ १४ ॥ नागोमे श्रेष्ठ कर्कोटक नामके नागने इसके मनोभावको जानकर इसकी छन्दभंगकी बातको पुण्डरीकसे कह दिया ॥ १५ ॥ तब पुण्डरोकने

हे दुर्बुद्धे ! तू कच्चे मांस और पुरुषोंको खानेवाला राक्षस होजा ॥ १६ ॥
कामसे व्याकुल चित्त वाले ललितको शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे ! तू कच्चे मांस और पुरुषोंको खानेवाला राक्षस हो गया
क्योंकि तू मेरे सामने गाता हुआ स्त्री के वशमे हो गया है। हे राजेन्द्र ! पुण्डरीकके वचनसे वह उसी समय राक्षसरूप हो गया
॥ १७ ॥ भयंकर तथा एक योजन लम्बी उसकी बाँह और मुख गुफाके समान हो गया ॥१८॥ सूर्य और चन्द्रमाके समान उसके
॥ १५ ॥ शशाप ललितं तत्र मदनातुरचेतसम्। राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ॥ १६ ॥
यतः पत्नीवशो जातो गायमानो ममाग्रतः। वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपो बभूव ह ॥ १७ ॥ रौद्रा-
ननो विरूपाक्षो दृष्टमात्रो भयंकरः। बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखं कन्दरसन्निभम् ॥ १८ ॥ चन्द्रसूर्य-
निभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा। नासारन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनार्धकौ ॥ १९ ॥ शरीरं तस्य
राजेन्द्र उच्छ्रितं योजनाष्टकम्। ईदृशा राक्षसः सोऽभूद्भुंजानः कर्मणः फलम् ॥ २० ॥ ललिता तम-
थालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम्। चिन्तयामास मनसा दुःखेन महताऽर्दिता ॥ २१ ॥ किं करोमि क्व
नेत्र, पर्वतके समान ग्रीवा और नासिका के छिद्र बिलके समान तथा ओष्ठ दो कोसतक लम्बे हो गये ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र !
उसका शरीर आठ योजन ऊँचा हो गया, अपने कर्मके फलको इस प्रकार भोगता हुआ वह राक्षस हो गया ॥ २० ॥ इसके
बाद ललिताने विकृतरूपवाले अपने पतिको देखकर दुःखसे पीड़ित होकर मनमे चिन्ता करने लगी ॥ २१ ॥ मेरा पति पापसे

पीडित है अतः क्याकरूँ और कहाँ जाऊँ, ऐसा मनमे विचार कर ॥ २२ ॥ वह सुखभ्रष्ट ललिता पतिके साथ घने वनमे
विचरने लगी और वह कामरूप राक्षस इस प्रकार घने वनमे घूमने लगा ॥ २३ ॥ दयाहीन, पापकर्म करनेवाला, कुरूप, तथा
पुरुषों को खानेवाला और पापसे पीडित वह राक्षस रात्रि तथा दिनमे सुखको प्राप्त न हुआ ॥ २४ ॥ इस प्रकार पतिको

गच्छामि पतिः पापेन पीडितः। इति संस्मृत्य मनसा न शर्म लभते तु सा ॥ २२ ॥ चचार पतिना
सार्द्धं ललिता गहने वने। बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपः स राक्षसः ॥ २३ ॥ निर्घृणः पापनिरतो
विरूपः पुरुषादकः। न सुखं लभते रात्रौ न दिवा पापपीडितः ॥ २४ ॥ ललिता दुःखिताऽतीव
पतिं दृष्ट्वा तथा विधम्। भ्रमन्ती तेन सार्धं सा रुदती गहने वने ॥ २५ ॥ कदाचिदगमद्विन्ध्यशिखरे
बहुकौतुके। ऋष्यशृङ्गमुनेस्तत्र दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं शुभम् ॥ २६ ॥ शीघ्रं जगाम ललिता विनयावनता
स्थिता। प्रत्युवाच मुनिर्दृष्ट्वा का त्वं कस्य सुता शुभे ॥ २७ ॥ किमर्थं हि समायाता सत्यं वद ममा-

देखकर दुःखित वह ललिता पतिके साथ रोती हुई घने वनमें घूमने लगी ॥ २५ ॥ एकदा वह बहुतसे कौतुकों से युक्त
विंध्याचल पर्वतके शिखर पर गई और वहाँ ऋष्यशृङ्ग मुनिका शुभ आश्रम देखकर ॥ २६ ॥ वहाँ शीघ्रता से चली गई और
विनयसे नम्र होकर स्थित होई, उसको देखकर मुनि बोले—हे शुभे! तू कौन है, किसकी पुत्री है ॥ २७ ॥ और किस

लिए यहाँ आई है सत्य सत्य कह। ललिता बोली—वीरधन्वा नामक महात्मा गन्धर्वकी मैं पुत्री हूँ ॥ २८ ॥ हे महामुने ! तुम मेरा नाम ललिता जानो, मैं पतिके लिए आई हूँ क्योंकि मेरा पति शापके दोषसे राक्षस हो गया है ॥ २९ ॥ भयंकर रूपवाले तथा दुराचारी पतिको देखकर मुझे कुछ भी सुख नहीं है (अर्थात् मैं दुःखी हूँ) हे ब्रह्मन् ! इस समय आप

व्रतः। ललितोवाच। वीरधन्वेति गन्धर्वः सुता तस्य महात्मनः ॥ २८ ॥ ललितां नाम मां विद्धि पत्यर्थमिह चागताम्। भर्त्ता मे शापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने ॥ २९ ॥ रौद्ररूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम्। सांप्रतं शाधि मां ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं वद प्रभो ॥ ३० ॥ येन पुण्येन विप्रेन्द्र राक्षसत्वाद्विमुच्यते। ऋषिरुवाच। चैत्रमासस्य रंभोरु शुक्लपक्षस्य सांप्रतम् ॥ ३१ ॥ कामदैकादशी नाम्नी या कृता कामदा नृणाम्। कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् ॥ ३२ ॥ तस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम्। दत्ते पुण्यं क्षणात्तस्य शापदोषः प्रशाम्यति ॥ ३३ ॥ इति श्रुत्वा मुने-

हे प्रभो ! मुझे उपदेश दीजिए और क्या करूँ उपाय बतलाइए ॥३०॥ हे विप्रेन्द्र ! ऐसा उपाय कहिए जिससे उनकी राक्षसयोनि नष्ट हो जाय। ऐसा सुनकर ऋषि बोले—हे केलाके स्थम्भके समान जंघावाली ! इस समय चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी एकादशी है ॥३१॥ यह कामदा नामकी एकादशी है इसका व्रत करनेसे मनुष्योंकी कामना पूर्ण हो जाती है, और हे भद्रे ! मेरे बतलाये हुए व्रतको

विधिपूर्वक करो ॥ ३२ ॥ और उस व्रतके पुण्यको अपने पतिके लिए दो, पुण्यके देने पर शीघ्र ही उसके शापका दोष दूर हो जायगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार मुनिके वचनों को सुनकर ललिता बड़ी प्रसन्न हुई। हे राजन्! एकादशीका व्रत करके फिर द्वादशीके दिन ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणके समीपमें वासुदेवके आगे स्थित ललितः पतिके उद्धारके लिए वचन बोली ॥ ३५ ॥ कि मैंने

वाक्यं ललिता हर्षिताऽभवत्। उपोष्यैकादशीं राजन् द्वादशीदिवसे तदा ॥ ३४ ॥ विप्रस्यैव समीपे तु वासुदेवाग्रतः स्थिता। वाक्यमूचे तु ललिता स्वपत्युरतारणाय वै ॥ ३५ ॥ मया तु यद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम्। तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता ॥ ३६ ॥ ललितावचनादेव वर्तमानोऽपि तत्क्षणे। गतपापः स ललितो दिव्यदेहो बभूव ह ॥ ३७ ॥ राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्तो गन्धर्वतः पुनः। हेमरत्नसमाकीर्णो रेमे ललितया सह ॥ ३८ ॥ तौ विमानसमारूढौ पूर्वरूपाधिकावुभौ। दम्पती चापि शोभेतां कामदायाः प्रभावतः ॥ ३९ ॥ इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः। लोकानां

जो कामदा एकादशीका व्रत किया है उसके पुण्यके प्रभावसे पतिको पिशाचयोनि दूर हो जावे ॥ ३६ ॥ ललिताके ऐसा कहने पर राक्षस ललित पापरहित होकर दिव्य शरीर वाला हो गया ॥ ३७ ॥ उसकी राक्षसयोनि दूर हो गई और फिर वह गन्धर्व हो गया, तथा सुवर्ण और रत्नों के आभूषणोंको धारण करनेवाली ललिताके साथ उसने विहार किया ॥ ३८ ॥ विमानमें बैठे

हुए ॥ ३६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इस
हुए वे दोनों स्त्री पुरुष कामदेवके प्रभावसे पहलेसे भी अधिक रूपवाले होकर शोभाको ग्रास हुए ॥ ३६ ॥ यह कथा ब्रह्महत्या
प्रकार जानकर इस व्रतको प्रयत्नसे करे, संसारके कल्याणके लिए यह कथा मैंने तुमसे कही है ॥ ४० ॥ इससे अधिक श्रेष्ठ कोई कथा
आदि पापोंको नाश करनेवाली तथा पिशाचयोनिको दूर करनेवाली है। इस चराचर त्रिलोकमें
नहीं है, इसके पढ़ने और सुननेसे वाजपेययज्ञका फल मिलता है ॥ ४१ ॥

च हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ॥ ४० ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी । नातः परतरा
काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे । पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाराहपुराणे चैत्रशुक्लकामदानामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १० ॥

अथ वैशाखकृष्णैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच । वैशाखस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् । महिमानं कथय मे वासुदेव
नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । सौभाग्यदायिनी राजन्निहलोके परत्र च । वैशाखकृष्णपक्षे तु

युधिष्ठिरजी बोले—कि वैशाखके कृष्ण पक्षमें किस नामकी एकादशी होती है, हे कृष्ण ! आपको नमस्कार है, आप
उसकी महिमा मुझसे कहिये ॥ १ ॥ कृष्णजी बोले—हे राजन् ! वैशाख कृष्ण प त में वरूथिनी नामकी एकादशी होती है

जो इहलोक और परलोकमे सौभाग्यको देनेवाली है ॥ २ ॥ वरूथिनी एकादशीके व्रतसे मनुष्य सदा सुखको प्राप्त करता है,
तथा पापकी हानि और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ दुर्भगा स्त्री भी इस व्रतके करनेसे सौभाग्यको प्राप्त करती है, यह सब
लोकों मे भोग्य और मुक्तिको देनेवाली है ॥ ४ ॥ यह मनुष्योंके सब पापोंको हरनेवाली तथा गर्भवासको दूर करनेवाली है,

नाम्ना चैव वरूथिनी ॥ २ ॥ वरूथिन्या व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा । पापहानिश्च भवति सौभाग्य-
प्राप्तिरेव च ॥ ३ ॥ दुर्भगाऽपि करोत्येनां स्त्री सौभाग्यमवाप्नुयात् । लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्ति-
प्रदायिनी ॥ ४ ॥ सर्वपापहरा नृणां गर्भवासनिकृन्तनी । वरूथिन्या व्रते नैव मांधाता स्वर्गतिं गतः
॥ ५ ॥ धुंधुमारादयश्चान्ये राजानो वहवस्तथा । ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो वभूव भगवान् भवः ॥ ६ ॥
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः । तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतादपि ॥ ७ ॥ श्रद्धावा-
न्यस्तु कुरुते वरूथिन्या व्रतं नरः । वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च ॥ ८ ॥ पवित्रा पावनी

वरूथिनीके व्रतसे ही राजा मांधाता स्वर्गलोकको गये ॥ ५ ॥ तथा धुंधुमार आदि और भी वहुतसे राजा और भगवान् शिव भी
ब्रह्मकपालसे मुक्त हो गये ॥ ६ ॥ जो दश हजार वर्ष तप करता है उसके फलके समान ही वरूथिनीके व्रतका फल मिलता है
॥ ७ ॥ जो श्रद्धावान् मनुष्य वरूथिनी एकादशीका व्रत करता है वह इस लोकमें और परलोकमें मनोवांछित फलको प्राप्त करता

है ॥८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! यह पवित्र और दूसरोंको भी पवित्र करनेवाली तथा महापातकों को नष्ट करनेवाली है तथा व्रत करनेवालेको मुक्ति और भुक्ति देनेवाली है ॥ ९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! घोड़ेके दानसे हाथीका दान श्रेष्ठ है, हाथीके दानसे भूमिका दान और भूमिदानसे तिलदान अधिक श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ तिलसे सुवर्णका दान अधिक है और सुवर्णसे अन्नदान अधिक है, अन्न से अधिक

ह्येषा महापातकनाशिनी । भुक्तिमुक्तिप्रदा ह्येषा कर्तॄणां नृपसत्तम ॥ ९ ॥ अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते । गजदानाद्भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम् ॥ १० ॥ ततः सुवर्णदानं तु ह्यन्नदानं ततोऽधिकम् । अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ११ ॥ पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते । तत्समं कविभिः प्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम ॥ १२ ॥ धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान्स्वयम् । प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् । कन्या वित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥ १४ ॥ ते नरा नरके यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ।

दान न हुआ है और न होवेगा ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पितर, देवता और मनुष्योंकी तृप्ति अन्नसे ही होती है अतः कवियोंने कन्यादानको अन्नदानके समान ही कहा है ॥ १२ ॥ भगवान्‌ने भी स्वयं कहा है कि गौदान अन्नदानके समान है तथा विद्याका दान सब दानोंसे अधिक है ॥ १३ ॥ वरूथिनीका व्रत करनेवाला मनुष्य भी उसी फल को प्राप्त होता है। जो

मनुष्य पापसे मोहित होकर कन्याके धनसे जीते हैं ॥ १४ ॥ वे मनुष्य प्रलयकाल तक नरकमे वास करते है, इसलिए कन्या का धन किसी भी प्रकार से नहीं लेना चाहिए ॥ १५ ॥ जो मनुष्य लोभसे कन्याको वेचकर धन लेता है, हे राजेन्द्र ! वह दूसरे जन्ममें निश्चय ही बिलाव होता है ॥ १६ ॥ जो यथाशक्ति धनसे युक्त कन्याको अलंकृत करके दान करता है उसके पुण्य की

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥ १५ ॥ यश्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम् । सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ओतुर्भवति निश्चितम् ॥ १६ ॥ कन्यां वित्तेन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलंकृताम् । तत्पुण्यसंख्यां कर्त्तुं हि चित्रगुप्तो भवत्यलम् ॥ १७ ॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरुथिनीम् । कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥ १८ ॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने । वैष्णवो व्रतकर्त्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥ १९ ॥ द्यूतं क्रीडां च निद्रां च तांबूलं दन्तधावनम् । परापवादं पैशुन्यं पतितैः सह भाषणम् ॥ २० ॥ क्रोधं चैवानृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ।

संख्याको चित्रगुप्त भी नहीं गिन सकता है ॥ १७ ॥ वरूथिनी एकादशी का व्रत करनेवाला मनुष्य कन्यादान आदि फलों को प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला काँसेके पात्रमे न खाय, तथा मांस, मसूर की दाल, चना, कोदो ॥ १८ ॥ और शाक, शहद, दूसरेका अन्न, दुबारा भोजन, स्त्रीप्रसंग, इत्यादि दश वस्तुओंका दशमीके दिन त्याग करे ॥ १९ ॥ जूआ खेलना,

निद्रा, पान, दाँतून, दूसरे की निन्दा, चुगली, पतितोंके साथ बोलना ॥ २० ॥ क्रोध, और झूठ बोलना, ये नौ बातें एकादशीके दिन छोड़ दे, तथा द्वादशीके दिन काँसेके पात्रमे भोजन, मांस, मसूर, शहद, मिथ्याभाषण ॥ २१ ॥ व्यायाम, परिश्रम, दुबारा भोजन, मैथुन, नमक, तेल, दूसरे का अन्न, इत्यादि १२ वस्तुओंका त्याग करे ॥ २२ ॥ हे राजन्! इस विधिसे जो बरूथिनी

कांस्यं मांसं मसूरांश्च क्षौद्रं वितथभाषणम् ॥ २१ ॥ व्यायामं च प्रयासं च पुनर्भोजनमैथुने । क्षारं तैलं परान्नं च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥ अनेन विधिना राजन्विहिता यैर्वरूथिनी । सर्वपापक्षयं कृत्वा दद्याच्चान्तेऽक्षयां गतिम् ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः । क्षपारितनयाद्भीतैर्नरदेव वरूथिनी ॥ २४ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ २५ ॥

एकादशी का व्रत करते हैं उनके पापोको नष्ट करके बरूथिनी अक्षय गतिको देती है ॥ २३ ॥ हे राजन्! अतः पापसे डरनेवाले तथा यमराजसे डरे हुए मनुष्योंको बरूथिनी का व्रत सब प्रकारसे यत्नपूर्वक करना चाहिए ॥ २४ ॥ हे राजन्! इसके माहात्म्यको पढ़ने तथा सुननेसे हजार गोदान का फल मिलता है, और सब पापोंसे छूटकर मनुष्य विष्णुलोकमे वास करता है ॥

इति श्रीभविष्यपुराणे वैशाखकृष्णवरूथिन्येकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अथ वैशाखशुक्लैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच । वैशाखशुक्लपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् । किं फलं को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । कथयामि कथामेतां शृणु त्वं धर्मनन्दन । वशिष्ठो यामकथयत्पुरा रामाय पृच्छते ॥ २ ॥ राम उवाच । भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ॥ ३ ॥ मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि वै । ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच । साधु पृष्ठं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकी मतिः । त्वन्नाम-

युधिष्ठिरजी बोले—कि वैशाख शुक्ल पक्षमे किस नामकी एकादशी होती है, और हे जनार्दन ! उसका क्या फल और कैसी विधि है वह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! तुम सुनो, मैं उस कथा को कहता हूँ, जिसको पहले वसिष्ठजीने रामके पूछने पर कहा था ॥ २ ॥ राम बोले—हे भगवन् ! मैं सब पापोंको नष्ट करनेवाले, तथा सब दुःखोंको दूर करनेवाले, व्रतोंमें उत्तम व्रतको सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ हे महामुने ! मैंने निश्चय ही सीताके विरहसे उत्पन्न हुए दुःख भोगे हैं अतः भयभीत होकर मैं आपसे पूछता हूँ ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी बोले—कि हे राम ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है और तुम्हारी यह मति निष्ठायुक्त है, तुम्हारे नाम लेनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥ ५ ॥ तो भी संसारके हितके लिए

पवित्र करनेवाले उत्तम व्रतको अवश्य कहूँगा ॥ ६ ॥ हे राम ! वैशाखके शुक्ल पक्षमे जो एकादशी हाती है उसका नाम मोहिनी है और वह संपूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली है ॥ ७ ॥ मैं सत्य कहता हूँ कि इसके व्रतके प्रभावसे मनुष्य मोहजाल तथा पातकोंके समूहसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ हे राम ! इस कारणसे इसका व्रत तुम जैसोंको अवश्य करना चाहिए, यह एकादशी पापोंको नष्ट

ग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ॥ ५ ॥ तथापि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया । पवित्रं पावनानां च व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ६ ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे द्वादशी राम या भवेत् । मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा ॥ ७ ॥ मोहजालात्प्रमुच्येत पातकानां समूहतः । अस्या व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥८॥ अतस्तु कारणाद्राम कर्त्तव्यैषा भवादृशैः । पातकानां क्षयकरी महादुःखविनाशिनी ॥९॥ शृणुष्वैकमना राम कथां पुण्यप्रदां शुभाम् । अस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ १० ॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा । द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ॥ ११ ॥ सोमवंशोद्भवो

करनेवाली तथा महादुःखको दूर करनेवाली है ॥ ९ ॥ हे राम ! पुण्यको देनेवाली इस शुभ कथाको एकाग्रमन होकर सुनो, इसके श्रवणमात्रसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर एक शुभ भद्रावती नामकी नगरी थी, उसमे द्युतिमान् नामका राजा राज्य करता था ॥ ११ ॥ हे राम ! चन्द्रवंशमे उत्पन्न हुआ वह राजा धैर्यवान् और सत्यप्रतिज्ञावाला था,

उसी नगरीमें धनधान्यसे युक्त एक वैश्य भी रहता था ॥ १२ ॥ धनपाल नामसे प्रसिद्ध वह वैश्य पुण्यकर्ममें प्रवृत्ति रखनेवाला तथा प्याऊ, यज्ञशाला, तालाब और बगीचा आदि बनवानेवाला था ॥ १३ ॥ विष्णुभक्तिमें तत्पर तथा शान्त स्वभाववाले उसके पाँच पुत्र थे जिनके नाम ये हैं—सुमना, द्युति, मेधावी, सुकृती ॥ १४ ॥ और धृष्टबुद्धि। पाँचवाँ पुत्र सदा पापमें रत,

राम धृतिमान्सत्यसंगरः। तत्र वैश्यो निवसति धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ १२ ॥ धनपाल इति ख्यातः पुण्यकर्मप्रवर्त्तकः। प्रपासत्राद्यायतनतडागारामकारकः ॥ १३ ॥ विष्णुभक्तिपरः शांतिस्तस्यासन्पञ्च पुत्रकाः। सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृती तथा ॥ १४ ॥ पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा। वारस्त्रीसंगनिरतो विटगोष्ठीविशारदः ॥ १५ ॥ द्यूतादिव्यसनासक्तः परस्त्रीरतिलालसः। न देवान्नातिथी-न्वृद्धान् पितॄंश्चैव द्विजानपि ॥ १६ ॥ अन्यायकर्त्ता दुष्टात्मा पितुर्द्रव्यक्षयंकरः। अभक्ष्यभक्षकः पापः सुरापानरतः सदा ॥ १७ ॥ वेश्याकण्ठक्षिप्तबाहुर्भ्रमन् भ्रष्टश्चतुष्पथे। पित्रा निष्कासितो गेहात्परित्यक्तश्च

वेश्याप्रसंगमें प्रीति रखनेवाला और धूर्तोंकी गोष्ठीमे चतुर था॥१५॥वह जूआ आदि व्यसनमे आसक्त रहता तथा दूसरोंको स्त्रियोंमें सदा संभोगकी इच्छा रखता, और देवता, अतिथि, वृद्ध, पितर, और ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करता था ॥ १६ ॥ अन्याय करनेवाला, दुष्टात्मा, पिताके धनका नाश करनेवाला, न खानेवाली वस्तुको खानेवाला, पापी और सदा मदिरा पीनेवाला

था ॥ १७ ॥ उसे वेश्याके गलेमे बाहु डालकर चौराहेपर घूमते देखकर पिताने उसे घरसे निकाल दिया और बान्धवोंने भी उसे त्याग दिया ॥ १८ ॥ उसने अपने शरीरके गहने भी खर्च कर दिये, तब धनके नष्ट होनेसे और निन्दाके कारण उसको वेश्याओंने भी छोड़ दिया ॥१९॥ इसके बाद वस्त्रसे रहित और भूखसे पीड़ित होकर उसने विचार किया कि मैं क्या करूँ और कहाँ

बान्धवैः ॥ १८ ॥ स्वदेहभूषणान्येव क्षयं नीतानि तेन वै । गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दितश्च धनक्षयात् ॥ १९ ॥ ततश्चिंतापरो जातो वस्त्रहीनः क्षुधार्दितः । किं करोमि क्व गच्छामि केनोपायेन जीव्यते ॥२०॥ तस्करत्वं समारब्धं तत्रैव नगरे पुनः । गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥२१॥ पुनर्बद्धः पुनर्मुक्तः पुनर्मुक्तः ससंभ्रमैः । धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबद्धो निगडैर्दृढैः ॥२२॥ कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः । न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वा ततो राज्ञा-

जाऊँ, तथा किस उपायसे जीवन व्यतीत करूँ ॥ २० ॥ फिर वह उसी नगरमे चोरी करने लगा, तब राजाके सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया किंतु पिताके गौरवसे छोड़ दिया ॥ २१ ॥ फिर उसको बाँध लिया और संभ्रमके कारण छोड़ दिया, तब राजाने दुराचारी धृष्टबुद्धिको मजबूत हथकड़ी और बेड़ियों से बाँध दिया ॥ २२ ॥ तथा कोड़ोंसे मारकर उसे बार-बार पीड़ित किया, और कहा कि हे दुष्ट ! तू हमारे देशमे न रह, कहीं बाहर चला जा ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर राजाने उसे दृढ़ बन्धन से छोड़ दिया और

और ऋषिके कहनेसे उसने विधिके साथ व्रत किया, हे राजन् ! व्रत करनेपर वह पापरहित हो गया ॥ ३६ ॥ इसके बाद दिव्य शरीरवाला होकर गरुडपर चढ़कर सब उपद्रवोंसे रहित विष्णुके लोकको गया ॥ ३७ ॥ हे रामचन्द्र ! अन्धकार और मोह को दूर करनेवाला यह ऐसा व्रत है कि इससे अधिक कोई चराचर तीनों लोकोमे नहीं है ॥ ३८ ॥ यज्ञादिक तीर्थ और दान इसके सोलहवें भागके समान भी नहीं हैं, हे राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से हजार गोदानका फल मिलता है ॥ ३९ ॥

बभूव सः ॥३६॥ दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः । जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥३७॥ इतीदृशं रामचन्द्र तमोमोहनिकृन्तनम् । नातः परतरं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३८ ॥ यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे वैशाखशुक्लमोहिन्येकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अथ ज्येष्ठकृष्णैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच । ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं तद्वदस्व

युधिष्ठिर बोले—हे जनार्दन ! ज्येष्ठके कृष्ण पक्षमें किस नामकी एकादशी होती है, मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ

आप कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! तुमने संसारके कल्याणके लिए अच्छा प्रश्न किया, यह एकादशी बहुतसे पुण्योंको देनेवाली और महापातकोंको नष्ट करनेवाली है ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! इसका नाम अपरा है और यह अपार फल को देनेवाली है, जो इसका सेवन करता है वह लोकमें प्रसिद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥ ब्रह्महत्या, गोत्रहत्या, गर्भपात, दूसरोंकी

बहुपुण्यप्रदा ह्येषा जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्णउवाच । साधु पृष्टं त्वया राजन् लोकानां हितकाम्यया । लोके प्रसिद्धतां याति अपरां महापातकनाशिनी ॥ २ ॥ अपरा नाम राजेन्द्र अपारफलदायिनी । यस्तु सेवते ॥३॥ ब्रह्महत्यादिभूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा । परापवादवादो च परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥४॥ अपरासेवनाद्राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम् । कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति यः ॥ ५ ॥ कूटवेदं पठेद्विप्रः कूटशास्त्रं करोति च । ज्योतिषी कूटगणकः कूटायुर्वेदको भिषक् ॥ ६ ॥ कूटसाक्षिसमा ह्येते

निन्दा तथा दूसरोंकी स्त्रियोंसे प्रेम करनेवाला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! ये सब अपराके व्रतसे निश्चय ही पापरहित हो जाते हैं, और जो झूठी गवाही देते हैं, झूठे प्रमाण देते हैं तथा कम तौलते हैं ॥ ५ ॥ और जो ब्राह्मण झूठे वेदका पाठ करता है, झूठे शास्त्र बनाता है, जो ज्योतिषी झूठ बोलते हैं और जो वैद्य झूठी वैद्यक करते हैं ॥ ६ ॥ ये सब झूठी गवाही देनेवालेके

विज्ञेया नारकौकसः। अपरासेवनाद्राजन् पापमुक्ता भवन्ति ते ॥ ७ ॥ क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते। स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ॥ ८ ॥ अपरासेवनाद्राजन् पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत्। विद्यामधीत्य यः शिष्यो गुरुनिन्दां करोति वै ॥ ९ ॥ महापातकयुक्तो हि निरयं याति दारुणम्। अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥ अपरामहिमानं तु शृणु राजन्वदाम्यहम्। पुष्करत्रितये स्नात्वा कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ॥ ११ ॥ गंगायां पिण्डदानेन पितॄणां तृप्तिदो यथा। सिंहस्थिते देवगुरौ गौतमीस्नानतो नरः ॥ १२ ॥ यत्फलं समवाप्नोति कुम्भे केदारदर्शनात्। वदर्याश्रमयात्रायां

समान हैं, इनको नरकगामी जानना चाहिए, हे राजन्! अपराके सेवनसे ये सब पापसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जो क्षत्रिय अपने क्षत्रियधर्मको छोड़कर युद्धसे भागता है वह अपने धर्मसे अलग होकर घोर नरकमे जाता है ॥ ८ ॥ हे राजन्! अपराके सेवनसे पापको छोड़कर वह स्वर्गको जाता है और जो शिष्य विद्या पढ़कर गुरुकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ वह महापातकोंसे युक्त होकर घोर नरकको जाता है किंतु अपराका व्रत करनेसे वह मनुष्य भी सद्गतिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ हे राजन्! मैं अपराकी महिमाको कहता हूँ, तुम सुनो! तीनों पुष्करोंमें कार्त्तिकके महीनेमें स्नानसे जो फल प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ गंगामें पिण्डदान करनेसे, पितरोंको तृप्त करनेसे, सिंहके वृहस्पतिमें गौतमी नदीमे स्नान करनेसे मनुष्य ॥ १२ ॥ जिस

फलको प्राप्त होता है, कुम्भकी संक्रान्तिमे केदारनाथके दर्शनसे जो फल प्राप्त होता है, बदरिकाश्रमकी यात्रामे उस तीर्थके सेवनसे भी ॥ १३ ॥ जो फल मिलता है, सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे तथा हाथी, घोड़ा और सुवर्णके दान और यज्ञमे पूर्ण स्वर्णदानसे जो फल मिलता है ॥ १४ ॥ वही फल मनुष्य अपराके व्रत करनेसे प्राप्त करता है।

तत्तीर्थसेवनादपि ॥ १३ ॥ यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे । गजाश्वहेमदानानि यज्ञे कृत्स्नसुवर्णदः ॥१४॥ तत्फलं समवाप्नोति ह्यपराया व्रतान्नरः । अर्धप्रसूतां गां दत्त्वा सुवर्णं वसुधां तथा ॥१५॥ नरस्तत्फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात् । पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धनदवानलः ॥ १६ ॥ पापान्धकारसूर्योऽयं पापसारङ्गकेसरी । बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ॥ १७ ॥ जायन्ते मरणायैव एकादश्या व्रतं विना । अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥ १८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।

आधी ब्याई हुई गौके दानसे तथा सुवर्ण और पृथिवीके दानसे जो फल प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ अपरा एकादशीके व्रतसे उन सब फलोंको प्राप्त करता है, यह व्रत पापरूपी वृक्षके लिए कुल्हाड़ी है और पापरूपी ईंधनके लिए अग्नि है ॥ १६ ॥ यह पापरूपी अन्धकारके लिए सूर्य है और पापरूपी मृगके लिए सिंह है। वे मनुष्य पानीमे बुलबुलोंके समान तथा जीवोंमें भुनगों के समान ॥१७॥ मरनेके लिए ही पैदा होते हैं जो एकादशीका व्रत नहीं करते। अपराका व्रत करके और त्रिविक्रम भगवान्की पूजा

करके ॥ १८ ॥ मनुष्य सब पापोसे छूटकर विष्णुलोकको जाता है, संसारके कल्याणके लिए मैंने तुमसे यह व्रत कहा है ॥ १९ ॥ हे राजन्! इस माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २० ॥

लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥ १९ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ज्येष्ठकृष्णैकादश्यपरामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १३ ॥

अथ ज्येष्ठशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

भीमसेन उवाच । पितामह महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः । युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनंदिनी ॥ १ ॥ अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रत ॥ २ ॥ ते मां ब्रुवंति वै नित्यं मा त्वं भुंक्ष्व वृकोदर । अहं तानब्रुवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥ ३ ॥ दानं दास्यामि विधिवत्पू-

भीमसेन बोले—हे महाबुद्धिवान् पितामह! मेरा परम वचन सुनिये, युधिष्ठिर, कुन्ती तथा द्रौपदी ॥ १ ॥ और हे सुव्रत! अर्जुन, नकुल, सहदेव, ये एकादशीको कभी भोजन नहीं करते हैं ॥ २ ॥ वे मुझसे सदा कहते हैं कि हे वृकोदर! तू भोजन न कर, तब हे तात! मैं उनसे कहता हूँ कि मेरी भूख दुःसह है अतः मैं व्रत नहीं कर सकता हूँ ॥ ३ ॥ मैं विधिपूर्वक

भगवान्‌की पूजा करूँगा और दान दूँगा, किन्तु व्रतके विना एकादशी व्रतका फल कैसे होवे वह उपाय बतलाइए ॥ ४ ॥ भीमसेनके वचन सुनकर व्यासजी बोले कि यदि तुमको स्वर्ग अच्छा लगता है और नरक बुरा लगता है ॥ ५ ॥ तो दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिए। भीमसेन बोले—हे महाबुद्धि पितामह! मैं आपसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ हे मुने! मैं एक बार

जयिष्यामि केशवम्। विनोपवासं लभ्येत कथमेकादशीव्रतम् ॥ ४ ॥ भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत्। व्यास उवाच। यदि स्वर्गोऽप्यभीष्टस्ते नरको दुष्ट एव च ॥ ५ ॥ एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि। भीमसेन उवाच। पितामह महाबुद्धे कथयामि तवाग्रतः ॥ ६ ॥ एकभुक्ते न शक्तोऽहमुपवासः कथं मुने। वृकनामाऽपि यो वह्निः स सदा जठरे मम ॥ ७ ॥ अतीवान्नं यदाऽश्नामि तदा समुपशाम्यति। एकं शक्तोऽस्म्यहं कर्तुं चोपवासं महामुने ॥ ८ ॥ येनैव प्राप्यते स्वर्गस्तत्करोमि यथातथम्। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ९ ॥ व्यास उवाच। श्रुत्वा मे मानवा धर्मा

भी विना भोजनके नहीं रह सकता हूँ फिर व्रत कैसे हो सकता है, तथा वृक नामकी अग्नि सदा मेरे उदरमें रहती है ॥ ७ ॥ जब मैं अधिक अन्न खाता हूँ तब वह अग्नि शान्त होती है, हे महामुने! मैं एक ऐसा व्रत करनेको समर्थ हूँ ॥ ८ ॥ जिस व्रतसे स्वर्गकी प्राप्ति हो मैं उसे विधिपूर्वक करूँगा, अतः आप निश्चय करके एक व्रत बतलावें जिससे मेरा कल्याण हो ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तुमने मुझसे वेदमे कहे हुए मनुष्योके धर्म सुने हैं परन्तु वे कलियुगमें करने कठिन हैं ॥ १० ॥
अब मैं सब पुराणोंके सारभूत व्रतको कहता हूँ जिसका सहज उपाय है और जिसमें विना क्लेशके थोड़ा धन लगता है तथा जो
महाफलको देनेवाला है ॥ ११ ॥ जो दोनो पक्षोंकी एकादशीके दिन भोजन नहीं करता है वह नरकको नहीं जाता है ॥ १२ ॥

वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया। कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥ १० ॥ सुखोपायं चाल्पधनमल्प-
क्लेशं महाफलम्। पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ॥११॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
एकादश्यां न भुङ्क्ते यो न याति नरकं तु सः ॥ १२ ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्र-
वत्। भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत ॥ १३ ॥ भीमसेन उवाच। पितामह न शक्तोऽह-
मुपवासे करोमि किम्। ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकं मम प्रभो ॥ १४ ॥ व्यास उवाच। वृषस्थे मिथु-
नस्थे वा शुक्ला ह्येकादशी भवेत्। ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥ १५ ॥ स्नाने नाचमने

व्यासजीके वचन सुनकर भीमसेन पीपलके पत्तेके समान काँप गये और भयभीत होकर कहने लगे ॥ १३ ॥ भीमसेन बोले—
हे पितामह! मैं व्रत करनेको समर्थ नहीं हूँ अतः क्या करूँ, हे प्रभो! इसलिए बहुत फल देनेवाले एक व्रतको मुझसे
कहिये ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—कि वृषके अथवा मिथुनके सूर्यमें ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी एकादशी होती है, उसका यत्नपूर्वक

एक माशे सोनेकी मणि डूबनेयोग्य निर्जल व्रत करना चाहिए ॥ १५ ॥ पण्डितजन स्नान और आचमनमें जलका त्याग न करे, अतः गौके कानके समान हाथसे जलका आचमन होता है ॥ १६ ॥ यह आचमन पवित्र और शरीरको शोधनेवाला कहा गया है, और व्रतके दिन एक माशे आचमनके जलको पीवे ॥ १७ ॥ इससे कम या अधिक जल पीनेसे वह मद्यपानके समान होता है,

चैव वर्जयित्वोदकं बुधः । माषमात्रसुवर्णस्य यत्र मज्जति वै मणिः ॥ १६ ॥ एतदाचमनं प्रोक्तं पवित्रं कायशोधनम् । गोकर्णकृतहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ १७ ॥ तन्न्यूनमधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत् । उपभुञ्जीत नैवान्नं व्रतभंगोऽन्यथा भवेत् ॥ १८ ॥ उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा तथोदकम् । अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥ १९ ॥ प्रभाते विमले जाते द्वादश्यां स्नानमाचरेत् । जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥ २० ॥ भुंजीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी । एवं कृते तु यत्पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ॥ २१ ॥ संवत्सरस्य या मध्ये ह्येकादश्यो भवंति वै । तासां फलमवा-

अन्न न खावे नहीं तो व्रत भंग हो जाता है ॥ १८ ॥ एकादशीके सूर्योदयसे द्वादशीके सूर्योदय तक जल न पीवे तो विना प्रयत्नके ही बारहों एकादशीके फलको प्राप्त करता है ॥ १९ ॥ द्वादशीके दिन प्रातःकालमें अन्धकार दूर होने पर स्नान करे, और फिर विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको जल और स्वर्णका दान करे ॥ २० ॥ व० जितेन्द्रिय पुरुष कृतकृत्य होकर ब्राह्मणोंके साथ भोजन करे,

हे भीमसेन ! ऐसा करनेसे जो पुण्य होता है उसे सुनिये ॥ २१ ॥ संवत्सरके अन्दर जो एकादशियाँ होती हैं उन सबका फल इस
एकादशीके व्रतसे मिल जाता है यह बात ठीक ही है ॥ २२ ॥ शंख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले भगवान्‌ने मुझसे यही
कहा है कि सब धर्मोंको छोड़कर केवल मेरी ही शरणमें आ जाओ ॥ २३ ॥ एकादशीके दिन निराहार व्रत करनेसे मनुष्य पापोंसे

प्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥ २२ ॥ इति मां केशवः प्राह शंखचक्रगदाधरः । सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज ॥ २३ ॥ एकादश्यां निराहारान्नरः पापात्प्रमुच्यते । द्रव्यशुद्धिः कलौ नास्ति संस्कारः
स्मार्त एव च ॥ २४ ॥ वैदिकश्च कुतश्चास्ते प्राप्ते दुष्टे कलौ युगे । किन्तु ते बहुनोक्तेन वायुपुत्र पुनः
पुनः ॥ २५ ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठस्योदकवर्जितम्
॥ २६ ॥ उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर । सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ २७ ॥

छूट जाता है, कलियुगमे द्रव्यकी शुद्धि नहीं है और न स्मार्त संस्कार ही होता है ॥ २४ ॥ और दुष्ट कलियुगके आनेपर वेदकी
विधि तो रह ही कहाँ सकती है, हे वायुपुत्र ! तुमसे बार-बार और अधिक कहनेसे क्या लाभ है ॥ २५ ॥ दोनों पक्षोंकी
एकादशियोंमें भोजन न करे, और ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी एकादशीको निर्जलव्रत करे ॥ २६ ॥ हे भीम ! इस व्रतके करनेसे जो
फल मिलता है उसे सुनो, सब तीर्थोंके करनेसे जो पुण्य होता है और सब दानोंके करनेसे जो फल होता है ॥ २७ ॥ हे भीम !

इसका व्रत करके उन सबके फलको प्राप्त होता है। वर्षके अन्दर जितनी कृष्ण और शुक्ल एकादशियाँ होती हैं ॥ २८ ॥ उन सब
एकादशियोंका व्रत किया हुआ समझो, इसमें सन्देह नहीं है। धन, धान्य, बल, आयु, पुत्र, आरोग्य, धन आदि देनेवाली
॥ २९ ॥ उन सब एकादशियोंके व्रतका फल हे नरसिंह! इस एक एकादशीका व्रत करनेसे प्राप्त हो जाता है, यह मैं
तुमसे सत्य कहता हूँ। उसके पास बड़े शरीरवाले, भयंकर, और काले-पीले ॥ ३० ॥ भयानक दण्ड और पाशको धारण

तत् फलं समवाप्नोति इमां कृत्वा वृकोदर। संवत्सरेण याश्च स्युः शुक्लाः कृष्णा वृकोदर ॥ २८ ॥
उपोषितास्ताः सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः। धनधान्यबलायुर्दाः पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥ २९ ॥ उपो-
षिता नरव्याघ्र इति सत्यं वदामि ते। यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णपिंगलाः ॥ ३० ॥ दण्डपा-
शधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं नरम्। पीतांबरधराः सौम्याश्चक्रहस्ता मनोजवाः ॥ ३१ ॥ अन्तकाले
नयन्त्येनं मानवं वैष्णवीं पुरीम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता ॥ ३२ ॥ जलधेनुं ततो दत्त्वा

करनेवाले यमके दूत नहीं आते हैं, और पीताम्बर धारण करनेवाले, सौम्यमूर्त्ति, चक्र हाथमे लिए हुए तथा जिनका
वेग मनके समान है ॥ ३१ ॥ ऐसे विष्णुके दूत उस व्रती पुरुषको अन्तकालमें विष्णुके लोकमें ले जाते हैं, इसलिए सब
उपायोंसे इसका निर्जल व्रत करना चाहिए ॥ ३२ ॥ इसके बाद जलधेनुका दान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, हे

जनमेजय ! ऐसा सुनकर पांडवोंने भी उस व्रतको किया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसलिए तुम भी सब पापोंकी शान्तिके लिए
यत्नपूर्वक उपवाससहित विष्णु भगवान्का पूजन करो ॥ ३४ ॥ हे देवेश ! आज मैं निर्जलव्रत करूँगा, और हे अनन्त देवेश !
तुम्हारे दिनसे दूसरे दिन भोजन करूँगा ॥ ३५ ॥ इस मन्त्रका उच्चारण करके श्रद्धापूर्वक इन्द्रियोंको वशमें करके सब

सर्वपापैः प्रमुच्यते । इति श्रुत्वा तदा चक्रुः पाण्डवा जनमेजय ॥ ३३ ॥ तथा त्वमपि भूपाल सोप-
वासार्चनं हरेः । कुरु त्वं च प्रयत्नेन सर्वपापप्रशान्तये ॥ ३४ ॥ करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्जमुपोषणम् ।
भोक्ष्ये परेऽह्नि देवेश ह्यनन्त तव वासरात् ॥ ३५ ॥ इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् । सर्वपाप-
विनाशाय श्रद्धादमसमन्वितः ॥ ३६ ॥ मेरुमन्दरमानं तु स्त्रियोऽथ पुरुषस्य वा । सर्वं तद्भस्मतां याति
एकादश्याः प्रभावतः ॥ ३७ ॥ सकाञ्चनः प्रदातव्यो घटो वस्त्रेण संवृतः । तोयस्य नियमं तस्यां कुरुते
वै स पुण्यभाक् ॥ ३८ ॥ पलकोटिसुवर्णस्य यामे यामेऽश्नुते फलम् । स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां

पापोंके नाशके लिए व्रत करनेको तैयार होवे ॥ ३६ ॥ एकादशीके प्रभावसे स्त्री-पुरुषोंके सुमेरु और मन्दराचल पर्वतके समान पाप
भस्म हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ जो इस निर्जल एकादशीमें सुवर्णसहित वस्त्रमें लपेटकर घड़ेका दान करता है और जलका नियम
करता है वही पुण्यका भागी होता है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य इस एकादशीके दिन स्नान, दान, जप, होम करता है वह प्रत्येक

पहरमे करोड़ पल स्वर्णदानके फलको प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥ और वह सब अक्षय कहा गया है ऐसा कृष्णका वचन है, हे नृप ! निर्जला एकादशीके अलावा और धर्म करना व्यर्थ है ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक व्रत करनेवाला मनुष्य विष्णुके स्थानको प्राप्त होता है, और जो इसके व्रतमें स्वर्ण, अन्न और वस्त्रोंका दान करता है ॥ ४१ ॥ हे कौरववंशमे श्रेष्ठ ! उसका दिया हुआ सब अक्षय होता है,

कुरुते नरः ॥ ३९ ॥ तत्सर्वं चाक्षयं प्रोक्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् । किंवाऽपरेण धर्मेण निर्जलैकादशीं नृप ॥ ४० ॥ उपोषिता च विधिवद्वैष्णवं पदमाप्नुयात् । सुवर्णमन्नं वासांसि यदस्यां संप्रदीयते ॥४१॥ तस्यैव च कुरुश्रेष्ठ सर्वं चाप्यक्षयं भवेत् । एकादशीदिने योऽन्नं भुंक्ते पापं भुनक्ति सः ॥ ४२ ॥ इह लोके स चांडालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् । ये प्रदास्यन्ति दानानि द्वादशीं समुपोष्य च ॥ ४३ ॥ ज्येष्ठमासि सिते पक्षे प्राप्स्यन्ति परमं पदम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेष्टा सदाऽनृती ॥ ४४ ॥ मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्द्वादशी यैरुपोषिता । विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशीदिने ॥ ४५ ॥ तत्क-

और जो एकादशीके दिन अन्न खाता है वह मानो पापको खाता है ॥ ४२ ॥ इस लोकमे वह चाण्डाल तुल्य होता है और मरकर दुर्गति को प्राप्त होता है, और जो द्वादशीयुक्त एकादशीका व्रत करके दान करेंगे ॥४३॥ वे ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमे परम पदको प्राप्त होवेगे । ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोर, गुरुसे कपट करनेवाला और सदा झूठ बोलनेवाला ॥ ४४ ॥ द्वादशीयुक्त

एकादशीका व्रत करनेवाले ये सब पापोंसे छूट जाते हैं, हे कुन्तीपुत्र ! निर्जला एकादशीके दिनकी विशेषता को सुनो ॥ ४५ ॥
श्रद्धापूर्वक इन्द्रियोंको वशमें करके स्त्री-पुरुषोंको यह व्रत करना चाहिए, विष्णु भगवान्‌का पूजन करके जलधेनुका दान
करे ॥ ४६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अथवा प्रत्यक्ष धेनुका दान करे या घृतकी गौका दान करे, और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ मिष्टान्न और

तव्यं नरैस्त्रीभिः श्रद्धादमसमन्वितैः । जलशायी तु सम्पूज्यो देया धेनुश्च तन्मयी ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षं वा
नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापि वा । दक्षिणाभिश्च श्रेष्ठाभिर्मिष्टान्नैश्च पृथग्विधैः ॥ ४७ ॥ तोषणीयाः प्रयत्नेन
द्विजा धर्मभृतां वर । तुष्टो भवति वै क्षिप्रं तैस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः ॥ ४८ ॥ आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु यैर्नैषा
समुपोषिता । पापात्मनो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ॥ ४९ ॥ कुलानां च शतं साग्रमनाचाररतं
सदा । आत्मना सह सन्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ॥ ५० ॥ शान्तैर्दानपरैश्चैव अर्चद्भिश्च तथा हरिम् ।

दक्षिणासे ॥४७॥ हे धर्मधारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे, ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर मोक्षको देनेवाले विष्णु
भगवान् संतुष्ट होते हैं ॥ ४८ ॥ जिन्होंने इस एकादशीका व्रत नहीं किया है उन्होंने अपनी आत्मासे द्रोह किया है, और वे
पापात्मा तथा दुराचारी हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । ४९ ॥ जिस पुरुषने इसका व्रत किया है उसने सदा आचारहीन अपने कुलके
एक सौ एक पुरुष आगेके और इतने ही पीछेके अपने सहित वासुदेवके मंदिरमें पहुँचा दिये ॥ ५० ॥ जिन्होंने शान्तिके साथ

जागरण किया है वे कुटुम्बसहित विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ५१ ॥ दान करके भगवान् विष्णुकी पूजा की तथा व्रत करके रात्रिमे जागरण किया है वे कुटुम्बसहित विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ५१ ॥ निर्जला एकादशीके दिन अन्न, जल, गौ, वस्त्र, शय्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु और छाता ये वस्तुएँ देनी चाहिएँ ॥ ५२ ॥ जो सत्पात्र ब्राह्मणको जूतोंका दान करता है वह सुवर्णके विमानमे बैठकर निश्चय हो स्वर्गलोकको जाता है ॥५३॥ जो इस कथाको

कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैर्नरैः समुपोषिता ॥ ५१ ॥ अन्नं पानं तथा गावो वस्त्रं शय्याऽऽसनं शुभम् । कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥ ५२ ॥ उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे । सौवर्णेन यानेन स्वर्गलोकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्त्तयेत् । उभौ तौ स्वर्गतौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ यत्फलं तु सिनीवाल्यां राहुग्रस्ते दिवाकरे । कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्य श्रवणादपि ॥ ५५ ॥ नियमं च प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम् ॥ ५६ ॥ केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते । द्वादश्यां देवदेवेशः पूजनीय-

भक्तिसे सुनता है तथा कहता है वे दोनों स्वर्गको जाते है इसको झूठा नही समझना चाहिए ॥ ५४ ॥ सिनीवाली अमावास्यामें सूर्यग्रहणके समय श्राद्ध करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल इस कथाके सुननेसे मिलता है ॥ ५५ ॥ दन्तधावन करके नियम करे कि मैं आज एकादशीका निराहार और निर्जल व्रत करूँगा ॥ ५६ ॥ केशव भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए आचमनके

अतिरिक्त और जल न पीवे, और द्वादशीके दिन देवताओंके देव त्रिविक्रम (विष्णु) भगवान्का पूजन करे ॥ ५७ ॥ गंध, पुष्प, दीप, और जलसे विष्णु भगवान्को प्रसन्न करे और विधिवत् पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ५८ ॥ मन्त्र–देवदेव ! हृषीकेश ! संसारार्णवतारक ! इति । हे देवताओंके देव ! हे हृषीकेश ! हे संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले ! इस जलके कुम्भके

त्रिविक्रमः ॥ ५७ ॥ गन्धपुष्पैस्तथा दीपैर्वारिभिः प्रीणयेद्धरिम् । पूजयित्वा विधानेन मंत्रमेतमुदीर-
येत् ॥ ५८ ॥ देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक । उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥ ५९ ॥
ततः कुम्भाः प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः स्वशक्तितः । सान्ना वस्त्रयुता भीम छत्रोपानत्फलान्विताः ॥ ६० ॥
दानान्यन्यानि देयानि जलधेनुर्विशेषतः । भोजयित्वा ततो विप्रान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ६१ ॥
एवं यः कुरुते पूर्णां द्वादशीं पापनाशिनीम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम् ॥ ६२ ॥ ततः

दानसे मुझे परम गति दीजिए ॥ ५९ ॥ हे भीम ! इसके बाद ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अन्न, वस्त्र, जूता, और फलोंके सहित घटोंका दान देवे ॥ ६० ॥ और भी दान देने चाहिएँ परन्तु जल और गौका दान अवश्य करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, मौन होकर आप भी भोजन कर ले ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य पापोंको नष्ट करनेवाली, द्वादशीसहित एकादशीका

पूर्ण व्रत करता है वह सब पापोंसे छूटकर भगवान्के निर्दोष पदको प्राप्त करता है ॥ ६२ ॥ इसके बाद इस एकादशीका व्रत भीमसेनने किया, तभीसे यह पाण्डवद्वादशी नामसे संसारमे प्रसिद्ध हुई ॥ ६३ ॥

प्रभृति भीमेन कृता ह्येकादशी शुभा । पाण्डवद्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ॥ ६३ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १४ ॥

अथाषाढकृष्णैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच । ज्येष्ठशुक्ले निर्जलाया माहात्म्यं वै श्रुतं मया । आषाढकृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन । श्रीकृष्ण उवाच । व्रतानामुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः ॥ २ ॥ सर्वपापक्षयकरं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । आषाढस्यासिते पक्षे योगिनी नाम नामतः

युधिष्ठिरजी बोले—ज्येष्ठ शुक्ल पक्षको निर्जला एकादशीका माहात्म्य तो मैंने सुन लिया, अब आषाढ़ कृष्ण पक्षकी एकादशीका नाम बतलाइए ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! कृपा करके मुझसे कहिये । श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! तुझसे सब व्रतोमे उत्तम व्रतको कहता हूँ ॥ २ ॥ आषाढ़के कृष्ण पक्षमे योगिनी नामकी एकादशी होती है जो पापोंको नाश करनेवाली और भोग

तथा मोक्षको देनेवाली है ॥ ३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! यह एकादशी महापातकोंको नाश करनेवाली, संसाररूपी समुद्रमे डूबे हुये मनुष्योंको पार करनेवाली और प्राचीन है ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! यह योगिनी तीनो लोको मे सारभूत है, इसकी पुराणोमे कही हुई पापोको हरनेवाली कथाको कहता हूँ ॥ ५ ॥ अलकापुरीका स्वामी कुबेर शिवका पूजक था, उसके लिये फूल लानेवाला हेम-

॥ ३ ॥ एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी । संसारार्णवमग्नानां पाररूपा सनातनी ॥ ४ ॥ जगत्त्रये सारभूता योगिनीति नराधिप । कथयामि कथां तस्याः पौराणीं पापहारिणीम् ॥ ५ ॥ अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः । तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः ॥ ६ ॥ तस्य पत्नी सुरूपा च विशालाक्षीति नामतः । स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं गतः ॥ ७ ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः । पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः ॥ ८ ॥ कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् । मध्याह्नसमये राजन् पुष्पाणि न समीक्षते ॥ ९ ॥ हेममाली स्वभवने रमते हि तया सह ।

माली नामका एक यक्ष था ॥ ६ ॥ उसकी विशालाक्षी नामकी सुन्दर स्त्री थी, उसमे अधिक प्रीति होनेसे वह कामदेवके वशमे हो गया ॥ ७ ॥ मानसरोवरसे फूलोको लाकर अपने घरमें ठहर गया और पत्नीके प्रेममें आसक्त वह कुबेरके यहाँ नहीं गया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस समय कुबेर मन्दिरमे पूजा कर रहे थे। दोपहरके समय उन्होंने फूल नहीं देखे ॥ ९ ॥ उस

समय हेममाली अपने घरमे स्त्रीके साथ विहार कर रहा था, तब समय बीतने पर देरीके कारण कुबेर क्रोधित होकर बोला ॥ १० ॥ अरे यक्षो ! वह दुष्ट हेममाली क्यो नही आया है, इसका निश्चय करो, यह कुबेरने बार-बार कहा ॥११॥ यक्षगण बोले—हे नृप ! स्त्रीमे आसक्त वह अपनी इच्छासे घरपे रमण कर रहा है, यक्षोके वचन सुनकर कुबेरने अधिक क्रोधित होकर ॥ १२ ॥ शीघ्र

यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ॥ १० ॥ कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान् । निश्चयः क्रियतामस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ ११ ॥ यक्षा ऊचुः । वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप । तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥ १२ ॥ आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम् । ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥ १३ ॥ आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः । तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ॥ १४ ॥ प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः । धनद उवाच । रे पाप दुष्ट दुर्वृत्त कृतवान्देवहेलनम् ॥ १५ ॥ अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सदा ।

ही फूल लानेवाले उस हेममालीको बुलवाया, हेममाली समय बीता जानकर भयके मारे व्याकुल हो गया ॥ १३ ॥ और वह कुबेरके पास आकर नमस्कार करके खड़ा हो गया, उसको देखकर कुबेर क्रोधित हो गया और उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गई ॥ १४ ॥ क्रोधसे कंपित ओष्ठवाला कुबेर रोषमे आकर बोला—अरे पापी ! दुष्ट ! दुराचारी ! तूने देवताकी अवज्ञा की

है ॥ १५ ॥ अतः तू श्वेतकुष्ठयुक्त होकर सदा स्त्रीसे वियोगी हो जा, और इस स्थानसे गिरकर अधम स्थानको जा ॥ १६ ॥ इसके बाद कुबेरके ऐसा कहनेपर वह स्थानसे गिर गया और उस महादुःखीका शरीर कुष्ठसे पीडित हो गया ॥ १७ ॥ उस भयानक वनमे उसको न अन्न और न जल ही प्राप्त हुआ, दिनमे सुख तथा रात्रिमे निद्रा भी न प्राप्त हुई ॥ १८ ॥ और छायामे उसका

अस्मात् स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाधमम् ॥ १६ ॥ इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात्पपात सः । महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठपीडितविग्रहः ॥ १७ ॥ न वै तोयं न भक्ष्यं च वने रौद्रे लभत्यसौ । न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ॥१८ ॥ छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः । शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न लुप्यते ॥ १९ ॥ पातकेनाभिभूतोऽपि कर्म पूर्वमनुस्मरन् । भ्रममाणस्ततोऽगच्छद्धेमाद्रिं पर्वतोत्तमम् ॥ २० ॥ तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् । तस्यायुर्विद्यते राजन् ब्रह्मणो दिनसप्तकम् ॥ २१ ॥ आश्रमं स गतस्तस्य ऋषेर्ब्रह्मसदः समम् । ववन्दे चरणौ तस्य दूरतः

शरीर पीडित होता तथा धूपमें अत्यन्त दाह होने लगती, परन्तु शिवकी पूजाके प्रभावसे उसकी स्मृतिका लोप नहीं हुआ ॥ १९ ॥ पातकोंसे युक्त भी वह पूर्व कर्मको याद करता हुआ, घूमता हुआ पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयगिरिपर गया ॥ २० ॥ हे राजन्! उस पर्वतपर उसने मुनियोंमे श्रेष्ठ और तपोनिधि मार्कण्डेय ऋषिको देखा, जिनकी आयु ब्रह्माके सात दिनकी है ॥ २१ ॥

फिर वह ब्रह्माकी सभाके समान ऋषिके आश्रमको गया और उस पाप करनेवालेने दूरसे ही उनके चरणोंकी वन्दना की ॥ २२ ॥ तब मुनिवर मार्कण्डेयने उस कुष्ठीको देखकर परोपकार करनेके लिए उसे बुलाकर यह कहा ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय बोले—तू किस तरहसे कोढ़ी हुआ और कैसे निन्दाको प्राप्त हुआ ? बुद्धिमान् मार्कण्डेयके ऐसा कहनेपर वह यक्ष

पापकर्मकृत् ॥२२॥ मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कुष्ठिनं तदा । परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥२३॥ मार्कण्डेय उवाच । कस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि । इत्युक्तः प्रत्युवाचाथ मार्कण्डेयेन धीमता ॥ २४ ॥ हेममाल्युवाच । यक्षराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः । मानसात्पुष्पनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ॥२५॥ शिवपूजनवेलायां कुबेराय समर्पये । एकस्मिन् दिवसे काललोपश्च विहितो मया ॥२६॥ पत्नीसौख्यप्रसक्तेन कामव्याकुलचेतसा । ततः क्रुद्धेन शप्तोऽहं राजराजेन वै मुने ॥ २७ ॥ कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया सह । अधुना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ॥ २८ ॥ सतां स्वभावत-

बोला ॥ २४ ॥ हेममाली बोला—हे मुनिवर ! मैं कुबेरका सेवक हूँ और हेममाली मेरा नाम है, प्रतिदिन मानसरोवरसे फूलोंको लाकर ॥ २५ ॥ शिवकी पूजाके समय कुबेरको दे देता था, एक दिन मुझसे देर हो गई ॥ २६ ॥ क्योंकि मैं कामसे व्याकुल होकर स्त्रीके सुखमे ही लगा रहा, इसके बाद हे राजन् ! राजाओंके राजा कुबेरने क्रोधित होकर मुझे शाप दे दिया ॥ २७ ॥ तबसे शापसे

कोढी होकर मैं स्त्रीसे वियोगी हूँ, और किसी शुभ कर्मसे आपकी शरणमे आया हूँ ॥ २८ ॥ सज्जनोंका चित्त स्वभावसे ही परोपकार करनेमे समर्थ होता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा जानकर मुझ पापीको उपदेश दीजिए ॥ २९ ॥ मार्कण्डेय बोले—तूने यहाँ सत्य कहा है, झूठ नहीं बोला है इसलिए तेरे लिए कल्याणकारी व्रतका उपदेश करूँगा ॥ ३० ॥ तू आषाढ़ कृष्णपक्षकी

श्चित्तं परोपकरणक्षमम् । इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ शाधि मां च कृतैनसम् ॥ २९ ॥ मार्कण्डेय उवाच । त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः । अतो व्रतोपदेशं ते करिष्यामि शुभप्रदम् ॥ ३० ॥ आषाढकृष्ण-पक्षे त्वं योगिनीव्रतमाचर । अस्य व्रतस्य पुण्येन कुष्ठात्त्वं मुच्यसे ध्रुवम् ॥ ३१ ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा दंडवत्पतितो भुवि । उत्थापितश्च मुनिना बभूवातीव हर्षितः ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयोपदेशेन कृतं तेन व्रतोत्त-मम् । तद्व्रतस्य प्रभावेण देवरूपो बभूव सः ॥ ३३ ॥ संयोगं कान्तया लेभे बुभुजे सौख्यमुत्तमम् । ईदृ-

योगिनी एकादशीका व्रत कर, उस व्रतके प्रभावसे शीघ्र ही तेरा कोढ़ दूर हो जायगा ॥ ३१ ॥ मुनिके वचन सुनकर वह पृथिवीमे गिरकर दण्डवत् करने लगा, तब मुनिने उसे उठा लिया और वह बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयके उपदेशसे उसने उत्तम व्रतको किया और उस व्रतके प्रभावसे वह देवस्वरूप हो गया ॥ ३३ ॥ इसके बाद स्त्रीके संयोगको प्राप्त होकर उसने उत्तम सुखको प्राप्त

क्रिया, हे राजन् ! इस प्रकार मैंने योगिनीका व्रत कहा ॥ ३४ ॥ योगिनीका व्रत करनेवाला मनुष्य अठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन करानेके फलको प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ हे नृप ! बड़े भारी पापोंको शान्त करनेवाली तथा महापुण्य और फलको देनेवाली इस पवित्र योगिनी एकादशी की कथा तुमको मैंने सुना दी ॥ ३६ ॥

त्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनीव्रतम् ॥ ३४ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान् भोजयते तु यः । तत्फलं समवाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥ ३५ ॥ महापापप्रशमनी महापुण्यफलप्रदा । शुचौ कृष्णैकादशी ते कथिता योगिनी नृप ॥ ३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते आषाढकृष्णैकादशीयोगिनीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १५ ॥



अथाषाढशुक्लैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच। आषाढस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्। को देवः को विधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच। कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम्। कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महा-

युधिष्ठिरजी बोले—आषाढके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है, हे केशव ! उसका कौन देवता और कैसी विधि है, यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! मैं आश्चर्यजनक कथाको कहता हूँ जिसको ब्रह्माजीने नारदसे कहा

था ॥ २ ॥ नारदजी बोले—विष्णुकी आराधनाके लिए मुझसे कृपा करके कहिये कि आषाढ़ शुक्लपक्षमे किस नामकी एकादशी होती है ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले—हे मुनियोंमे श्रेष्ठ ! हे कलिप्रिय ! तुम विष्णुके भक्त हो और तुमने यह अच्छा प्रश्न किया है, लोकमे इस हरिवासरसे पवित्र कोई दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥ सब पापोंको दूर करनेके लिये इसका व्रत यत्नपूर्वक करना चाहिए, इसलिए

त्मने ॥२॥ नारद उवाच। कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधनाय मे। आषाढशुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥३॥ ब्रह्मोवाच। वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ साधु पृष्टं कलिप्रिय। नातः परतरं लोके पवित्रं हरिवासरात् ॥ ४ ॥ कर्तव्यं तु प्रयत्नेन सर्वपापापनुत्तये। तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शुक्ल एकादशीव्रतम् ॥ ५ ॥ एकादश्या व्रतं पुण्यं पापघ्नं सर्वकामदम्। न कृतं यैर्नरैर्लोके ते नरा निरयैषिणः ॥ ६ ॥ पद्मा नामेति विख्याता शुचौ ह्येकादशी सिता। हृषीकेशप्रीतये तु कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ७ ॥ कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं

मैं तुमसे शुक्लपक्षकी एकादशीके व्रतको कहता हूँ ॥ ५ ॥ एकादशीका व्रत पुण्यशाली है, यह पापोंका नष्ट करनेवाला तथा संपूर्ण कामनाओंको देनेवाला है, जिन मनुष्योंने लोकमे इसका व्रत नहीं किया है वे पुरुष नरकगामी हैं ॥ ६ ॥ आषाढ़के शुक्लपक्षमे पद्मा नामकी एकादशी प्रसिद्ध है, विष्णु भगवान्की प्रसन्नताके लिये इस उत्तम व्रतको करना चाहिए ॥ ७ ॥ मैं तुमसे पुराणोंकी

॥ ८ ॥ सूर्यवंशमे मान्धाता नामका राजर्षि हुआ जो सत्य
सुन्दर कथाको कहता हूँ जिसके श्रवणमात्रसे ही महापाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ सूर्यवंशमे मान्धाता नामका राजर्षि हुआ जो सत्य
प्रतिज्ञावाला, प्रतापवान् और चक्रवर्ती था ॥ ९ ॥ उसने अपने पुत्रोंके समान प्रजाका धर्मसे पालन किया, और उसके राज्यमे
दुर्भिक्ष, तथा अधिव्याधि कोई भी उपद्रव नही थे ॥ १० ॥ उसकी प्रजा आतङ्करहित और धनधान्य से युक्त थी, उस

शुभाम् । यस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ ८ ॥ मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंशसम्भवः । बभूव चक्रवर्ती स सत्यसन्धः प्रतापवान् ॥९॥ धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥ १० ॥ निरातङ्काः प्रजास्तस्य धनधान्यसमन्विताः । नान्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ॥ ११ ॥ तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणो गतः । अथ कदाचित्संप्राप्ते विपाके पापकर्मणः ॥१२॥ वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः । तेनोद्विग्नाः प्रजास्तत्र बभूवुः क्षुधयार्दिताः ॥१३॥ बभूवुर्विषयास्तस्य सस्याभावेन पीडिताः ॥ १४ ॥ अथ प्रजाः स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिताः ।

राजाके खजानेमे अन्यायसे पैदा किया हुआ धन नहीं था ॥ ११ ॥ इस प्रकार राज्य करते हुए उसके बहुत वर्ष बीत गये, इसके बाद कभी पापकर्म के परिणामसे ॥ १२ ॥ उसके देशमे तीन वर्षतक वर्षा नही हुई, अतः उसकी प्रजा भूखसे पीडित होकर उद्विग्न हो गई ॥१३॥ उसके देशवासी अन्नके अभावसे दुखी हुए और स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, वेदाध्ययन आदि से रहित हो गये ॥१४॥

समागत्य राजानमिदमब्रुवन्। श्रूयतां वचनं राजन् प्रजानां हितकारकम् ॥ १५ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ताः पुराणेषु मनीषिभिः। अयनं ता भगवतस्तेन नारायणः स्मृतः ॥ १६ ॥ पर्जन्यरूपी भगवान् विष्णुः सर्वगतः सदा। स एव कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ १७ ॥ तदभावेन नृपते क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः। तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगक्षेमो यथा भवेत् ॥ १८ ॥ राजोवाच। सत्यमुक्तं च भवता न मिथ्याभिहितं वचः। अन्नं ब्रह्ममयं प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥ अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते। इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे ॥ २० ॥ नृपाणामपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत्। नाहं

तब प्रजा राजाके पास आकर बोली कि हे राजन्! प्रजाके हितकारी वचनों को सुनिये ॥ १५ ॥ विद्वानोंने पुराणोंमे जलको नारा कहा है और वह जल भगवान्का स्थान है अतः भगवान्का नाम नारायण है ॥ १६ ॥ मेघरूपी भगवान् सदा सर्वव्यापी हैं और वही वर्षा करते हैं, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥ हे राजन्! अन्नके अभावसे प्रजा क्षयको प्राप्त होती है, हे नृपश्रेष्ठ! ऐसा उपाय कीजिए जिससे कल्याण हो ॥ १८ ॥ राजा बोला—तुमने सत्य कहा है, झूठ कुछ भी नहीं कहा है, सचमुच अन्नको ब्रह्ममय कहा गया है, क्योंकि सब अन्नमें ही स्थित है ॥ १९ ॥ अन्नसे ही प्राणी होते हैं, और संसार अन्नसे ही वर्तमान है, सब विस्तृत पुराणोंमे ऐसा ही लिखा है ॥ २० ॥ राजाओंके अपराधसे प्रजाओंको

पीडा होती है, और बुद्धिसे विचार करके मैंने अपने दोषको नहीं देखा है ॥ २१ ॥ तो भी प्रजा के हितके लिये प्रयत्न करूँगा, ऐसा विचार करके बहुत सी सेनासे युक्त राजाने ॥ २२ ॥ विधाताको नमस्कार किया और घने वनको चला गया, और वहाँ तपके द्वारा बढ़े हुए मुख्य-मुख्य मुनियोंके आश्रमोंको गया ॥ २३ ॥ इसके बाद राजाने ब्रह्माके पुत्र आंगिरस ऋषिको देखा,

पश्याम्यात्मकृतं दोषं बुद्ध्या विचारयन् ॥ २१ ॥ तथापि प्रयतिष्यामि प्रजानां हितकाम्यया । इति कृत्वा मतिं राजाऽपरिमेयबलान्वितः ॥ २२ ॥ नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् । चचार मुनिमुख्यानामाश्रमांस्तपसैधिनाम् ॥ २३ ॥ ददर्शाथ ब्रह्मसुतमृषिमाङ्गिरसं नृपः । तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा ह्यवतीर्य च वाहनात् । नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी ॥ २५ ॥ मुनिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ॥ २६ ॥

जिन्होंने अपने तेजसे दिशाओंको प्रकाशमान किया है और जो दूसरे ब्रह्माके समान स्थित हैं ॥ २४ ॥ उनको देखकर प्रसन्न और उस वशी राजाने सवारीसे उतरकर हाथ जोड़कर उनके चरणोमे प्रणाम किया ॥ २५ ॥ इसके बाद मुनिने स्वस्तिवाचनपूर्वक उसको आशीर्वाद दिया और राजाके राज्यमें सातों अंगोंकी कुशल पूछी ॥ २६ ॥ राजाने अपनी कुशल कहकर मुनिसे कुशल पूछी,

तत्पश्चात् मुनिने राजासे आनेका कारण पूछा ॥ २७ ॥ तब राजा मुनिराजसे अपने आनेका कारण कहने लगा, राजा बोला—हे भगवन् मेरे धर्मविधिसे राज्य करते हुए भी अनावृष्टि (सूखा) हो गई है और मैं इसका कारण नहीं जानता हूँ ॥ २८ ॥ इस संशयको दूर करने लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ, योगक्षेमके विधानसे प्रजाका कल्याण कीजिए ॥ २९ ॥ ऋषि बोले—हे राजन्

निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृपः । ततश्च मुनिना राजा पृष्टागमनकारणः ॥ २७ ॥ अब्रवीन्मुनि-शार्दूलं स्वस्यागमनकारणम् । राजोवाच । भगवन्धर्मविधिना मम पालयतो महीम् । अनावृष्टिः संप्रवृत्ता नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २८ ॥ संशयच्छेदनार्थाय ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् । योगक्षेमविधानेन प्रजानां निर्वृतिं कुरु ॥ २९ ॥ ऋषिरुवाच । एतत् कृतयुगं राजन्युगानामुत्तमं स्मृतम् । अत्र ब्रह्मोत्तरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥ ३० ॥ तस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः । विषये तव राजेन्द्र वृषलो यत्तपस्यति ॥ ३१ ॥ अकार्यकरणात्तस्य न वर्षति बलाहकः । कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः

यह सतयुग सब युगोंमे उत्तम है, इस युगमे मनुष्य वेदोंको पढ़ते हैं, और इसमे धर्मके चारों चरण हैं ॥ ३० ॥ सतयुगमें ब्राह्मण तप करनेवाले होते हैं, अन्य जाति नहीं होती । हे राजन् ! तेरे देशमे जो शूद्र तप करता है ॥ ३१ ॥ उसके इस अनुचित कार्यके करनेसे वर्षा नहीं होती है, अतः उसके मारनेके लिए प्रयत्न करो जिससे उसका दोष शान्त हो जाय ॥३२॥ राजा बोला—मैं

इस पापरहित और तप करते हुए को नहीं मारूँगा, अतः धर्मका उपदेश कीजिए जिससे उपद्रवका नाश होवे ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! यदि ऐसा है तो आषाढ़ शुक्ल पक्षमे पद्मा नामकी एकादशी होती है तुम उसका व्रत करो ॥ ३४ ॥ उस व्रतके प्रभावसे निश्चय ही अच्छी वर्षा होवेगी, यह एकादशी सब सिद्धियोंको देनेवाली और सब उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली है ॥३५॥

प्रशाम्यति ॥ ३२ ॥ राजोवाच । नाहमेनं वधिष्यामि तपस्यन्तमनागसम् । धर्मोपदेशं कथय उपसर्ग-
विनाशनम् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच । यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम् । शुचिमासे शुक्लपक्षे पद्मानामेति
विश्रुता ॥ ३४ ॥ तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् । सर्वसिद्धिप्रदा ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी
॥ ३५ ॥ अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः । इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः
॥ ३६ ॥ आषाढमासे संप्राप्ते पद्माव्रतमथाकरोत् । प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः ॥३७॥ एवं
कृते व्रते राजन्प्रववर्ष बलाहकः । जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यशालिनी ॥ ३८ ॥ हृषीकेशप्रसादेन

हे नृप ! कुटुम्ब और प्रजाके सहित इसका व्रत करो, ऐसे मुनिके वचनोंको सुनकर राजा अपने घरको गया ॥ ३६ ॥ इसके बाद आषाढ़ मासके आनेपर राजाने चारों वर्णोंकी प्रजाके साथ पद्मा एकादशी का व्रत किया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार व्रत करने-पर मेघोंने वर्षा की और पृथिवी जलसे युक्त होकर धान्यसे सम्पन्न हो गई ॥३८॥ और हृषीकेश भगवान्की कृपासे मनुष्य सुखी

हो गये, इस कारणसे यह उत्तम व्रत करना चाहिए ॥३९॥ यह व्रत अच्छे भोग्य और मोक्षको देनेवाला तथा मनुष्योंको सुखदायक है। इस कथाको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥४०॥ हे राजन्! यह एकादशी देवशयनी भी कही जाती है, विष्णु भगवान्की प्रसन्नताके लिए यह शयन-व्रत कहा गया है ॥४१॥ हे राजसिंह! मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको सदा

जनाः सौख्यं प्रपेदिरे। एतस्मात्कारणादेव कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव लोकानां सुखदायकम्। पठनाच्छ्रवणादस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४० ॥ इयमेकादशी राजञ्छयनीत्यभिधीयते। विष्णोः प्रसादसिद्ध्यर्थमस्यां च शयनव्रतम् ॥ ४१ ॥ कर्तव्यं राजशार्दूल जनैर्मोक्षेच्छुभिः सदा। चातुर्मास्यव्रतारंभोऽप्यस्यामेव विधीयते ॥ ४२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं कृष्ण प्रकर्तव्यं श्रीविष्णोः शयनव्रतम्। तद्ब्रूहि कृपया देव चातुर्मास्यव्रतानि च ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच। शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविंदशयनव्रतम्। चातुर्मास्ये च यान्युक्तान्यासंस्तानि व्रतानि च ॥ ४४ ॥ कर्कराशिगते सूर्ये शुचौ

इसका व्रत करना चाहिए, इसी एकादशीसे चातुर्मास्य व्रत भी आरम्भ होता है ॥४२॥ युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! श्रीविष्णुका शयनव्रत कैसे करना चाहिए, हे देव! मुझसे कृपा करके चातुर्मास्य व्रतको कहिये ॥४३॥ श्रीकृष्ण बोले—हे युधिष्ठिर! सुनो, मैं गोविन्दके शयनके व्रतको और चातुर्मास्यमें जो व्रत कहे गये हैं उनको भी कहूँगा ॥ ४४ ॥ कर्कराशिका सूर्य होनेपर आषाढ़के

शुक्ल पक्षमे एकादशीके दिन जगत्के स्वामी मधुसूदन भगवान्को शयन करावे ॥ ४५ ॥ फिर तुलाराशिका सूर्य आनेपर भगवान्को जगावे, अधिक मासके आनेपर भी क्रमसे यही विधि कही गई है ॥ ४६ ॥ इसके अलावा अन्य समयमें भगवान् हरिको शयन न करावे और न जगावे, आषाढ़के शुक्लपक्षमे एकादशीके दिन व्रत करके ॥ ४७ ॥ हे युधिष्ठिर! इस प्रकार विष्णुकी

शुक्ले तु पक्षके । एकादश्यां जगन्नाथं स्वापयेन्मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ तुलाराशिस्थिते तस्मिन्पुनरुत्थापयेद्धरिम् । अधिमासेऽपि पतित एष एव विधिः क्रमात् ॥ ४६ ॥ नान्यदा स्वापयेद्देवं तथैवोत्थापयेद्धरिम् । आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ ४७ ॥ चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् । एवं च प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर ॥४८ ॥ स्नापयेत्प्रतिमां विष्णोः शङ्खचक्रगदाधराम् । पीताम्बरधरां सौम्यां पर्यंके वै सिते शुभे । सितवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ इतिहास-

प्रतिमाको स्थापित करके चातुर्मास्य-व्रतोंकी परिकल्पना करे ॥ ४८ ॥ शंख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले विष्णु भगवान्की प्रतिमाको स्नान करावे, फिर पीले वस्त्रोंको धारण करनेवाली प्रतिमाको सफेद वस्त्रवाली तथा तकियासे शुक्ल शय्यापर शयन करावे, और सफेद वस्त्रसे उसे ढक देवे ॥ ४९ ॥ इतिहास-पुराणोंका जाननेवाला तथा वेदमे पारंगत ब्राह्मण दही,

दूध, घी, शहद और शर्करा आदिसे स्नान कराकर ॥ ५० ॥ उत्तम गंधका लेप करे, बहुतसे धूप-दीप और उत्तम पुष्पोंसे पूजा करे और हे पांडव ! इस मन्त्रको पढ़े ॥ ५१ ॥ हे हृषीकेश ! लक्ष्मीके सहित पूजा करके मैंने तुमको शयन कराया है, अतः हे देवेश ! हे जनार्दन ! तुम लक्ष्मीसहित मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ५२ ॥ हे जगत्के स्वामी ! तुम्हारे शयन करनेपर चराचर जगत्

पुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः । स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रसितादिभिः ॥ ५० ॥ समालेप्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भूरिशः । पूजयेत्कुसुमैः शस्तैर्मन्त्रेणानेन पांडव ॥ ५१ ॥ शायितस्त्वं हृषीकेश पूजयित्वा श्रिया सह । प्रसादं कुरु देवेश लक्ष्म्या सह जनार्दन ॥ ५२ ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत् सुप्तं चराचरम् । एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ तस्या एवाग्रतः स्थित्वा गृह्णीयान्नियमान्नरः । चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥ ५४ ॥ प्रातःसन्ध्यादिकं सर्वं नित्यं कर्म समाप्य च । ग्रहीष्ये नियमाञ्छुद्धान्निर्विघ्नान्कुरु मे प्रभो ॥ ५५ ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं प्रह्वः संशुद्धमानसः ।

भी सो गया, हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार विष्णुकी उस पहली प्रतिमाको स्थापित करके ॥ ५३ ॥ उसी प्रतिमाके आगे स्थित होकर मनुष्य चातुर्मास्यके नियमोंको ग्रहण करे, जिनकी अवधि वर्षाके चार महीने बाद देवोत्थानी एकादशी तक है ॥ ५४ ॥ प्रातः-सन्ध्या और नित्य कर्मको समाप्त करके ऐसा कहे कि हे प्रभो ! मैं शुद्ध नियमोंको ग्रहण करता हूँ, आप उन्हें निर्विघ्न पूर्ण करें॥५५॥

इस प्रकार देवोंके स्वामी विष्णु भगवान्‌की प्रार्थना करके नम्र और शुद्ध मनसे मेरा भक्त (स्त्री हो अथवा पुरुष) धर्मके लिए व्रतको धारण करे ॥ ५६ ॥ और दाँतुन करके इन नियमोंको ग्रहण करे । विष्णु भगवान्‌ने व्रत-आरम्भके पाँच ही काल बतलाये हैं ॥ ५७ ॥ मनुष्य चतुर्मासके व्रतका आरम्भ आपाढ़के महीनेमे एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा और अष्टमीसे करे ॥ ५८ ॥

स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं च धृतव्रतः ॥ ५६ ॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकम् । व्रतप्रारम्भकालास्तु प्रोक्ताः पञ्चैव विष्णुना ॥ ५७ ॥ उपक्रमं चतुर्मासव्रतानां च नरः शुचौ । एकादशी द्वादशी च पूर्णिमा च तथाष्टमी ॥ ५८ ॥ कर्कटा चैव संक्रांतिस्तासु कुर्याद्यथाविधि । चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ॥ ५९ ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् । तेषां फलानि वक्ष्यामि कर्त्तॄणां ये पृथक्पृथक् ॥ ६० ॥ आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यामुपोषितः । चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिद्वनीपते ॥ ६१ ॥ नान्यथा चाब्दिकं पापं विनिहन्ति प्रयत्नतः । शैशवं चैव मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वार्ध-

पाँचवाँ काल कर्कको संक्रान्ति है, इनमें विधिके सहित चार प्रकारसे मनुष्य चतुर्मासके व्रतका आरम्भ करे ॥ ५९ ॥ और फिर कार्त्तिक शुक्ल पक्षमे द्वादशीके दिन व्रतको समाप्त करे, अब मैं व्रत करनेवालोंके फलोंको अलग-अलग कहूँगा ॥ ६० ॥ हे राजन् ! आपाढ़के शुक्ल पक्षमे एकादशीका व्रत करके कुछ चातुर्मास्यका व्रत अवश्य करे ॥ ६१ ॥ अन्यथा किसो उपायसे भी

एक वर्षके पाप नष्ट नहीं होते हैं, शुक्र और गुरुका बाल्यपन, युवापन और वृद्धापन इसमे बाधक नहीं है ॥ ६२ ॥ मनुष्य
चातुर्मास्य-व्रतके आरम्भमे ही खण्डत्वका विचार कर ले, यदि सूर्य खण्ड-अङ्गमे व्यापी हो और तिथि अखण्ड हो तो व्रतका
आरम्भ करे, स्त्री अथवा पुरुष शुचि हो या अशुचि हो इसका विचार न करे ॥ ६३ ॥ एक व्रतके करनेसे ही मनुष्य सब पातकोंसे

कम् ॥ ६२ ॥ खण्डत्वे चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः । खण्डाङ्गव्यापि मार्त्तण्डा यद्यखंडा भवे-
त्तिथिः । अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ॥ ६३ ॥ व्रतमेकं नरः कृत्वा मुच्यते सर्व-
पातकैः । असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ६४ ॥ मलरूपमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः ।
प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद्व्रतं वै संस्मरन् हरिम् ॥ ६५ ॥ देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कतेजसा । मोदते
विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६६ ॥ देवतायतने नित्यं मार्जनं जलसेचनम् । प्रलेपनं गोमयेन

छूट जाता है, देवकर्म और पितृकर्ममें संक्रान्ति-रहित मास वर्जित कहा गया है ॥६४॥ बुद्धिमान् पुरुष मलरूप अपवित्रता को दूर
करे, जो मनुष्य प्रत्येक वर्ष हरिका स्मरण करके इस व्रतको करता है ॥ ६५ ॥ वह शरीरके अन्त समयमें अतिप्रकाशवाले
और सूर्यके समान तेजवाले विमानमें बैठकर विष्णुलोक को जाता है और महाप्रलयतक सुख भोगता है ॥ ६६ ॥ नित्य

रङ्गवल्ल्यादिकं तथा ॥ ६७ ॥ यः करोति नरश्रेष्ठ चातुर्मास्यमतन्द्रितः । समाप्तौ च यथाशक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥ ६८ ॥ सप्तजन्मसु विप्रेन्द्र सत्यधर्मपरो भवेत् । दध्ना क्षीरेण चाज्येन क्षौद्रेण सितया तथा ॥६९॥ स्नापयेद्विधिना देवं चातुर्मास्ये जनाधिप । स याति विष्णुसारूप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ॥७०॥ नृपेण भूमिर्दातव्या यथाशक्त्या च कांचनम् । विप्राय देवमुद्दिश्य सफलं च प्रदक्षिणम् ॥ ७१ ॥ अक्षयाँल्लभते भोगान्स्वर्ग इन्द्र इवापरः । लोकं च समवाप्नोति विष्णोरत्र न संशयः ॥ ७२ ॥ देवाय हैमं पद्मं

मन्दिरमे झाड़ना, छिड़काव करना, गोवरसे लीपना और रंगसे वेलबूटे बनाना ॥ ६७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! चातुर्मास्यमे आलस्यरहित होकर जो मनुष्य इन वातोंको करता है तथा समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है ॥ ६८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! वह सात जन्मतक सत्यवादी और धर्ममे तत्पर रहता है और जो दही, दूध, घी, शहद, शर्करासे ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! चातुर्मास्यमे भगवान्को विधिसे स्नान कराता है वह विष्णुके स्वरूपको प्राप्त होकर अक्षय सुखको भोगता है ॥ ७० ॥ राजा भगवान्के उद्देश्य से ब्राह्मणको नारियल और दक्षिणासहित यथाशक्ति सुवर्ण और भूमिका दान देवे ॥ ७१ ॥ इस प्रकार वह स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके समान अक्षय भोगोंको प्राप्त करता है और पश्चात् विष्णुलोकमे जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७२ ॥

और जो भगवान्के लिए मीठेके सहित सुवर्णका कमल देता है और गन्ध, पुष्प, तथा चावलोंसे देव और ब्राह्मणोंकी पूजा करता है ॥ ७३ ॥ तथा जो व्रती पुरुष नित्य चातुर्मास्यमे पूजा करता है वह इन्द्रपुरीमे जाकर अक्षय सुखको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ और जो चारों मासोंमें तुलसीसे भगवान्की पूजा करता है तथा सुवर्णतुलसी बनवाकर ब्राह्मणको दान देता है ॥ ७५ ॥ वह

तु दद्यान्नैवेद्यसंयुतम् । गन्धपुष्पाक्षताद्यैर्यो देवब्राह्मणयोरपि ॥ ७३ ॥ पूजां यः कुरुते नित्यं चातुर्मास्ये व्रती नरः । अक्षयं सुखमाप्नोति पुरन्दरपुरं व्रजेत् ॥ ७४ ॥ यस्तु वै चतुरो मासांस्तुलस्या हरिमर्चयेत् । तुलसीं काञ्चनीं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ७५ ॥ काञ्चनेन विमानेन वैष्णवीं लभते गतिम् । देवाय गुग्गुलुं यो वै दीपं चार्पयते नरः ॥ ७६ ॥ स भोगी जायते श्रीमांस्तथा सौभाग्यवानपि । समाप्तौ धूपिकां दद्याद्दीपिकां च विशेषतः ॥ ७७ ॥ प्रदक्षिणां तु यः कुर्यान्नमस्कारं विशेषतः । अश्वत्थस्याथवा विष्णोः कार्त्तिक्यामवधिर्भवेत् ॥ ७८ ॥ पादं पादान्तरे न्यस्य करौ कृत्वा तु संयुतौ । स्तुतिं वाचि हृदि

सुवर्णके विमानमे बैठकर विष्णुकी गतिको प्राप्त होता है, और जो मनुष्य भगवान्के लिए गूगल की धूप और दीपक समर्पण करता है ॥ ७६ ॥ वह भोगी, श्रीमान् और सौभाग्यशाली होता है और व्रतकी समाप्तिमे धूपदान करे तथा दीपकका दान अवश्य करे ॥ ७७ ॥ जो पीपल अथवा विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है तथा विशेष करके कार्त्तिक तक नमस्कार करता है ॥ ७८ ॥

पादको पादान्तरमे करके और हाथोंको जोड़कर हृदयमे ज्ञान रखकर वाणीसे स्तुति करनेको चतुरंगी प्रदक्षिणा कहते हैं ॥ ७९ ॥ और जो चातुर्मास्यमे सन्ध्याके समय ब्राह्मण और देवताके आँगनमें दीपकका दान करता है वह व्रतसमाप्तिमें दीपक, वस्त्र, तेल और सुवर्णका दान करे ॥ ८० ॥ जो इस लोकमे किसीकी हवा करता है वह तेजस्वी होता है और विमानमे

ज्ञानं चतुरंगा प्रदक्षिणा ॥ ७९ ॥ संध्यादीपप्रदो यस्तु प्रांगणे द्विजदेवयोः । समाप्तौ दीपिकां दद्याद्वस्त्रं तैलं सकाञ्चनम् ॥ ८० ॥ वायुमालभते यस्तु तेजस्वी स भवेदिह । वैमानिको भवेद्देवो गन्धर्वाप्सरसेवितः ॥ ८१ ॥ विष्णुपादोदकं यस्तु पिबेत् कृच्छ्रात्स मुच्यते । विष्णोर्लोकमवाप्नोति न चास्मिञ्जायते नरः ॥ ८२ ॥ शतमष्टोत्तरं यस्तु गायत्रीजपमाचरेत् । त्रिकालं वैष्णवे हर्म्ये न स पापेन लिप्यते ॥ ८३ ॥ अक्षसूत्रं पुस्तकं च धत्ते पद्मं कमण्डलुम् । चतुर्वक्त्रा तु गायत्री श्रोत्रियाणां मुखे स्थिता ॥ ८४ ॥

बैठनेवाला गन्धर्व तथा अप्सराओसे सेवित देवता होता है ॥ ८१ ॥ जो विष्णुका चरणोदक पीता है वह कष्टसे छूट कर विष्णुलोकको जाता है और यहाँ संसारमे फिर जन्म नहीं लेता ॥ ८२ ॥ जो तीनों कालोंमे विष्णुके मन्दिरमे गायत्री मंत्रका एक सौ आठ (१०८) बार जप करता है वह पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ८३ ॥ जपमाला,

पुंस्तक, पद्म और कमण्डलुको धारण करनेवाली तथा चार मुखवाली गायत्री श्रोत्रिय (श्रुतियोंके ज्ञाता) पुरुषोंके मुखमे स्थित रहती है ॥ ८४ ॥ संपूर्ण लोकोंमें व्याप्त, वेदत्रयी, नित्य, शास्त्रोमे कही गई तथा संसारको ज्ञान देनेवाली गायत्री देवी ॥ ८५ ॥ गायत्रीका जो सेवन करता है उससे व्यासजी प्रसन्न होते हैं और वह शीघ्र ही विष्णुलोकको जाता है। इसमे

सर्वलोकमयी देवी गायत्री या त्रयीमयी। नित्या शास्त्रसमाख्याता लोकान् या तु प्रबोधयेत् ॥ ८५ ॥ व्यासस्तुष्यति तस्याशु विष्णुलोकं स गच्छति। अत्र चोद्यापनं शास्त्रपुस्तकं दानमेव च ॥ ८६ ॥ सर्वविद्यासमं शांतिकरणं ललिताक्षरम्। पुस्तकं सम्प्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ॥ ८७ ॥ पुराणं शृणुयान्नित्यं धर्मशास्त्रमथापि वा। पुण्यवान्धनवान् भोगी सत्यशौचपरायणः ॥ ८८ ॥ ज्ञानवाँल्लोकविख्यातो बहुशिष्यः सुधार्मिकः। काञ्चनेन युतं वस्त्रं पुस्तकं च निवेदयत् ॥ ८९ ॥ नाममन्त्रव्रतपरः

उद्यापन शास्त्रकी पुस्तक का दान कहा है ॥ ८६ ॥ सब विद्याओंके समान शान्ति करनेवाली तथा सुन्दर अक्षरवाली पुस्तकका मैं दान करता हूँ, अतः हे सरस्वति! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ, ऐसा कहे ॥ ८७ ॥ नित्य पुराण अथवा धर्मशास्त्रको सुननेवाला मनुष्य पुण्यवान्, धनवान्, भोगी, सत्यवादी और पवित्रात्मा होता है ॥८८॥ सुवर्णसे युक्त वस्त्र और पुस्तकको दान करनेवाला

ज्ञानवान्, लोकमे प्रसिद्ध, बहुत शिष्योंवाला और धार्मिक होता है ॥ ८६ ॥ विष्णु वा शिवके नाम, मन्त्र और व्रतमें तत्पर होकर व्रतको सामाप्तिमें उस देवताकी सुवर्ण-प्रतिमाका दान कर दे॥९०॥ मस्तकमें चन्द्रमा धारण किए, पञ्चमुखी बैल पर चढ़े हुए, प्रत्येक मुखमे त्रिलोचन, कपाल, शूल और खट्वांगको धारण किए सदाशिवकी मूर्ति दान करे॥९१॥ हे ईश! तुमने जिस प्रकार देवताओंके

शंभोर्वा केशवस्य च । समाप्तौ प्रतिमां दद्यात्तस्य देवस्य काञ्चनीम् ॥९०॥ पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः । कपालशूलखट्वांगी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥ ९१ ॥ त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात् । तथाऽसुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश ॥ ९२ ॥ त्वद्रूपदाता बहुपुण्यवांश्च दोषैर्विमुक्तश्च गुणालयोऽहम् । तथा कुरु त्वां शरणं प्रपद्ये मम प्रभो देववर प्रसीद ॥ ९३ ॥ कृतनित्यक्रियो भूत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । सूर्यमण्डलमध्यस्थं देवं ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ ९४ ॥ समाप्तौ कांचनं दद्याद्रक्तवस्त्रं च गां तथा । आरोग्यं पूर्णमायुश्च कीर्तिर्लक्ष्मीर्बलं भवेत् ॥ ९५ ॥ तिलहोमं

हितके लिए अमृतको छोड़कर विषको ग्रहण किया, उसी प्रकार संसारके हितके लिए एक बाणसे त्रिपुरासुरको भस्म किया ॥९२॥ हे देववर! आपको स्वरूप देनेवाला मैं बहुत पुण्यवान्, दोषोसे रहित एवं गुणोंका स्थान हो गया हूँ। हे प्रभो! मुझपर प्रसन्न हों जिससे मैं आपकी शरण मे आ जाऊँ ॥ ९३ ॥ नित्यक्रियासे निवृत्त होकर सूर्यमण्डलमे स्थित जनार्दन भगवान्का ध्यान करके सूर्यको

अर्घ्य दे ॥ ९४ ॥ समाप्त होनेपर सुवर्ण, लालवस्त्र और गौका दान करनेसे आरोग्य, पूर्ण आयु, कीर्त्ति, लक्ष्मी और बलसे युक्त होता है ॥ ९५ ॥ जो चातुर्मास्य व्रत करके प्रतिदिन भक्तिके साथ व्याहृति अथवा गायत्रीके मन्त्रोंसे तिलका हवन करता है ॥ ९६ ॥ और समाप्तिमे ब्राह्मणोंके लिए एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस तिलसे भरे पात्रोका दान करता है ॥ ९७ ॥

तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये दिने दिने। भक्त्या व्याहृतिभिर्मन्त्रैर्गायत्र्या वा व्रतान्वितः ॥ ९६ ॥ अष्टोत्तरशतं चाथ अष्टाविंशतिरेव वा। तिलपात्राणि समाप्तौ तु दद्याद्विप्राय धीमते ॥ ९७ ॥ वाङ्मनःकायजनितैः पापैर्मुच्येत संचितैः। न रोगैरभिभूयेत लभेत्संततिमुत्तमाम् ॥ ९८ ॥ देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलप्रद। तिलपात्रं प्रदास्यामि तेन पापं व्यपोहतु ॥ ९९ ॥ अन्नहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः। समाप्तौ घृतकुम्भं तु वस्त्रकांचनसंयुतम् ॥ १०० ॥ आरोग्यं कान्तिमतुलां

वह मनुष्य वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न हुए पापोसे छूट जाता है और रोगसे रहित होकर उत्तम संतानको प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥ हे देवताओंके देव! हे जगत्पति! हे मनोवांछित फलको देनेवाले! मैं तिलपात्रका दान करता हूँ उससे मेरे पाप दूर हो जायँ ॥ ९९ ॥ जो चातुर्मास्यमें आलस्यरहित होकर अन्नका होम करता है और समाप्तिमें वस्त्र-सुवर्णसहित घृत-कलशका दान करता है ॥ १०० ॥ वह आरोग्य, अतुल कान्ति और पुत्र, सौभाग्य तथा सम्पत्तिको प्राप्त करता है और उसके शत्रुओंका

नाश होता है तथा वह ब्रह्माके समान हो जाता है ॥ १०१ ॥ जो चातुर्मास्यमे पीपलकी पूजा करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है और विष्णुका भक्त होता है, और जो पूजा समाप्त होनेपर सुवर्णसहित वस्त्रोंका दान ॥ १०२ ॥ ब्राह्मणको देता है वह रोगी नहीं होता । जो विष्णुसे प्रेम रखनेवाली शुभ तुलसीको धारण करता है ॥ १०३ ॥ वह

पुत्रसौभाग्यसम्पदः । शत्रुक्षयं च लभते ब्रह्मणः प्रतिमो भवेत् ॥ १०१ ॥ अश्वत्थसेवां यः कुर्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते । विष्णुभक्तो भवेत्पश्चादन्ते वस्त्रं प्रदापयेत् ॥ १०२ ॥ सकाञ्चनं ब्राह्मणाय नैव रोगान्स विन्दते । तुलसीं धारयेद्यस्तु विष्णुप्रीतिकरीं शुभाम् ॥ १०३ ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्विष्णुमुद्दिश्य पाण्डव ॥ १०४ ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे दूर्वाममृत-सम्भवाम् । सदा प्रातर्वहेन्मूर्ध्नि शुद्धात्मा च ऋतुद्वये ॥ १०५ ॥ मन्त्रेणानेन राजेन्द्र लक्ष्मीनाथस्य तुष्टये । त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वंदिताऽसि सुरासुरैः ॥ १०६ ॥ सौभाग्यं सन्ततिं दत्त्वा सद्यः कार्यकरी

सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको जाता है । हे पाण्डव ! इसके बाद विष्णुके निमित्त ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १०४ ॥ जो शुद्धात्मा इन चातुर्मास्यकी दोनो ऋतुओमे हृषीकेश भगवान्‌के सोनेपर अमृतसे उत्पन्न दूर्वा को सदा प्रातःकाल मस्तक पर धारण करता है ॥ १०५ ॥ हे राजेन्द्र ! वह वक्ष्यमाण मन्त्रसे विष्णुकी प्रसन्नताके लिए ऐसा कहे—हे दूर्वे ! तू अमृतसे

भव । व्रतान्ते च कुरुश्रेष्ठ दूर्वा स्वर्णविनिर्मिताम् ॥ १०७ ॥ साग्रां सर्वदलोपेतां सवस्त्रां द्विजपुंगवे । दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ १०८ ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले । तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम् ॥ १०९ ॥ एवं व्रतं यः कुरुते चातुर्मास्यमतन्द्रितः । न च दुःखभयं तस्य न च रोगभयं भवेत् ॥ ११० ॥ नाशुभं प्राप्नुयाज्जातु पापेभ्यः प्रविमुच्यते । भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् स्वर्गलोके महीयते ॥ १११ ॥ गीतं तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य वा । करोति नित्यमाप्नोति नरो जागरणे फलम् ॥ ११२ ॥ व्रतान्ते च व्रती दद्याद्घण्टां देवाय सुस्वराम् । गुरोरवज्ञया

उत्पन्न हुई है और सुर तथा असुरोसे वंदनीय है ॥ १०६ ॥ सौभाग्य और संतान को देकर शीघ्र ही तू कार्य को करनेवाली हो । हे कौरवों मे श्रेष्ठ ! व्रतके अन्तमे सुवर्णकी बनी हुई दूर्वा को ॥ १०७ ॥ जो अग्रभाग और सब पत्तोसे युक्त हो, हे सुव्रत ! वस्त्र और दक्षिणाके सहित इस मन्त्रसे ब्राह्मण को देवे ॥ १०८ ॥ जैसे तू शाखा और प्रशाखाओंके द्वारा पृथ्वीतलपर फैली हुई है, उसी प्रकार मुझको अजर और अमर संतान दे ॥ १०९ ॥ इस प्रकार जो आलस्यरहित होकर चातुर्मास्यमे व्रत करता है उसको दुःखभय तथा रोगभय नहीं होता ॥ ११० ॥ और वह कभी अशुभ को प्राप्त नहीं होता तथा पापोंसे छूट जाता है, फिर वह सब भोगों को भोगकर अन्तमें स्वर्गलोक को जाता है ॥ १११ ॥ जो मनुष्य देवताओंके देव केशव या

यच्चानध्यायेऽध्ययनं कृतम् ॥ ११३ ॥ सरस्वति जगन्नाथे जगज्जाड्यापहारिणि । साक्षाद्ब्रह्मकलत्रं च विष्णुरुद्रादिभिः स्तुते ॥ ११४ ॥ तन्ममाध्ययनोत्पन्नं जाड्यं हर वरानने । घण्टानादेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनी ॥ ११५ ॥ विप्रपादविनिर्मुक्तं तोयं यः प्रत्यहं पिबेत् । चातुर्मास्ये नरो भक्त्या मद्रूपं ब्राह्मणं स्मरन् ॥ ११६ ॥ मनोवाक्कायजनितैर्मुक्तो भवति किल्विषैः । व्याधिभिर्नाभिभूयेत श्रीरायुस्तस्य वर्द्धते ॥ ११७ ॥ समाप्तौ गोयुगं दद्याद्गामेकां वा पयस्विनीम् । तत्राप्यशक्तौ राजेन्द्र

शिव के गीत नित्य गाता है वह जागरणके फलको प्राप्त करता है ॥ ११२ ॥ व्रतके अन्तमें व्रती पुरुष अच्छे स्वरवाला घंटा देवके निमित्त देवे और गुरुकी अवज्ञासे जो अनध्यायमे अध्ययन किया है ॥ ११३ ॥ सो हे सरस्वति ! जगत्की स्वामिनी ! संसारकी मूर्खताको दूर करनेवाली और हे साक्षात् ब्रह्माकी स्त्री तथा विष्णु और रुद्रादि देवताओमे स्तुति की गई ॥ ११४ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तू मेरी उस अध्ययनमे उत्पन्न हुई जडता को दूर कर । हे लोक को पवित्र करनेवाली ब्रह्माणी तू घंटानादसे प्रसन्न हो जा ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्यमे भक्तिके साथ ब्राह्मणका चरणधोवन जल पीता है और ब्राह्मण को मेरा ही रूप समझता है ॥ ११६ ॥ वह मानसिक, वाचिक और कायिक पापोंसे छूट जाता है, और कभी रोगी नहीं होता तथा उसकी लक्ष्मी और आयु बढ़ती है ॥ ११७ ॥ व्रतके समाप्त होनेपर दो गौओका दान करे अथवा दूधवाली एक ही गौका

दान करे, हे राजेन्द्र! यदि एक गौकी भी शक्ति न हो तो वस्त्रोंका जोडा दान करे ॥ ११८ ॥ और जो सब देवस्वरूप
ब्राह्मणके लिए नित्य नमस्कार करता है वह शीघ्र ही कृतकृत्य हो जाता है और सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ११९ ॥
पितरोंमें भक्ति रखनेवाला मनुष्य अक्षय सुख को प्राप्त होता है और जो व्रतकी समाप्तिमें ब्राह्मणों को भोजन कराता है

दद्याद्वासोयुगं व्रती ॥ ११८ ॥ ब्राह्मणं वन्दते यस्तु सर्वदेवमयं स्मृतम्। कृतकृत्यो भवेत्सद्यः सर्व-
पापैः प्रमुच्यते ॥ ११९ ॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभक्तिपरो नरः। समाप्तौ भोजयेद्विप्रानायुर्वित्तं
च विंदति ॥ १२० ॥ सन्ध्यां प्रातर्नरः कृत्वा समाप्तौ घृतकुंभदः। वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय
निवेदयेत् ॥ १२१ ॥ सारस्वतं याति तत्त्वं विद्यावांस्तु भवेदिति। संस्पृशेत्कपिलां यो वै नित्यं स
च भवेद्धनी ॥ १२२ ॥ तामेवालंकृतां दद्यात्सर्वां भूमिमथापि वा। सार्वभौमो भवेद्राजा दीर्घायुश्च
प्रतापवान् ॥ १२३ ॥ दानशीलः सदारंभः सर्वसंकटवर्जितः। रूपवान् भाग्यसम्पन्नो लभते सुखमक्ष-

उसकी आयु और धन बढ़ते हैं ॥ १२० ॥ जो मनुष्य प्रातःकालकी सन्ध्या करके व्रतकी समाप्तिमें घीके कलशका दान करता
है तथा वस्त्रोंका जोड़ा, तिल और घंटा ब्राह्मण को दान देता है ॥ १२१ ॥ वह सरस्वतीके तत्त्व को प्राप्त करता है और
विद्यावान् भी होता है, जो कपिला गौका दान करता है वह सदा धनी रहता है ॥ १२२ ॥ जो कपिला गौको अलंकृत

करके दान करता है या सब भूमिका दान करता है वह दीर्घायु, प्रतापवान् और चक्रवर्ती राजा होता है ॥ १२३ ॥ दान करनेवाला और सदा व्रतका आरम्भ करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण संकटोंसे रहित रहता है और वह रूपवान् तथा भाग्यसम्पन्न होकर अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥ १२४ ॥ जो नित्य सूर्य या गणेशजी को नमस्कार करता है वह शरीरके रोमोंकी संख्या-

यम् ॥ १२४ ॥ स वसेदिन्द्रवत्स्वर्गे वत्सरान् रोमसंमितान्। नमस्करोति यः सूर्यं गणेशं वापि नित्यशः ॥ १२५ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते कान्तिमुत्तमाम्। विघ्नराजप्रसादेन प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥ १२६ ॥ सर्वत्र विजयं चैव नात्र कार्या विचारणा। रविः कार्यः सुवर्णस्य सिंदूरारुणसन्निभः ॥ १२७ ॥ निवेदयेद्ब्राह्मणाय सर्वकामार्थसिद्धये। उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा ॥१२८॥ पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते। अष्टाङ्गसहितं भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥१२९॥

प्रमाण वर्षों तक स्वर्गमे इन्द्रके समान वास करता है ॥ १२५ ॥ और वह गणेशजीकी कृपासे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और उत्तम कांति को तथा मनोवांछित फलको प्राप्त होता है ॥ १२६ ॥ सर्वत्र उसको विजय होती है, इसमे कोई संदेह नहीं है। सब कार्योंकी सिद्धिके लिए लाल रंगके सिंदूरके समान सुवर्णके सूर्य बनवावे ॥ १२७ ॥ और अपनी कामनाके लिए उन्हें ब्राह्मण को दान कर दे। अब अष्टांग प्रणाम कहते हैं—छातीसे, शिरसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे ॥ १२८ ॥

चरणोंसे, हाथोंसे तथा घुटनोंसे अष्टांग प्रणाम होता है। जो अष्टांगसहित भूमिपर नमस्कारके साथ पूजा करता है ॥ १२९ ॥
वह जिस गति को प्राप्त करता है उसे मनुष्य सौ यज्ञोंसे भी प्राप्त नहीं कर सकता। जो वर्षाकालमें शिवकी प्रसन्नताके
लिए चाँदीका दान करता है॥ १३० ॥ अथवा शिवकी प्रसन्नताके लिए प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार ताँबेका दान

स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि। यस्तु रौप्यं शिवप्रीत्यै दद्याद्भक्त्या ऋतुत्रये ॥ १३० ॥ ताम्रं
वा प्रत्यहं दद्यात्स्वशक्त्या शिवतुष्टये। सुरूपाँल्लभते पुत्रान् रुद्रभक्तिपरायणान् ॥ १३१ ॥ समाप्तौ
मधुपूर्णं तु पात्रं राजतमुत्तमम्। प्रदद्यात्ताम्रदानेन ताम्रपात्रं गुडान्वितम् ॥ १३२ ॥ ताम्रं पुष्टिकरं
सर्वदेवप्रियकरं शुभम्। सर्वरक्षाकरं नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १३३ ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे
स्वर्णदानं स्वशक्तितः। वस्त्रयुग्मं तिलैः सार्द्धं दत्त्वा दोषैः प्रमुच्यते ॥ १३४ ॥ इह भुक्त्वा महाभो-

करता है वह शिवकी भक्तिमे तत्पर अच्छे रूपवाले पुत्रों को प्राप्त करता है॥ १३१ ॥ व्रतकी समाप्तिमे चाँदीका पात्र
उत्तम कहा है अतः चाँदीके पात्रमें शहद भरकर दान करे, ताँबेके दानमे ताँबेके पात्रमें गुड़ भरकर दान करे ॥ १३२ ॥
ताँवा पुष्टिकारक, सब देवताओं को प्रिय और शुभ है और सबकी रक्षा करनेवाला है, अतः तू मुझे नित्य शान्ति दे ॥ १३३ ॥
जो हृषीकेश भगवान्के सोनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका दान, तथा तिलोंके साथ वस्त्रोंका जोड़ा दानमे देता है वह

इस लोकमें महान् भोगों को भोगकर अन्तमे शिवपुर को जाता है। सुवर्ण, चाँदी,
सब दोषोसे छूट जाता है ॥ १३४ ॥ नित्य श्राद्ध और देवपूजा ये दक्षिणाके सहित करनो चाहिए। जो चातुर्मास्यमे
ताँबा और धान्य ये नित्य दान हैं ॥ १३५ ॥ और गन्ध-पुष्पादिसे पूजा करके ऐसा कहता कि वह विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न
ब्राह्मणोंके लिए वस्त्रदान करता है ॥ १३६ ॥

नित्यश्राद्धं देवपूजा
गानन्ते शिवपुरं व्रजेत्। सुवर्णं रजतं ताम्रं नित्यदानं च धान्यकम् ॥ १३५ ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः
सर्वमेतत् सदक्षिणम्। वस्त्रदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये द्विजातये ॥ १३६ ॥ अक्षय्यं सुखमा-
स विष्णुः प्रीयतामिति। शय्यां दद्यात्समाप्तौ तु वासः काञ्चनपट्टिकाम् ॥ १३७ ॥ श्रीपतिस्तस्य
प्नोति धनं च धनदोपमम्। यो गोपीचन्दनं दद्यान्नित्यं वर्षासु मानवः ॥ १३८ ॥ जलक्रीडासु
सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं ददाति च। यद्वै देवांगसंलग्नं कुंकुमादिविलेपनम् ॥ १३९ ॥

वह अक्षय सुख को और
हो जावे और व्रत समाप्त होनेपर वस्त्र और सोनेकी पाटीसे युक्त शय्यादान देता है ॥ १३७ ॥ उसके
कुबेरके समान धन को प्राप्त करता है। जो मनुष्य नित्य वर्षाऋतुमे गोपोचन्दनका दान करता है ॥ १३८ ॥ देवताओंके अंगोंमे लगा
लिए विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति देते हैं। अब गोपोचन्दन को कहते हैं—कि
हुआ केशर आदिका विलेपन ॥ १३९ ॥ और जलकी क्रीड़ामें गोपियोंके अंगसे गिरा हुआ चन्दन और द्वारिकाकी मिट्टी,

इसे मुनीश्वरोंने गोपीचन्दन कहा है जो पापों को नष्ट करनेवाला है ॥ १४० ॥ अतः इसे यत्नपूर्वक देना चाहिए। गोपीचन्दनके देनेसे विष्णु भगवान् मनोवांछित फल को देते हैं। व्रतकी समाप्तिमे भी एक तुलाके प्रमाण सुन्दर गोपीचन्दनका दान करना चाहिए ॥ १४१ ॥ व्रती को प्रतिदिन भगवान् हृषीकेशके सोनेपर उसका आधा अथवा आधेका आधा चन्दन वस्त्र और

गोपीनां द्वारवत्या मृदान्वितम्। गोपीचन्दनमित्युक्तं मुनीन्द्रैः किल्बिषापहम् ॥ १४० ॥ तस्माद्देयं प्रयत्नेन विष्णुर्दिशति वाञ्छितम्। समाप्तावपि तद्दद्यात्तुलापरिमितं शुभम् ॥ १४१ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा सवस्त्रं च सदक्षिणम्। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु व्रतान्वितः ॥ १४२ ॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं शर्करामपि वा गुडम्। अमृतस्य कला प्रोक्ता इक्षुसारजशर्करा ॥ १४३ ॥ तस्या दानेन सन्तुष्टो भानुर्दिशति वाञ्छितम्। एवं व्रतं तु सम्पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥ १४४ ॥ कारयेत्ताम्रपात्राणि प्रत्येकं तु पलाष्टकम्। वित्तशाठ्यमकुर्वाणो यद्वा पलचतुष्टयम् ॥ १४५ ॥ अष्टौ चत्वार्यथैकैकं प्रत्येकं

दक्षिणाके सहित दान करना चाहिए ॥ १४२ ॥ ईखके रससे पैदा हुई शर्करा अमृतकी कला कही गई है, अतः शर्करा या गुड़ को दक्षिणाके सहित देवे ॥ १४३ ॥ इसके दानसे संतुष्ट सूर्य मनोवांछित फलको देते हैं। इस प्रकार व्रतके संपूर्ण होनेपर जानकार मनुष्य उद्यापन करे ॥ १४४ ॥ आठ-आठ पल वजन के तांबेके पात्र बनवावे, धनका लोभ न करे। अथवा न हो सके तो

शक्तिके अनुसार आठ पात्र बनवावे या चार अथवा शक्ति न हो तो एक ही
चार चार पलके ही पात्र बनवा ले ॥ १४५ ॥ शक्तिके अनुसार आठ पात्र बनवावे या चार अथवा शक्ति न हो तो एक ही
बनवा ले और प्रत्येकमें शर्करा भरे। फिर उनको नारियल और दक्षिणाके सहित वस्त्रोंसे लपेट देवे ॥ १४६ ॥ और धान्यके
सहित श्रद्धासे ब्राह्मणों को शर्करा, सुवर्ण और वस्त्र सहित उन ताँबेके पात्रों को दे देवे ॥ १४७ ॥ यह दान सूर्यको प्रसन्न

च सशर्करम्। दक्षिणाफलवस्त्रेण प्रत्येकं वेष्टितानि च ॥ १४६ ॥ सह धान्यानि विप्रेभ्यः श्रद्धया
प्रतिपादयेत्। ताम्रपात्रं सवस्त्रं च शर्कराहेमसंयुतम् ॥ १४७ ॥ सूर्यप्रीतिकरं यस्माद्रोगघ्नं पापना-
शनम्। पुष्टिदं कीर्तिदं नृणां नित्यं सन्तानकारकम् ॥ १४८ ॥ सर्वकामप्रदं स्वर्ग्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम्।
तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदा मम ॥ १४९ ॥ एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु।
गन्धर्वविद्यासंपन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥ १५० ॥ राजापि लभते राज्यं पुत्रार्थी लभते सुतान्।

करनेवाला है, इससे रोग नष्ट होते है, यह पापों को नाश करनेवाला, पुष्टिकारक और मनुष्यो को नित्य कीर्ति तथा सन्तान
देनेवाला है ॥ १४८ ॥ यह व्रत संपूर्ण कामनाओं और स्वर्ग को देनेवाला, उत्तम आयु को बढ़ानेवाला है। अतः इसके
दानसे मेरी सदा कीति होवे ॥ १४९ ॥ इस प्रकार जो व्रत करता है उसके फलको सुनो। गन्धर्वविद्यासे युक्त वह पुरुष
सब स्त्रियो का प्यारा होता है ॥ १५० ॥ इस व्रतसे राजा राज्य को, पुत्रार्थी पुत्र को और धनकी इच्छावाला धनको

प्राप्त करता है और निष्काम व्रत करनेवाला मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ १५१ ॥ हे नृप ! जो चार महीने शाक मूल फलादि को
नित्य अपनी शक्तिसे दान करता है ॥ १५२ ॥ तथा व्रतके अन्तमे शक्तिके अनुसार दक्षिणाके सहित वस्त्रोंका जोड़ा दान
करता है । वह मनुष्य बहुत समय तक सुख भोगकर राजयोगी होता है ॥ १५३ ॥ शाक मनुष्यों की तृप्ति करनेवाला

अर्थार्थी प्राप्नुयादर्थं निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १५१ ॥ यस्तु वै चतुरो मासाञ्छाकमूलफलादि-
कम् । नित्यं ददाति विप्रेभ्यः शक्त्या यत्सम्भवे नृप ॥ १५२ ॥ व्रतान्ते वस्त्रयुग्मं च शक्त्या दद्यात्स-
दक्षिणम् । सुखी भूत्वा चिरं कालं राजयोगी भवेन्नरः ॥ १५३ ॥ सर्वदेवप्रियं यस्माच्छाकं तृप्तिकरं
नृणाम् । देवर्षिप्रीतिदं कन्दमूलपत्रं सपुष्पकम् ॥ १५४ ॥ ददामि तेन देवाद्याः सदा कुर्वन्तु मङ्गलम् ।
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु ऋतुद्वये ॥ १५५ ॥ दद्यात्कटुत्रयं मर्त्यो गृहपर्याप्तमादरात् । ब्राह्मणाय
सुशीलाय दिनेशप्रीतयेऽनघ ॥ १५६ ॥ दक्षिणासहितं विप्राय मन्त्रेणानेन सुव्रत । कटुत्रयमिदं

है क्योंकि यह देवताओं को प्रिय है । पुष्पोंके सहित कन्दमूल देवर्षियों को प्रीति देनेवाला है ॥ १५४ ॥ मैं तुमको ये
समर्पण करता हूँ अतः देवतागण सदा मंगल करें । जो मनुष्य दोनों ऋतुओंमे हृषीकेश भगवान्‌के सोनेपर प्रतिदिन ॥ १५५ ॥
सूर्यकी प्रसन्नताके लिए सुशील ब्राह्मणको आदरके साथ त्रिकुटाका दान करता है, हे पापोंसे रहित ! ॥ १५६ ॥ हे सुव्रत !

इस मन्त्रसे ब्राह्मणके लिये दक्षिणासहित त्रिकुटा दे। यह त्रिकुटा मनुष्योंके रोगोंको नाश करता है॥ १५७॥ इसलिए इसके दानसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होवें। इस प्रकार सविधि व्रत करके बुद्धिमान् पुरुष उसका उद्यापन करे॥ १५८॥ और सुवर्णके सोंठ, मिर्च, पीपर ननवाकर वस्त्र और दक्षिणा सहित बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवे॥ १५९॥ इस प्रकार व्रत करनेवाला

यस्माद्रोगघ्नं सर्वदेहिनाम्॥ १५७॥ तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु भास्करः। एवं कृत्वा व्रतं सम्यक् कुर्यादुद्यापनं बुधः॥ १५८॥ कृत्वा स्वर्णमयीं शुण्ठीं मरिचं मागधीमपि। सवस्त्रां दक्षिणायुक्तां दद्याद्विप्राय धीमते॥ १५९॥ एवं व्रतं यः कुरुते स जीवेच्छरदां शतम्। प्राप्नुयादीप्सितानर्थानन्ते स्वर्गं व्रजेदिति॥ १६०॥ मुक्ताफलानि यो दद्यान्नित्यं विप्राय सन्मतिः। अन्नवान्कीर्तिमाञ्छ्रीमाञ्जायते वसुधाधिपः॥ १६१॥ चातुर्मास्ये प्रत्यहं तु क्षीरकुम्भं प्रदापयेत्। वेष्टयित्वा सुवस्त्रेण फलैर्दक्षिणया सह॥ १६२॥ सुवासिनीं श्रियं मत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत्। ताम्बूलं फलमेकं वा

सौ वर्षतक जीता है और मनोवांछित वस्तुको प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलोकको जाता है॥ १६०॥ हे राजन्! जो बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंको नित्य मोतियोंका दान करता है। वह अन्नवान्, कीर्तिमान् और ऐश्वर्यशाली होता है॥ १६१॥ चातुर्मास्यमें प्रति दिन अच्छे वस्त्रसे लपेटकर फल और दक्षिणाके सहित दूधके कलशका दान करे॥ १६२॥ सुवासिनी (सुहागवती) को लक्ष्मी

मानकर गन्धपुष्पोंसे पूजा करे और 'श्रीपतये नमः' ऐसा कहकर ताम्बूल या एक फलका दान करे ॥ १६३ ॥ इस व्रतकी समाप्तिमें सूक्ष्म वस्त्र और गहनोंसे तथा सुन्दर चमेलीके फूलोंसे पत्नी-सहित ब्राह्मणकी पूजा करे ॥ १६४ ॥ इस प्रकार करनेसे पुरुष स्त्रीको और स्त्री पतिको प्राप्त करती है। और पुरुष इस प्रकार लक्ष्मी को प्राप्त करता है जैसे माधवजीने कला-

दद्याच्छ्रीपतये नमः ॥ १६३ ॥ समाप्तौ योषितं विप्रं सूक्ष्मवस्त्रविभूषणैः। मिथुनं पूजयित्वा तु जातिपुष्पैः सुशोभनैः ॥ १६४ ॥ पुमांस्तु स्त्रियमाप्नोति नारी भर्तारमाप्नुयात्। पुमांस्तु श्रियमाप्नोति सकलामिव माधवः ॥ १६५ ॥ ताम्बूलदानं यः कुर्याद्वर्जयेद्वा जितेन्द्रियः। रक्तवस्त्रद्वयं दद्यात्करकं च सदक्षिणम् ॥ १६६ ॥ महालावण्यमाप्नोति सर्वरोगविवर्जितः। मेधावी सुभगः प्राज्ञो रक्तकण्ठश्च जायते ॥ १६७ ॥ गन्धर्वत्वमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवा-

सहित लक्ष्मीको प्राप्त किया था ॥ १६५ ॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य ताम्बूलका दान करता है या उसे व्रतमें छोड़ देता है। तथा लाल वस्त्रोंका जोड़ा और कमण्डलु दक्षिणासहित दान करता है ॥ १६६ ॥ वह सब रोगोंसे रहित होकर सुन्दरताको प्राप्त करके बुद्धिमान्, सुन्दर, विद्वान् और मधुरकण्ठयुक्त हो जाता है ॥ १६७ ॥ वह गन्धर्वके समान गानेवाला होता है तथा अन्तमें स्वर्गको जाता है। दानके समय ये मन्त्र कहे—ताम्बूल लक्ष्मी देनेवाला, कल्याण करनेवाला और ब्रह्मा, विष्णु,

शिवका स्वरूप है ॥ १६८ ॥ ताम्बूलके दानमे ब्रह्मा आदि देवता बहुत सी लक्ष्मी दें । क्योंकि सुपारीमें ब्रह्मा, पत्रमे विष्णु और चूनेमे साक्षात् शिवका वास है ॥ १६९ ॥ इन सबके दानमे मेरी भाग्यसम्पत्ति वृद्धिको प्राप्त होवे । सुपारीके चूर्ण और नागवेलके पत्तोंसे युक्त ॥ १७० ॥ तथा चूना, कत्था, जावित्री और जायफल, लौंग और इलायचीसे मिला

त्मकम् ॥ १६८ ॥ अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलाम् । पूगे ब्रह्मा हरिः पत्रे चूर्णे साक्षान्महेश्वरः ॥ १६९ ॥ एतेषां सम्प्रदानेन सन्तु मे भाग्यसम्पदः । पूरितं पूगचूर्णेन नागवल्लीदलान्वितम् ॥ १७० ॥ सचूर्णं खादिरं चैव पत्रीफलसमन्वितम् । एलालवङ्गसम्मिश्रं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ॥ १७१ ॥ कनकाढ्यं निरातंकं त्वं प्रसादात्कुरुष्व माम् । चातुर्मास्यव्रतोपेतः सुवासिन्यै द्विजाय च ॥ १७२ ॥ नारी वा पुरुषो वाऽपि हरिद्रां सम्प्रयच्छति । लक्ष्मीमुद्दिश्य गौरीं वा तत्पात्रे दक्षिणान्वितम् ॥ १७३ ॥ प्रदद्याद्भक्तिसंयुक्तं देवी मे प्रीयतामिति । भर्त्रा सह सुखं भुंक्ते नारी नार्या

हुआ पान गन्धर्व और अप्सराओंको प्यारा है ॥ १७१ ॥ और कहे कि आप मुझे धनयुक्त और आतंकरहित कीजिए । चातुर्मास्यका व्रत करनेवाली स्त्री या पुरुष सोहागिन ब्राह्मणी अथवा ब्राह्मणको ॥ १७२ ॥ लक्ष्मी या गौरीके निमित्त दक्षिणासहित चाँदीके पात्रमें हल्दीका दान देता है ॥ १७३ ॥ और भक्तिपूर्वक दान करके मुझपर देवी प्रसन्न हो

जायँ ऐसा कहता है तो वह पुरुष स्त्रीके साथ तथा स्त्री पुरुषके साथ सुख भोगती है ॥ १७४ ॥ और अक्षय सौभाग्य, धान्य-धन, पुत्रवृद्धि और रूप तथा सुन्दरताको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें आनन्द करती है ॥ १७५ ॥ चातुर्मास्यमें प्रति दिन शिव और पार्वतीके निमित्त शक्तिके अनुसार ब्राह्मणीसहित ब्राह्मणकी पूजा कर ॥ १७६ ॥ ऐसा कहे कि शिवजी प्रसन्न

तथा पुमान् ॥ १७४ ॥ सौभाग्यमक्षयं धान्यं धनपुत्रसमुन्नतिम् । सम्प्राप्य रूपलावण्ये देवीलोके
महीयते ॥ १७५ ॥ उमामहेशमुद्दिश्य चातुर्मास्ये दिने दिने । सम्पूज्य विप्रमिथुनं तस्मै विप्राय
शक्तितः ॥ १७६ ॥ दद्यात्सदक्षिणं हैममुमेशः प्रीयतामिति । उमेशप्रतिमां हैमीं दद्यादुद्यापने
बुधः ॥ १७७ ॥ पंचोपचारैः सम्पूज्य धेनुं सवृषभां नरः । भोजयेदपि मिष्टान्नं तस्य पुण्यफलं शृणु
॥ १७८ ॥ सौभाग्यं पूर्णमायुष्यं सन्ततिश्चानपायिनी । सम्पत्तिश्चाक्षया कीर्तिर्जायते व्रतवैभवात्
॥ १७९ ॥ इह भुक्त्वाऽखिलान् कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत् । तत्र स्थित्वा चिरं कालमुपभुज्य सुखं

होवे और दक्षिणासहित सुवर्ण देवे । बुध जन उद्यापनमें शिवकी प्रतिमा सुवर्णकी बनाकर दें ॥ १७७ ॥ जो मनुष्य साँड़सहित गौका पंचोपचार पूजन करके ब्राह्मणको देता है और मिष्टान्न खिलाता है उसके पुण्यका फल सुनो ॥ १७८ ॥ उसे व्रतके प्रभावसे सौभाग्यपूर्ण आयु, कभी नष्ट न होनेवाली सन्तान, सम्पत्ति तथा अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है ॥ १७९ ॥

वह इस लोकमें संपूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमे शिवलोकको जाता है, और वहाँ स्थित रहकर बहुत समयतक सुख भोगता
है ॥ १८० ॥ और पुण्योंके शेष होनेपर यहाँ आकर राजा होता है। और जो चातुर्मास्यमें आलस्यरहित होकर फलका दान
करता है ॥ १८१ ॥ तथा व्रतकी समाप्तिमें ब्राह्मणको चाँदीका दान देता है। वह संपूर्ण मनोरथ और दीर्घायु सन्तान

महत् ॥ १८० ॥ पुण्यशेषादिहागत्य जायते धरणीपतिः। फलदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः
॥ १८१ ॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये। सर्वान्मनोरथान्प्राप्य सन्ततिं चानपायिनीम्
॥ १८२ ॥ फलदानस्य माहात्म्यान्मोदते नन्दने वने। पुष्पदानव्रतेनापि स्वर्णपुष्पादि दापयेत् ॥१८३॥
स सौभाग्यं परं प्राप्य गन्धर्वपदमाप्नुयात्। वासुदेवे प्रसुप्ते तु चातुर्मास्यमतंद्रितः ॥ १८४ ॥ नित्यं
वामनमुद्दिश्य दध्यन्नं स्वादु षड्रसम्। भोजयेदथवा दद्यादेकादश्यां न भोजयेत् ॥ १८५ ॥ दानमेवं

प्राप्त करता है ॥ १८२ ॥ और फलदानके पुण्यसे इन्द्रके नन्दनवनमें आनन्द करता है। पुष्पदानके व्रतमें भी जो
ब्राह्मणको सुवर्णके पुष्पका दान देता है ॥ १८३ ॥ वह परम सौभग्यको प्राप्त करके गन्धर्वपदको प्राप्त करता है।
चातुर्मास्यमें वासुदेव भगवान्के शयन करनेपर आलस्यरहित होकर ॥ १८४ ॥ नित्य वामनजीके निमित्त दही-भात और
स्वादयुक्त छहो रसका भोजन करावे। अथवा दान करे, किन्तु एकादशीको भोजन न करावे ॥ १८५ ॥ इस प्रकार दान

करे और ग्रहण आदिमें भी ऐसा ही करे। जो नित्य दानका सामर्थ्य न हो तो पाँचों पर्वोंमें अवश्य दान करे ॥ १८६ ॥ चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा तथा प्रत्येक रविवार अथवा शुक्रवारको दान देवे ॥ १८७ ॥ और दोनों पक्षोंकी द्वादशीमें अवश्य दान करे। इस प्रकार करके व्रतकी समाप्तिमें यथाशक्ति पृथिवीका दान करे ॥ १८८ ॥ यदि भूमिदान

प्रकुर्वीत ग्रहणादौ तथैव च। अशक्तो नित्यदाने तु कुर्यात्पञ्चसु पर्वसु ॥ १८६ ॥ भूताष्टम्याममायां च पूर्णिमायां तथापि च। प्रत्यर्कवारमथवा प्रतिभार्गववासरम् ॥ १८७ ॥ पक्षद्वयेऽपि द्वादश्यामवश्यं दानमेव च। एवं कृत्वा समाप्तौ तु यथाशक्ति महीं ददेत् ॥ १८८ ॥ अशक्तो भूमिदाने तु धेनुं दद्यादलंकृताम्। तत्राप्यशक्तौ वासश्च सरुक्मं पादुके तथा ॥ १८९ ॥ छत्रोपानद्वस्त्रयुतं दानं सर्वं प्रशस्यते। द्विजानां भोजनं चैव क्षत्रियस्य यथासुखम् ॥ १९० ॥ भूम्यादि मुनिशार्दूल वैश्यस्य वसुधां विना। ब्राह्मणस्यापि शक्तस्य शूद्रस्यापि तथा मतम्। कुवेरेण पुरा चीर्णं शंकरस्योपदेशतः

न कर सके तो अलंकारसे युक्त गौका दान करे। और इसका भी सामर्थ्य न हो तो वस्त्र और सुवर्णके सहित खड़ाऊँका दान करे ॥ १८९ ॥ वस्त्रसहित छाते और जूतेका दान सब दानोंमें उत्तम कहा है। ब्राह्मणोंके लिए भोजन, क्षत्रियके लिए यथाशक्ति ॥ १९० ॥ भूमि आदि, और हे मुनिश्रेष्ठ! वैश्यको भूमिदान छोड़कर सब दान कहे हैं। समर्थ ब्राह्मण तथा शूद्रको

भो ऐसा ही कहा है। पहले कुबेरने शंकरजीके उपदेशसे यह व्रत किया ॥ १९१ ॥ पूर्वकालमें महाराज जह्नु, गौतमऋषि और इन्द्रने भी किया है। व्रती पुरुष अक्षय अन्न और पुत्र-पौत्रादि संपत्तिको प्राप्त करता है ॥ १९२ ॥ वह स्वस्थ रहकर पूरी आयु भोगता है, उसके शत्रुओंका नाश हो जाता है। और विष्णुकी स्थिर भक्ति पाकर वह हरिके मन्दिरमें जाता है ॥ १९३ ॥ इस व्रतके प्रभावसे मनुष्य आरोग्य, सुख और अतुल रूप तथा सम्पत्ति पाता है। अनन्त फल देनेवाले इस व्रतसे स्त्री वन्ध्या नहीं

॥ १९१ ॥ जह्नुना गौतमेनापि शक्रेणापि कृतं पुरा। अक्षय्यमन्नमाप्नोति पुत्रपौत्रादिसंपदम् ॥ १९२ ॥ दृढाङ्गः पूर्णमायुष्यं लभते वैरिनाशनम्। स स्थिरां विष्णुभक्तिं च प्रयाति हरिमंदिरम् ॥ १९३ ॥ आरोग्यं सौख्यमतुलं रूपं सम्पत्तिमेव च। न वन्ध्या जायते चेदमनन्यफलदायकम् ॥ १९४ ॥ नित्यं पयस्विनीं दद्यात्सालंकारां शुभावहाम्। दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स सर्वज्ञानवान् भवेत् ॥ १९५ ॥ न परप्रेष्यतां याति ब्रह्मलोकं च गच्छति। अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभिः सहितो नरः ॥ १९६ ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्राजापत्यं चरेन्नरः। समाप्तौ गोयुगं दद्यात्कृत्वा

होती ॥ १९४ ॥ नित्य अलंकारसहित और अधिक दूध देनेवाली सुन्दर गौका दान करने और शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनेसे मनुष्य सर्वज्ञ होता है ॥ १९५ ॥ दूसरोंकी सेवकाई न करके ब्रह्मलोकको जाता है तथा पितरोंके साथ वह अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥ १९६ ॥ वर्षाके चार महीनोंमें मनुष्य प्राजापत्य व्रत करे और व्रतके समाप्त होनेपर सवत्सा गौका दान करके

ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १९७ ॥ ऐसा करनेसे सब पापोंसे शुद्ध होकर वह सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। यदि एक दिन
बीचमें छोड़कर व्रत करे तो ॥ १९८ ॥ वस्त्र और सुवर्णके सहित आठ दीपकोंका दान करे और कहे कि सुन्दर शय्या तथा
हलमें जोतने योग्य बैलोंकी सुन्दर जोड़ी ॥ १९९ ॥ सब सामग्रीके सहित देता हूँ। अतः हरि भगवान् मुझपर प्रसन्न हो

ब्राह्मणभोजनम् ॥ १९७ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्। एकान्तरोपवासे तु दीपानष्टौ
प्रदापयेत् ॥ १९८ ॥ वस्त्रकाञ्चनयुक्तांश्च शय्यया सह भामिनि। अनडुद्द्वयसंयुक्तं लाङ्गलं कर्षण-
क्षमम् ॥ १९९ ॥ सर्वोपस्करसंयुक्तं ददामि प्रीयतां हरिः। शाकमूलफलैर्वापि चातुर्मास्यं नयेन्नरः
॥ २०० ॥ समाप्तौ गोप्रदानेन स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम्। पयोव्रती तथाऽऽप्नोति ब्रह्मलोकं सना-
तनम् ॥ २०१ ॥ व्रतान्ते च तथा दद्याद्गामेकां च पयस्विनीम्। रंभाफलपलाशेषु यो भुंक्ते च ऋतु-
द्वये ॥ २०२ ॥ वस्त्रयुग्मं च कांस्यं च शक्त्या दद्यात्सुखी भवेत्। कांस्ये ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीः कांस्यमेव

जावें। अथवा मनुष्य चातुर्मास्यको शाक, मूल और फलोंके द्वारा व्यतीत करें ॥ २०० ॥ व्रतकी समाप्तिमें गौदान
करनेसे मनुष्य विष्णुके धामको जाता है और केवल दूधका ही आहार करनेवाला सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ २०१ ॥
व्रतके अन्तमें जो एक दूधवाली गौ दान करता है। तथा जो दोनों ऋतुओंमें केलेके पत्तोंमें भोजन करता है ॥ २०२ ॥

और जो शक्तिके अनुसार वस्त्रोंका जोड़ा और काँसेके पात्रका दान करता है। वह सुखी रहता है क्योंकि काँसेमें ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीका वास है. काँस्य ही अग्नि है ॥ २०३ ॥ और काँसा विष्णुरूप है इसलिए देते समय ऐसा कहे कि यह काँसा मुझे शान्ति देवे। व्रती पुरुष नित्य ढाकके पत्तेपर भोजन करे तथा चातुर्मास्यमे व्रतपर्यन्त तेल न लगावे ॥ २०४ ॥ ऐसा

विभावसुः ॥ २०३ ॥ कांस्यं विष्णुमयं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे। नित्यं पलाशभोजी च तैला-
भ्यङ्गविवर्जितः ॥२०४॥ स निहंत्यतिपापानि तूलराशिमिवानलः। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च बालघातकरश्च यः
॥२०५॥ असत्यवादिनो ये च स्त्रीघाती व्रतघातकः। अगम्यागामिनश्चैव विधवागामिनस्तथा ॥२०६॥
चाण्डालीगामिनश्चैव विप्रस्त्रीगामिनस्तथा। ते सर्वे पापनिर्मुक्ता व्रतेनानेन केशव ॥ २०७ ॥ समाप्तौ
कांस्यपात्रं तु चतुःषष्टिपलैर्युतम्। सवत्सां गां च वै दद्यात्सालङ्कारां पयस्विनीम् ॥ २०८ ॥ अलंकृताय

करनेवाला अपने अनेक पापोको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे अग्नि रूईके समूहको जला देता है। ब्राह्मणका वध करनेवाले, मदिरा पीनेवाले, बालकोंका वध करनेवाले ॥ २०५ ॥ असत्य बोलनेवाले, स्त्रीघातक, व्रतको खण्डित करनेवाले, अगम्या स्त्रियोंमे गमन करनेवाले, विधवागामी ॥ २०६ ॥ और हे केशव! चाण्डालीमे गमन करनेवाले तथा ब्राह्मणीमे गमन करनेवाले ये सब इस व्रतके प्रभावसे पापसे मुक्त हो जाते हैं ॥ २०७ ॥ व्रत समाप्त होनेपर

चौसठ पल काँसेका पात्र और अलंकारके सहित दूध देनेवाली सवत्सा गौका दान करे ॥ २०८ ॥ उस गौको
अलंकृत, विद्वान् और सुन्दर वस्त्र एवं वेपयुक्त ब्राह्मणको देवे। जो भूमिको लीपकर नारायणका स्मरण करता हुआ
भोजन करता है ॥ २०९ ॥ और यथाशक्ति जलके पासकी खेतीके योग्य भूमि दान करता है। वह आरोग्य, पुत्रोंसे

विदुषे सुवस्त्राय सुवेषिणे। भूमौ विलिप्य यो भुंक्ते देवं नारायणं स्मरन् ॥ २०९ ॥ दद्याद्भूमिं
यथाशक्ति कृष्यां बहुजलांतिके। आरोग्यपुत्रसंपन्नो राजा भवति धार्मिकः ॥ २१० ॥ शत्रोर्भयं न
लभते विष्णुलोकं स गच्छति। अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं सचन्दनम् ॥ २११ ॥ षड्रसं भोजनं
दद्यात्स याति परमां गतिम्। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तं च कुरुते व्रतम् ॥ २१२ ॥ ब्राह्मणान् भोज-
येत्पश्चाच्छिवलोके महीयते। एकभुक्तं नरः कृत्वा मिताशी च दृढव्रतः ॥ २१३ ॥ योऽर्चयेच्चतुरो

युक्त और धार्मिक राजा होता है ॥ २१० ॥ उसको शत्रुसे भय नहीं होता और वह विष्णुलोकको जाता है। जो पुरुष
विना माँगे ही ब्राह्मणको सुवर्ण और चन्दनसहित बैल देता है ॥ २११ ॥ तथा षट्रस भोजन देता है वह परमगतिको
प्राप्त होता है। जो हृषीकेश भगवान्के शयन करनेपर रात्रिव्रत करता है ॥ २१२ ॥ और व्रतके अन्तमे ब्राह्मणोंको
भोजन कराता है वह शिवलोकमें आनन्द करता है। एक वार थोड़ा खाकर व्रतमें तत्पर रहते हुए ॥ २१३ ॥ जो मनुष्य

करता है वह स्वर्गमें सुख भोगता है। अतः व्रतकी समाप्तिमें ब्राह्मणोको भोजन
चारों महीनोंमे वासुदेव भगवान्‌का पूजन करता है वह स्वर्गमें सुख भोगता है। और बादमें
करावे और शक्तिके अनुसार दक्षिणा देवे ॥ २१४ ॥ जो हृषीकेश भगवान्‌के शयन करनेपर पृथिवीपर सोता है। और बादमें
सब वस्तुओंसे युक्त शय्याका दान करता है वह शिवलोकमें वास करता है ॥ २१५ ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्यकी दोनों ऋतुओंमें

समाप्तौ भोजयेद्विप्राञ्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ २१४ ॥ यस्तु सुप्ते
मासान् वासुदेवं स नाकभाक्। समाप्तौ भोजयेद्विप्राञ्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ २१४ ॥ यस्तु सुप्ते
हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः। शय्यां सोपस्करां दद्याच्छिवलोके महीयते ॥ २१५ ॥ पादाभ्यङ्गं
नरो यस्तु वर्जयेच्च ऋतुद्वये। पादाभ्यङ्गं नरः कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ २१६ ॥ दक्षिणां च
यथाशक्त्या स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम्। आषाढाच्चतुरो मासान्वर्जयेन्नखकृन्तनम् ॥२१७॥ आरोग्यपुत्रसम्पन्नो
राजा भवति धार्मिकः। पायसं लवणं चैव मधु सर्पिः फलानि च ॥ २१८ ॥ चातुर्मास्ये वर्जयति
गौरीशङ्करतुष्टये। कार्त्तिक्यां च पुनस्तानि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २१९ ॥ स रुद्रलोकमाप्नोति रुद्र-

तेल लगाना छोड़ दे, ब्राह्मणोके पाँव धोकर उनको भोजन करावे ॥ २१६ ॥ और यथाशक्ति दान देवे तो वह विष्णुलोकको
जाता है। आषाढ़ आदि चार मासोंमे व्रती पुरुष नाखून न काटे ॥ २१७ ॥ तो वह आरोग्य, पुत्रसे सम्पन्न और धार्मिक राजा
होता है। और जो खीर, नमक, शहद, घी और फलोंको ॥ २१८ ॥ चातुर्मास्यमे शिव और पार्वतीकी प्रसन्नताके लिए छोड़ता है

और फिर उन्हीं वस्तुओंको कार्तिकीके दिन ब्राह्मणोंको दान करता है ॥ २१९ ॥ वह रुद्र-व्रतके सेवनसे रुद्रलोकको प्राप्त होता है।
और जो चार महीने सुन्दर जौ या चावलोंका भोजन करता है ॥ २२० ॥ वह पुत्र और पौत्रादिके साथ शिवलोकमें आनन्द
करता है। और तेल न लगानेवाले, विष्णुके भक्त तथा सदा व्रत करनेवाले ॥ २२१ ॥ और वर्षाऋतुमें विष्णुका पूजन करनेवाला

व्रतनिषेवणात्। यवान्नं भक्षयेद्यस्तु अथवा शालयः शुभाः ॥ २२० ॥ पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं शिवलोके
महीयते। तैलाभ्यङ्गपरित्यागी विष्णुभक्तः सदा व्रती ॥ २२१ ॥ वर्षासु विष्णुमभ्यर्च्य वैष्णवीं लभते
गतिम्। समाप्तौ कांस्यपात्रं च सुवर्णेन समन्वितम् ॥ २२२ ॥ तैलेन पूरितं कृत्वा ब्राह्मणाय
निवेदयेत्। वार्षिकांश्चतुरो मासाञ्छाकादि परिवर्जयेत् ॥ २२३ ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति पितृतृप्तिः
प्रजायते। व्रतान्ते हरिमुद्दिश्य पात्रं राजतमेव हि ॥ २२४ ॥ वस्त्रेण वेष्टयेद्गंधपत्रपुष्पैः समर्चयेत्।
मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् ॥ २२५ ॥ त्वक्पुष्पं कवचं चेति शाकमष्टविधं स्मृतम्। सम-

विष्णुकी गतिको प्राप्त होता है। फिर व्रतकी समाप्तिमें सुवर्णके सहित काँसेके पात्रको ॥ २२२ ॥ तेलसे भरकर ब्राह्मण को देवे।
और वर्षाके चार महीनोंमें शाक आदिको छोड़ देवे ॥ २२३ ॥ तब वह विष्णुके लोकको जाता है और उसके पितरोंकी तृप्ति होती
है। और व्रतके अन्तमें हरिके निमित्त चाँदीके पात्र को ॥ २२४ ॥ वस्त्रसे लपेटकर गन्ध, पत्र और पुष्पोंसे पूजा करे। मूल, पत्र,

करीरका अग्रभाग, फल और काण्ड ॥ २२५ ॥ छाल, पुष्प और कवच ये आठ प्रकारके शाक कहे गये हैं। इनका यथाशक्ति पूजन करके वेदके जाननेवाले ब्राह्मण को ॥ २२६ ॥ व्रत सम्पूर्ण होनेके लिए दक्षिणासहित दान करनेसे नर शिवजीकी कृपासे शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ २२७ ॥ चातुर्मास्यमें मनुष्य पूआ छोड़कर व्रतमें फलाहार करे।

भ्यर्च्य यथाशक्त्या ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ २२६ ॥ दद्याद्दक्षिणया सार्धं व्रतसम्पूर्णहेतवे। शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ २२७ ॥ अपूपवर्जनं कृत्वा भोजनं व्रतमाचरेत्। कार्तिके स्वर्णगोधूमान्वस्त्रं दत्त्वाऽश्वमेधकृत् ॥ २२८ ॥ गोधूमाः सर्वजन्तूनां वलपुष्टिविवर्धनाः। मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम् ॥ २२९ ॥ आपाढादिचतुर्मासान्वृन्ताकं वर्जयेन्नरः। कारवल्लीफलं वाप्यलावुं पडवलं तथा ॥ २३० ॥ यद्वा तद्वा फलं वापि यच्च प्रियतमं भवेत्। चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्याण्येतानि कारयेत् ॥ २३१ ॥ मध्ये विद्रुमयुक्तानि ह्यर्चयित्वा तु शक्तितः। दद्याद्दक्षिणया

कार्तिकमें सुवर्ण, गेहूँ और वस्त्रोंका दान करके अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ २२८ ॥ गेहूँ सब प्राणियोंके बल और पुष्टिको बढ़ानेवाले हैं। और हव्य तथा कव्यमें मुख्य है अतः मुझे लक्ष्मी देवें ॥ २२९ ॥ मनुष्य आषाढ़से लेकर कातिक-पर्यन्त बैगन, करैला, घीया और परवल न खावे ॥ २३० ॥ जो जो फल बहुत प्रिय हों उन्हे भी चातुर्मास्यमें

त्याग देवे और व्रतके समाप्त होनेपर इन सब फलों को चाँदीके बनवावे ॥ २३१ ॥ फलोंके बीचमें मूँगा लगवावे फिर यथाशक्ति पूजन करके दक्षिणासहित बड़ी भक्ति और श्रद्धासे ब्राह्मण को देवे ॥ २३२ ॥ और अपने इष्टदेवताका स्मरण करके कहे कि—अमुक देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हो जावें। इस प्रकार व्रत करनेवाला मनुष्य दीर्घायु, आरोग्य,

सार्द्धं ब्राह्मणायातिभक्तितः ॥ २३२ ॥ अभीष्टं देवमुद्दिश्य देवो मे प्रीयतामिति। स दीर्घमायुरारोग्यं पुत्रपौत्रान्सुरूपकान् ॥ २३३ ॥ अक्षय्यां संपदं कीर्तिं लब्ध्वा स्वर्गे महीयते। फलत्यागी भवेद्यस्तु विष्णुलोके स पूज्यते ॥ २३४ ॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये। श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ॥ २३५ ॥ दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्। चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्तिनाम् ॥ २३६ ॥ प्रथमे मासि कर्त्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः। द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् ॥ २३७ ॥ पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थे द्विदलं तथा। कूष्माण्डं राजमाषांश्च

पुत्र-पौत्रकी सुन्दरता ॥ २३३ ॥ अक्षय संपत्ति और कीर्ति को प्राप्त करके स्वर्गमें सुख भोगता है। जो चातुर्मास्यमें फलका त्याग करता है उसकी विष्णुलोकमें पूजा होती है ॥ २३४ ॥ व्रतकी समाप्तिमें उन फलों को चाँदीके बनवाकर ब्राह्मणों को दान करे। श्रावणमें शाक न खाय, भादोंमे दही न खाय ॥ २३५ ॥ आश्विनमे दूध तथा कार्तिकमें दालका त्याग करे। ये चारों चीजें चारों आश्रमवालोंको अवश्य त्यागनी चाहियें ॥ २३६ ॥ प्रथम मास

अर्थात् श्रावणमे मनुष्य शाकका व्रत करे, दूसरे भादोंके महीनेमें दहीका व्रत करे ॥ २३७ ॥ तीसरे आश्विनमे दूध और चौथे कार्तिकके महीनेमे दाल न खाय। चातुर्मास्यमे मनुष्य पेठा, उड़द, मूली, गाजर ॥ २३८ ॥ करौंदा और ईख न खाय। तथा मसूर, बहुत बीजवाली वस्तु और बैंगनका त्याग करे ॥ २३९ ॥ हे विप्रेन्द्र! विद्वानोंने

मूलकं गृञ्जनं तथा ॥ २३८ ॥ करमर्दं चेक्षुदण्डं चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः। मसूरं बहुबीजं च वृन्ताकं चैव वर्जयेत् ॥ २३९ ॥ नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः। विशेषाद्बदरीं धात्रीमलाबुं चिञ्चिणीं त्यजेत् ॥ २४० ॥ जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं जीर्णा ग्राह्या च चिञ्चिणी। वार्षिकांश्चतुरो मासान्प्रसुप्ते च जनार्दने ॥ २४१ ॥ मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः। अनृतौ वर्जयेद्भार्यामृतौ गच्छन्न दुष्यति ॥ २४२ ॥ मधुवेलीं च शिग्रुं च चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः। वृन्ताकं च कलिंगं च बिल्वोदुम्बरभिस्सटाः

ये व्रत नित्य बतलाये हैं। आषाढ़से कार्तिकतक विशेषकर बैर, आँवले, लौकी और इमलीका त्याग करे ॥ २४० ॥ भगवान्के शयन करनेपर वर्षाके चार महीने पुराने आँवले और पुरानी इमली को ग्रहण करे ॥ २४१ ॥ भक्तिमान् पुरुष मचान, पलंग आदिके शयनका त्याग करे, बिना ऋतुके स्त्रीगमन न करे। ऋतुसमयमे गमन करनेसे दोष नहीं होता ॥ २४२ ॥ चातुर्मास्यमे मधुवेली (महुआ) और सैंजन को न खावे। तथा करेला, कलौंदा, बिल्वफल,

गूलर और भसैड़ा इन सबका भी त्याग करे ॥ २४३ ॥ ये फल देवशयनकालमे जिसके पेटमे पचते हैं उससे विष्णु भगवान् दूर रहते हैं। और जो उपवास, रात्रिव्रत और एकभुक्त अर्थात् अयाचित व्रत ॥ २४४ ॥ नियमसे प्रातःकाल और संध्याकाल स्नान-पूजन आदि करनेसे ही वह मनुष्य विष्णुलोकमें आनन्द भोगता है ॥ २४५ ॥ करनेमें असमर्थ हो तो

॥ २४३ ॥ उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः । उपवासस्तथा नक्तमेकभुक्तमयाचितम् ॥ २४४ ॥
अशक्तस्तु यथा कुर्यात्सायं प्रातरखंडितम् । स्नानपूजादिसंयुक्तः स नरो हरिलोकभाक् ॥ २४५ ॥
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात् । मधुभुक्च भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ २४६ ॥ लभेच्च
संततिं दीर्घां पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम् । तैलस्य वर्जनाद्राजन्सुन्दरांगः प्रजायते ॥ २४७ ॥ कौसुम्भतैल-
सन्त्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् । मधूकतैलत्यागाच्च सुसौभाग्यफलं लभेत् ॥ २४८ ॥ कटु तिक्तं च

जो विष्णु को गीत और बाजा सुनाता है वह गन्धर्वलोकमे जाता है। जो मनुष्य गुड़का त्याग करता है वह मीठा खानेवाला राजा होता है ॥ २४६ ॥ वह पुत्र-पौत्रादि को बढ़ानेवाली दीर्घायु संतान प्राप्त करता है। हे राजन्! तेल को छोड़नेसे मनुष्य को सुन्दर शरीर मिलता है ॥ २४७ ॥ कसूमका तेल त्यागनेसे शत्रुका नाश होता है। महुआका तेल त्यागनेसे सौभाग्यका फल मिलता है ॥ २४८ ॥ जो मनुष्य कड़ुवा, तीखा, मधुर, कसैला,

और लवण, इन रसों का त्याग करता है। वह कभी कुरूपता और दुर्गन्धता को प्राप्त नहीं होता ॥ २४९ ॥ पुष्पादिका भोग त्यागनेसे स्वर्गमे विद्याधर होता है। जो योगाभ्यासी है वह ब्रह्मपदवी को प्राप्त होता है ॥ २५० ॥ चातुर्मास्यमे पान छोड़नेसे रोगी व्यक्ति शीघ्र नीरोग हो जाता है। हे राजन्! शिर और पाँवों में तेल न

मधुरं कषायलवणान्रसान्। वर्जयेत् स च वैरूप्यं दौर्गंध्यं नाप्नुयात्सदा ॥ २४९ ॥ पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत्। योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदवीमियात्। ॥ २५० ॥ ताम्बूलवर्जनाद्रोगी सद्यो मुक्तामयो भवेत्। पादाभ्यंगपरित्यागाच्छिरोभ्यंगस्य पार्थिव ॥ २५१ ॥ दीप्तिमान् दीप्तकरणो यत्तद्रव्यपतिर्भवेत्। दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः ॥ २५२ ॥ इन्द्रलोकमवाप्नोति स्थालीपाकविवर्जनात्। एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ २५३ ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान् नख-

लगानेसे ॥ २५१ ॥ कान्तिमान्, दीप्त इन्द्रियोंवाला, यक्षद्रव्यपति होता है और दूध तथा दही को छोड़नेवाला मनुष्य गोलोक को प्राप्त करता है ॥ २५२ ॥ पतीली आदिमे पके हुए अन्नको त्याग देनेसे इन्द्रलोक को प्राप्त करता है। और एक दिन बीचमें छोड़कर व्रत करनेवाला ब्रह्मलोकमे सुख पाता है ॥ २५३ ॥ हे राजन् जो वर्षाके चार महीनेतक नाखून

रोमाणि धारयेत्। कल्पस्थायी भवेद्राजन्स नरो नात्र संशयः ॥ २५४ ॥ नमो नारायणायेति जपि-
त्वाऽनन्तकं फलम्। विष्णुपादांबुजस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ २५५ ॥ लक्षप्रदक्षिणा यस्तु करोति
हरिमन्दिरे। हंसयुक्तविमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम् ॥ २५६ ॥ त्रिरात्रभोजनत्यागान्मोदते दिवि
देववत्। परान्नवर्जनाद्राजन्देवो वै मानुषो भवेत् ॥ २५७ ॥ प्राजापत्यं चरेद्यो वै चातुर्मास्यव्रतान्नरः।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिविधैर्नात्र संशयः ॥ २५८ ॥ तप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्राभ्यां यः क्षिपेच्छयनं हरेः। स

और बाल नहीं कटवाता वह मनुष्य कल्पपर्यन्त स्थित रहता है, यह बात ठीक ही है ॥ २५४ ॥ जो चातुर्मास्यमें 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रका जप करता है उसे अनन्त फल प्राप्त होता है। और विष्णुके चरणकमलोंके स्पर्शसे वह कृतकृत्य हो जाता है ॥ २५५ ॥ जो विष्णु के मन्दिरमे एक लाख परिक्रमा करता है। वह हंसयुक्त विमानमे बैठकर विष्णुलोक को जाता है ॥ २५६ ॥ तीन रात्रितक भोजन त्यागनेसे स्वर्गमे देवताओंके समान आनन्द पाता है। और हे राजन्! दूसरेका अन्न त्यागनेसे मनुष्य देवता होता है ॥ २५७ ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्यमें प्राजापत्य व्रत करता है वह कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५८ ॥ जो तप्तकृच्छ्, अतिकृच्छ्र व्रतके द्वारा चातुर्मास्य व्यतीत करता है। वह आवागमनसे मुक्त होकर परम धामको जाता है ॥ २५९ ॥

हे राजन्! जो चातुर्मास्यमे चान्द्रायण व्रत करता है। वह दिव्यस्वरूप होकर शिवलोकको जाता है ॥ २६० ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्यमे अन्नादिके भोजनको त्यागता है। वह हरिकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है। और फिर इस लोकमे जन्म नहीं लेता है ॥ २६१ ॥ जो चातुर्मास्यमें भिक्षा माँगकर भोजन करता है वह वेदका पारंगत विद्वान् होता है। हे राजन्! जो मनुष्य

याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ २५९ ॥ चान्द्रायणेन यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम्। दिव्यदेहो भवेत्सोऽथ शिवलोकं च गच्छति ॥ २६० ॥ चातुर्मास्ये नरो यो वै त्यजेदन्नादिभक्षणम्। स गच्छेद्धरिसायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते ॥ २६१ ॥ भिक्षाभोजी नरो यो हि स भवेद्वेदपारगः। पयोव्रतेन यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ॥ २६२ ॥ तस्य वंशसमुच्छेदः कदाचिन्नोपपद्यते। पञ्चगव्याशनः पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ २६३ ॥ दिनत्रयं जलत्यागान्न रोगैरभिभूयते। एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमायाति केशवः ॥ २६४ ॥ दुग्धाब्धिवीचिशयने भगवाननंतो यस्मिन्दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते

दूध पीकर ही चारों महीने व्यतीत करता है ॥ २६२ ॥ उसके वंशका कभी नाश नहीं होता। हे युधिष्ठिर! जो पञ्चगव्यका पान करता है वह चान्द्रायण व्रतके फलको प्राप्त करता है ॥ २६३ ॥ और तीन दिन निर्जल व्रत करनेसे कभी रोगी नहीं होता। हे युधिष्ठिर! इन व्रतोंके करनेसे भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं ॥ २६४ ॥ दूधके समुद्रकी तरंगमे जिस दिन

भगवान् सोते हैं और जिस दिन जागते हैं। उस दिन अनन्यमन होकर व्रत करनेवाले मनुष्यको गरुड़पर चढ़नेवाले भगवान् मोक्ष देते हैं ॥ २६५ ॥

च । तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति च गतिं गरुडासनोऽसौ ॥ २६५ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे विष्णोः शयन्येकादशीचातुर्मास्यमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १६ ॥

अथ श्रावणकृष्णैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच । आषाढशुक्लपक्षे तु यद्देवशयनव्रतम् । तन्मया श्रुतपूर्वं हि पुराणे बहुविस्त-
रम् ॥ १ ॥ श्रावणे कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । एतत्कथय गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते
॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् । नारदाय पुरा राजन्पृच्छते च
पितामहः ॥ ३ ॥ परं यदुक्तवांस्तात तदहं ते वदामि च । नारद उवाच । भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि

युधिष्ठिरजी बोले—आषाढ़के शुक्लपक्षमें जो देवशयनीका व्रत होता है। वह पहले मैंने पुराणोमे बहुत विस्तारसे सुना
है ॥ १ ॥ हे गोविन्द ! हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है। आप बतलाइये कि श्रावणके कृष्णपक्षमे किस नामकी एकादशी
होती है ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! सुनो, मैं उस पापको नाश करनेवाले व्रतको कहूँगा। पहले एकबार

नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजीने जो कहा था ॥ ३ ॥ हे वत्स ! मैं उसी व्रतको तुमसे कहता हूँ । नारदजी बोले—हे भगवन् ! हे कमलासन ! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ कि श्रावणके कृष्णपक्षमे किस नामकी एकादशी होती है । हे प्रभो ! उसका कौन देवता और क्या विधि तथा क्या पुण्य है सो सब कहिये ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! सुनो, संसारके हितके लिए तुमसे कहता हूँ । श्रावणके कृष्णपक्षमे कामिका नामकी एकादशी होती है ॥ ६ ॥ उसके सुननेसे ही

त्वत्तोऽहं कमलासन ॥ ४ ॥ श्रावणस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् । को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं कथय प्रभो ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच । शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया । श्रावणैकादशी कृष्णा कामिकेति च नामतः ॥ ६ ॥ तस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् । तस्यां तु पूजयेद्देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ७ ॥ श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं माधवं मधुसूदनम् । यजते ध्यायते यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८ ॥ न गङ्गायां न काश्यां वै नैमिषे न च पुष्करे । तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं

वाजपेय यज्ञका फल मिलता है । इस एकादशीमे शंख, चक्र, और गदाको धारण करनेवाले विष्णु भगवान्का पूजन करे ॥ ७ ॥ लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान्का नाम हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन भी है । जो उनको पूजता है तथा उनका ध्यान करता है उसके फलको सुनो ॥ ८ ॥ विष्णुका पूजन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल न गंगामें, न काशीमें,

न नैमिषारण्यमें और न पुष्करमे ही मिलता है ॥ ९ ॥ सूर्यग्रहणके समय केदारक्षेत्र और कुरुक्षेत्रमें भी वह फल नहीं मिलता
जो फल कृष्णकी पूजा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १० ॥ समुद्र और वनके सहित पृथिवीका दान करनेसे, तथा सिंहके
बृहस्पतिमे गोदावरीमें और व्यतीपातमें गण्डकी नदीमें स्नान करनेसे भी ॥ ११ ॥ वह फल नहीं मिलता जो कृष्णकी

विष्णुपूजनात् ॥ ९ ॥ केदारे च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे । न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूज-
नात् ॥ १० ॥ ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् । गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च गण्डके
॥ ११ ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् । कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौ स्मृतौ ॥१२॥
प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात् सोपस्करां नरः । तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः ॥ १३ ॥ श्रावणे
श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः । तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन

पूजा करनेसे प्राप्त होता है । कृष्णकी पूजा और कामिका एकादशीके व्रतका फल समान ही कहा गया है ॥ १२ ॥ सामग्रीसहित
दूधवाली गौ देनेसे मनुष्य उसी फलको प्राप्त करता है । जिसे कामिकाका व्रत करनेवाला प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ श्रावणमें
जो उत्तम पुरुष श्रीधर भगवान्‌की पूजा करता है । वह मानो सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, सर्प और नागोंकी पूजा कर
चुकता है ॥ १४ ॥ इसलिये पापोंसे डरनेवाले मनुष्योंको कामिका एकादशीके दिन सब उपायोंसे शक्तिके अनुसार हरि

भगवान्‌का पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ संसाररूपी समुद्रमे डूबे हुए और पापरूपी कीचड़में फँसे हुए मनुष्योंके उद्धारके लिए यह कामिकाका व्रत उत्तम है ॥ १६ ॥ हे नारद ! इससे अधिक पवित्र और पापोंको नष्ट करनेवाली कोई वस्तु दूसरी नहीं है, यह बात सत्य जानो । क्योंकि पहले भगवान्‌ने ऐसा स्वयं ही कहा है ॥ १७ ॥ अध्यात्मविद्या (ब्रह्मविद्या) को जाननेवाले

कामिकादिवसे हरिः । पूजनीयो यथाशक्ति मनुष्यैः पापभीरुभिः ॥ १५ ॥ संसारार्णवमग्ना ये पापपङ्क-समाकुलाः । तेषामुद्धरणार्थाय कामिकाव्रतमुत्तमम् ॥ १६ ॥ नातः परतरा काचित्पवित्रा पापहारिणी । एवं नारद जानीहि स्वयमाह पुरा हरिः ॥ १७ ॥ अध्यात्मविद्यानिरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः । ततो बहुतरं विद्धि कामिकाव्रतसेवनात् ॥ १८ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्कामिकाव्रतकृन्नरः । न पश्यति यमं रौद्रं नैव पश्यति दुर्गतिम् ॥ १९ ॥ न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात् । कामिकाया व्रतेनैव कैवल्यं योगिनो गताः । सर्वैः सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः ॥ २० ॥ तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः

मनुष्योंको जो फल मिलता है, उससे कहीं अधिक फल कामिका व्रत करनेसे जानो ॥ १८ ॥ कामिका व्रत करनेवाला जो मनुष्य रात्रिमें जागरण करता है वह भयानक यम और दुर्गति नहीं देखता ॥ १९ ॥ कामिका व्रतके प्रभावसे मनुष्य बुरी योनिमें जन्म नही लेता । कामिकाके व्रतसे ही योगीजन कैवल्य पदको प्राप्त हुये हैं । इसलिए सब प्रकारसे

नियमपूर्वक इसका व्रत करना चाहिए ॥ २० ॥ जो मनुष्य तुलसीके पत्तोंसे विष्णुका पूजन करता है। वह पापोंसे लिप्त
नहीं होता जैसे कमलके पत्ते जलसे लिप्त नहीं होते ॥ २१ ॥ एक भार स्वर्ण और चार भार चाँदीके दानसे जो फल
मिलता है वही फल भगवान्‌के ऊपर तुलसी चढ़ानेसे मिलता है ॥ २२ ॥ रत्न, मोती, वैदूर्यमणि, मूँगा आदिसे पूजन करनेपर

पूजयेद्धरिम् । न वै स लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवांभसा ॥ २१ ॥ सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गु-
णम् । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं तुलसीदले ॥ २२ ॥ रत्नमौक्तिकवैडूर्यप्रवालादिभिरर्चितः । न
तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीपूजनाद्यथा ॥ २३ ॥ तुलसीमञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः । आजन्मकृ-
तपापस्य तेन सम्मार्जिता लिपिः ॥ २४ ॥ या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी रोगाणा-
मभिवन्दिता निरसनी सिक्ताऽन्तकत्रासिनी । प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य सारोपिता न्यस्ता

भगवान् ऐसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे कि तुलसीदल चढ़ानेसे प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जिसने तुलसीकी मंजरीसे भगवान्‌का
पूजन किया है। उसने अपने जन्मभरके किये हुए पापोंकी राशिको मिटा दिया ॥ २४ ॥ जो तुलसी दर्शन करनेसे संपूर्ण
पापोंको नष्ट करती है, स्पर्श करनेसे शरीरको पवित्र करती है, नमस्कार करनेसे रोगोंको दूर करती है और (तुलसीमें) जल
देनेसे यमके भयको दूर करती है, उसका वृक्ष लगानेसे भगवान्‌के पास पहुँचा देती है और भगवान्‌के चरणोंमे चढ़ानेसे

मोक्षको देती है, ऐसी उस तुलसीको नमस्कार है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य एकादशीके दिन रात-दिन दीपक जलाता है। उसके पुण्यकी संख्याको चित्रगुप्त भी नहीं जान सकते ॥ २६ ॥ एकादशीके दिन भगवान्‌के आगे जिस व्यक्तिका दीपक जलता है। उसके पितर स्वर्गमें स्थित होकर अमृतसे तृप्त होते हैं ॥ २७ ॥ घी या तिलके तेलका दीपक जलानेसे मनुष्य सैकड़ों दीपकोंसे

तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥ २५ ॥ दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रौ हरेर्दिने। तस्य पुण्यस्य संख्यानं चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति न ॥ २६ ॥ कृष्णाग्रे दीपको यस्य ज्वलेदेकादशीदिने। पितरस्तस्य तृप्यंति अमृतेन दिवि स्थिताः ॥ २७ ॥ घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः। प्रयाति सूर्यलोकेऽसौ दीपकोटिशतैर्वृतः ॥ २८ ॥ अयं तवाग्रे कथितः कामिकामहिमा मया। अतो नरैः प्रकर्तव्या सर्वपातकहारिणी ॥ २९ ॥ ब्रह्महत्याऽपहरणी भ्रूणहत्याविनाशिनी। त्रिदिवस्थानदात्री च

घिरा हुआ सूर्यलोकमें जाता है ॥ २८ ॥ मैंने यह तुमसे कामिका एकादशीकी महिमा कही है। इसलिए मनुष्योंको सब पातकोंको हरनेवाली इस एकादशीका व्रत करना चाहिए ॥ २९ ॥ यह एकादशी ब्रह्महत्याको दूर करनेवाली, भ्रूणहत्या (गर्भ गिरानेके

पाप) को नाश करनेवाली तथा महापुण्यका फल और स्वर्ग देनेवाली है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसके माहात्म्यको सुनता है । वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको जाता है ॥ ३१ ॥

महापुण्यफलप्रदा ॥ ३० ॥ श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरः श्रद्धासमन्वितः । विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे श्रावणकृष्णैकादशीकामिकामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १७ ॥

अथ श्रावणशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । श्रावणस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् । कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् । यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥ २ ॥ द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मतीपुरे । राजा महीजिदाख्यातो

युधिष्ठिर बोले—हे मधुसूदन ! श्रावणके शुक्ल पक्षकी एकादशी का क्या नाम है । यह कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! मैं बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करनेवाली कथाको कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो । इसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ २ ॥ पहले द्वापर युगके आदिमें माहिष्मती नगरीमें महीजित् नामका

प्रसिद्ध राजा स्वयं प्रजाका पालन करता था ॥ ३ ॥ पुत्र न होनेसे राजाको अपना राज्य अच्छा नहीं लगता था। क्योंकि पुत्रहीनको न इस लोकमें सुख होता और न परलोकमें ॥ ४ ॥ उस राजाको पुत्रप्राप्तिके लिए उपाय करते बहुतसा समय बीत गया। परन्तु मनुष्योंको सब सुख देनेवाला पुत्र राजाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५ ॥ राजा अपनी अधिक अवस्था

राज्यं पालयति स्वयम् ॥ ३ ॥ पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम्। अपुत्रस्य सुखं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ ४ ॥ यततोऽस्य सुतप्राप्तौ कालो बहुतरो गतः। न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसं राजा चिन्तापरोऽभवत्। सदोगतः प्रजामध्ये इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ इह जन्मनि भो लोका न मया पातकं कृतम्। अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मया न हि ॥ ७ ॥ ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित्। न्यासापहारो न कृतः परस्य बहुपापदः ॥ ८ ॥ सुतवत्पालिता लोका धर्मेण विजिता मही। दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमे-

देखकर चिन्ता करने लगा। और प्रजाके बीच सभामें आकर यह वचन बोलने लगा ॥ ६ ॥ हे प्रजागण! मैंने इस जन्ममे तो कोई पाप किया नहीं है और न अन्यायोपार्जित धन ही खजानेमे जमा किया है ॥ ७ ॥ न कभी मैंने ब्राह्मण तथा देवताका धन लिया है और न बहुतसे पापोंको देनेवाला धरोहर-हरणरूप कर्म ही किया ॥ ८ ॥

मैंने पुत्रके समान प्रजाका पालन किया है, धर्मसे ही पृथिवीको जीता है और भाई-बन्धुओंके समान भी दुष्टोंको दण्ड दिया है, बड़े-बड़े द्वेष करनेवाले शिष्टजनोंका भी मैंने सत्कार किया है ॥ ९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इस प्रकार धर्मके मार्गमे चलते हुए भी किस कारणसे मेरे घरमें पुत्रका जन्म नहीं हुआ इसपर आप विचार कीजिए ॥ १० ॥ राजाके ऐसे वचन सुनकर वे

ष्वपि । शिष्टाः सुपूजिता लोका द्वेष्याश्चापि महाजनाः ॥ ९ ॥ इत्येवं व्रजतो मार्गे धर्मयुक्ते द्विजोत्तमा । कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विचार्यताम् ॥ १० ॥ इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजाः सपुरोहिताः । मंत्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् ॥ ११ ॥ इतस्ततश्च पश्यन्तश्चाश्रमानृषिसेवितान् । नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ तप्यमानं तपो घोरं चिदानन्दं निरामयम् । निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम् ॥ १३ ॥ लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् । दीर्घा-

ब्राह्मण प्रजा और पुरोहितके सहित राजाके हितकी बात विचारकर घने वनको चले गये ॥ ११ ॥ राजाके हितकी इच्छासे ऋषिसेवित-आश्रमोंमें इधर-उधर घूमते हुए उन्होंने उन श्रेष्ठ लोमश मुनिको देखा ॥ १२ ॥ जो तप कर रहे हैं, चिदानन्द और निर्विकार हैं, निराहार, जितेन्द्रिय, क्रोधको जीतनेवाले और सनातन हैं ॥ १३ ॥ धर्मके तत्त्वको

ज्ञाननेवाले, सब शास्त्रोंमें कुशल, दीर्घायु, महात्मा और अनेक ब्रह्माके समान हैं ॥ १४ ॥ एक कल्पके बीतनेपर उनका एक रोम गिर जाता है। इसलिये उनका नाम लोमश है, वे तीनों कालोंको जाननेवाले हैं ॥ १५ ॥ उनको देखकर सब प्रसन्न होकर उनके पास गये, न्याय तथा योग्यतापूर्वक उन सबने ऋपिको नमस्कार किया ॥ १६ ॥

युषं महात्मानमनेकब्रह्मसम्मितम् ॥ १४ ॥ कल्पे गते यस्य एकमेकं लोम विशीर्यते । अतो लोमश-
नामानं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे ह्याजग्मुस्तस्य सन्निधिम् । यथान्यायं
यथार्हं ते नमश्चक्रुर्यथोदितम् ॥ १६ ॥ विनयाऽवनताः सर्वे ऊचुश्चैव परस्परम् । अस्मद्भाग्यवशादेव
प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः ॥ १७ ॥ तांस्तथा प्रणतान् दृष्ट्वा ह्युवाच मुनिसत्तमः । लोमश उवाच । किम-
र्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं सकारणम् ॥ १८ ॥ मद्दर्शनाह्लादगिरः स्तुवन्त इव मां किमु । असंशयं
करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत् ॥ १९ ॥ परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः । जना ऊचुः ।

और विनयसे नम्र होकर सब आपसमें कहने लगे कि हम सबोंके भाग्यसे ही इन श्रेष्ठ मुनिका दर्शन हुआ है ॥ १७ ॥ उन सबको इस प्रकार प्रणाम करते देखकर वे श्रेष्ठ मुनि कहने लगे। लोमश ऋपि बोले—तुम सब यहाँ किसलिए आये हो, इसका कारण बतलाओ ॥ १८ ॥ मेरे दर्शनसे गद्गद वाणीवाले तुम सब क्यों मेरी स्तुति-सी कर रहे हो, जो तुम्हारे हितकी बात होगी उसे मैं अवश्य करूँगा ॥ १९ ॥ क्योंकि मुझ जैसोंका जन्म परोपकारके लिए ही

है, इसमे कुछ संदेह नहीं है। प्रजागण बोले—भगवन्! सुनिये, हम अपने आनेका कारण कहते हैं ॥ २० ॥ हम अपने संदेहको दूर करनेके लिए आपके पास आये हैं। क्योंकि ब्रह्माजीके बाद आपसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ॥ २१ ॥ इसलिए कार्यवश हम आपके पास आये हैं। महीजित् नामका एक राजा इस समय पुत्रहीन है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! हम

श्रूयतामभिधास्यामो वयमागमकारणम् ॥ २० ॥ संशयच्छेदनार्थाय तव सन्निधिमागताः। पद्मयोनेः परतस्त्वत्तः श्रेष्ठो न विद्यते ॥ २१ ॥ अतः कार्यवशात्प्राप्ताः समीपं भवतो वयम्। महीजिन्नाम राजाऽसौ पुत्रहीनोऽस्ति सांप्रतम् ॥ २२ ॥ वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन्पुत्रवत्तेन पालिताः। तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिनः ॥ २३ ॥ तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम्। तस्य भाग्यवशाद्दृष्टस्त्वमस्माभिर्द्विजोत्तम ॥ २४ ॥ महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम्। उपदेशं वद मुने राज्ञः

उसकी प्रजा हैं और उसने हमें पुत्रके समान पाला है। उसको पुत्ररहित देखकर हम उसके दुःखसे दुखी हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम! हम नैष्ठिकी बुद्धि करके यहाँ तप करनेको आये हैं और उस राजाके भाग्यसे ही हमें आपके दर्शन हुए हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि बड़ोंके दर्शनसे ही मनुष्योंकी कार्यसिद्धि होती है। हे मुने! ऐसा उपदेश कीजिए जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति

होवे ॥ २५ ॥ इस प्रकार-प्रजाकी बातें सुनकर मुनि क्षणभरके लिए ध्यानावस्थित हो गये और फिर राजाके पूर्व जन्मकी अवस्था जानकर बोले ॥ २६ ॥ लोमश बोले—यह राजा पूर्वजन्ममें धनसे हीन और क्रूर कर्म करनेवाला वैश्य था और एक गाँवसे दूसरे गाँवमे जाकर निरन्तर व्यापारमें लगा रहता था ॥ २७ ॥ ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन जब

पुत्रो यथा भवेत् ॥ २५ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः । प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम् ॥ २६ ॥ लोमश उवाच । पूर्वजन्मनि वैश्योऽयं धनहीनो नृशंसकृत् । वाणिज्यकर्मनिरतो ग्रामाद्ग्रामान्तरं भृशम् ॥ २७ ॥ ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादशीदिवसे तथा । मध्याह्ने द्युमणौ प्राप्ते ग्रामसीम्नि जलाशयम् ॥ २८ ॥ कूपिकां सजलां दृष्ट्वा जलपाने मनो दधौ । सद्यःसूता सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ॥ २९ ॥ तृषातुरा निदाघार्ता तस्याम्बु पपौ तु सा । पिबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं स्वयं पपौ ॥ ३० ॥ कर्मणस्तस्य पापेन स पुत्ररहितो नृपः । पूर्वजन्मकृतात्पु-

दोपहरके सूर्य तप रहे थे उसी समय ग्रामकी सीमामें एक जलाशय अर्थात् ॥ २८ ॥ सुन्दर जलवाले तालावको देखकर वैश्यका मन जल पीनेको हुआ । उसी समय वहाँ एक तुरतकी ब्याई हुई गौ बछड़ेके सहित आई ॥ २९ ॥ और प्याससे घबड़ाई हुई, धूपसे व्याकुल वह गौ जलाशयमे पानी पीने लगी । तभी वह वैश्य उस गौको हटाकर स्वयं जल पीने लगा ॥ ३० ॥

उस गौके हटानेके पापसे वह राजा पुत्ररहित हुआ और पूर्वजन्ममें किए हुए पुण्यसे उसने अकण्टक राज्य पाया ॥ ३१ ॥
प्रजाजन बोले—हे मुने ! पुण्यसे पाप नष्ट होता है ऐसा पुराणोंमें सुना जाता है। अतः पुण्यका उपदेश कीजिए जिससे पाप
नष्ट हो जायँ ॥ ३२ ॥ और आपकी कृपासे उसके पुत्र हो जाय। यह सुनकर लोमश ऋषि बोले—श्रावणके शुक्लपक्षकी

[illegible]ण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ३१ ॥ जना ऊचुः। पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने। पुण्यो-
पदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥ ३२ ॥ यथा भवत्प्रसादेन पुत्रोऽस्य भविता तथा। लोमश
उवाच। श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता ॥ ३३ ॥ एकादशीतिथिश्चास्ति कुरुध्वं तद्व्रतं
जनाः। यथाविधि यथान्यायं यथोक्तं जागरान्वितम् ॥ ३४ ॥ तस्याः पुण्यं सुविमलं ददतां नृपतये
जनाः। एवं कृते सुनिश्चितं राज्ञः पुत्रो भविष्यति ॥ ३५ ॥ श्रुत्वैतल्लोमशवचस्तं प्रणम्य द्विजोत्त-
मम्। प्रजग्मुः स्वगृहान्सर्वे हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ॥ ३६ ॥ श्रावणं तु समासाद्य स्मृत्वा लोमशभाषि-

एकादशी पुत्रदा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३३ ॥ हे मनुष्यो ! तुम कहे गए प्रकारसे विधिपूर्वक जागरणसहित उसका व्रत करो
॥ ३४ ॥ और हे प्रजाजन ! उस एकादशीका निर्मल पुण्य राजाको दे दो। ऐसा करनेसे राजाके अवश्य पुत्र
होवेगा ॥ ३५ ॥ ऋषिके ऐसे वचनोंको सुनकर और द्विजश्रेष्ठ लोमशजीको नमस्कार करके प्रसन्नतासे खिले हुए लोचनवाले

सब मनुष्य अपने घर चले गये ॥ ३६ ॥ फिर श्रावणमासके आनेपर लोमश ऋषिके वचनोंको स्मरण करके सबने श्रद्धाके सहित राजाके साथ व्रत किया ॥ ३७ ॥ और द्वादशीके दिन सब मनुष्योंने अपना पुण्य राजाको दे दिया । तब पुण्यके देते ही रानीने सुन्दर गर्भको धारण किया ॥ ३८ ॥ और प्रसवकालके आनेपर रानीने तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया । हे

तम् । राज्ञा सह व्रतं चक्रुः सर्वे श्रद्धासमन्विताः ॥ ३७ ॥ द्वादशीदिवसे पुण्यं ददुर्नृपतये जनाः । दत्ते पुण्ये यथा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥ ३८ ॥ प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् । एवमेषा नृपश्रेष्ठ पुत्रदा नाम विश्रुता ॥ ३९ ॥ कर्तव्या सुखमिच्छद्भिरिह लोके परत्र च ॥ ४० ॥ श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते । इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रावणशुक्लैकादशीपुत्रदामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १८ ॥

राजन् ! इसीसे यह एकादशी पुत्रदा नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३९ ॥ इस लोक और परलोकमें सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको इसका व्रत करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसका माहात्म्य सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है और इस लोकमें पुत्रके सुखको प्राप्त करके परलोकमे स्वर्गकी गतिको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर बोले— भाद्रपदके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है। हे जनार्दन! कहिये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन्! तुम सावधान होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक कहूँगा। अजा नामसे प्रसिद्ध यह एकादशी संपूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली है ॥ २ ॥ जो मनुष्य हृषीकेश भगवान्‌की पूजा करके उसके व्रतको करता है। उसके पाप नष्ट हो

अथ भाद्रपदकृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच। भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच। शृणुष्वैकमना राजन्कथयिष्यामि विस्तरात्। अजानाम्नीति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ २ ॥ पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतं तस्याः करोति यः। पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि ॥ ३ ॥ नातः परतरा राजँल्लोकद्वयहितावहा। सत्यमुक्तं मया ह्येतन्नासत्यं भाषितं मम ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा। चक्रवर्ती सत्यसन्धः

जाते हैं, व्रतका विधानमात्र सुननेसे भी पापोंका नाश हो जाता है ॥ ३ ॥ हे राजन्! दोनों लोकोंमें इससे अधिक हितकारी कोई और नहीं है। यह मैंने सत्य कहा है, झूठ नहीं ॥ ४ ॥ पहले हरिश्चन्द्र नामका प्रसिद्ध राजा हो गया है। जो चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञ

और संपूर्ण पृथिवीका स्वामी था ॥ ५ ॥ वह किसी कर्मके योगसे राज्यसे भ्रष्ट हो गया और रानी तथा पुत्रको बेचकर वह स्वयं भी बिक गया ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! वह पुण्यात्मा राजा चाण्डाल (भंगी) का दास हो गया और सत्यके भरोसे मृतकके वस्त्रोंका ग्रहण करनेवाला होते हुए भी ॥ ७ ॥ वह श्रेष्ठ राजा सत्यसे चलायमान नहीं हुआ । इस प्रकार बहुतसे वर्ष बीत

समस्ताया भुवः पतिः ॥ ५ ॥ कस्यापि कर्मणो योगाद्राज्यभ्रष्टो बभूव सः । विक्रीय वनितां पुत्रं स चकारात्मविक्रयम् ॥ ६ ॥ पुल्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् । सत्यमालंब्य राजेन्द्र मृतचैलापहारकः ॥ ७ ॥ सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा । एवं गतस्य नृपतेर्बहवो वत्सरा गताः ॥ ८ ॥ ततश्चिंतापरो राजा बभूवात्यन्तदुःखितः । किं करोमि क गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत् ॥ ९ ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्य वृजिनार्णवे । आजगाम मुनिः कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम् ॥ १० ॥ परोपकरणार्थाय निर्मितो ब्रह्मणा द्विजः । स तं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः ॥११॥

गये ॥ ८ ॥ तब चिन्तासे युक्त वह राजा अत्यन्त दुखी हुआ । कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, और कैसे मेरा उद्धार होवे ॥ ९ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए और पापरूपी समुद्रमें डूबे हुए उस राजाको दुखी जानकर उसके पास कोई मुनि आये ॥ १० ॥ क्योंकि ब्रह्माजीने परोपकारके लिए ही ब्राह्मणको बनाया है । उस नृपश्रेष्ठने उस ब्राह्मण

मुनिको देखकर नमस्कार किया ॥ ११ ॥ और उन गौतममुनिके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तथा दुःखयुक्त अपना वृत्तान्त कहने लगा ॥ १२ ॥ राजाके वचनोंको सुनकर गौतमजी आश्चर्ययुक्त हो गये और मुनिने राजाके लिए इस व्रतका उपदेश किया ॥ १३ ॥ हे राजन्! भाद्रपदमासके कृष्णपक्षमें अजा नामकी शुभ एकादशी होती है

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः। कथयामास वृत्तांतमात्मनो दुःखसंयुतम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि गौतमो विस्मयान्वितः। उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य मुनिर्ददौ ॥ १३ ॥ मासि भाद्रपदे राजन् कृष्णपक्षे तु शोभना। एकादशी समायाता अजानाम्न्यतिपुण्यदा ॥ १४ ॥ तस्याः कुरु व्रतं राजन् पापनाशो भविष्यति। तव भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्नि समागता ॥ १५ ॥ उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु। एवं तस्या व्रते चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ १६ ॥ तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम। इत्येवं कथयित्वा तु मुनिरन्तरधीयत ॥ १७ ॥ मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार

जो अधिक पुण्यको देनेवाली है ॥ १४ ॥ हे राजन्! तुम उसका व्रत करो, तुम्हारा पाप नष्ट हो जायगा, तुम्हारे भाग्यसे वह एकादशी सातवें दिन ही आ रही है ॥ १५ ॥ उपवासमें तत्पर होकर रात्रिमें जागरण करो। इस प्रकार उस एकादशीका व्रत करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम! तेरे पुण्यके प्रभावसे ही मैं यहाँ आया हूँ। यह

कहकर मुनि अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥ राजाने मुनिके वाक्यको सुनकर उस उत्तम व्रतको किया। जिसके प्रभावसे क्षणमात्रमें ही राजाके पापोंका अन्त हो गया ॥ १८ ॥ हे राजसिंह ! इस व्रतके प्रभावको सुनो। जो दुःख बहुत वर्षों तक भोगने योग्य था उसका क्षणभरमे ही नाश हो गया ॥ १९ ॥ इस व्रतके प्रभावसे राजा दुःखसागरसे पार हो गया और राजाका

व्रतमुत्तमम् । कृते तस्मिन् व्रते राज्ञः पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥ १८ ॥ श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च । यद्दुःखं बहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयो भवेत् ॥ १९ ॥ निस्तीर्णदुःखो राजासीद् व्रतस्यास्य प्रभावतः । पत्न्या सह समायोगं पुत्रजीवनमाप सः ॥ २० ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षमभूद्दिवः । एकादश्याः प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ २१ ॥ स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपुरः सपरिच्छदः । ईदृग्विधं

पत्नीके साथ मिलन हुआ तथा उसने जीवित पुत्रको प्राप्त किया ॥ २० ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी आदि बाजे बजाये, तथा स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा हुई और राजाने एकादशीके प्रभावसे अकण्टक राज्यको प्राप्त किया ॥ २१ ॥ अन्तमें नगरके लोगों तथा कुटुम्बके सहित राजा हरिश्चन्द्रने स्वर्गको प्राप्त किया। हे राजन् ! जो उत्तम द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) इस प्रकार

व्रतको करते हैं ॥ २२ ॥ वे सब पापोंसे छूटकर निश्चय ही स्वर्गको जाते हैं। हे राजन् ! इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

व्रतं राजन्ये कुर्वन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते ध्रुवम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥ २३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणे भाद्रपदकृष्णे अजानामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १९ ॥

अथ भाद्रपदशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । नभस्यसितपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् । को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं च वदस्व नः ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् । वामनैकादशीं राजन् सर्वपापहरां पराम् ॥ २ ॥ इमामेव जयन्त्याख्यां प्राहुरेकादशीं नृप । तस्याः श्रवणमा-

युधिष्ठिर बोले—हे प्रभो ! भाद्रपदके शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है और उसका कौन देवता, क्या विधि तथा क्या पुण्य है वह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! यह एकादशी बड़े पुण्यवाली तथा स्वर्ग

और मोक्षको देनेवाली है। वामना इसका नाम है और यह सब पापोंको दूर करनेवाली है॥ २॥ हे नृप! इसी एकादशीको जयन्ती भी कहते हैं। इसके केवल सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ३॥ मनुष्योंके लिए इससे अधिक फल वाजपेय यज्ञका भो नहीं कहा है। जयन्तीका उत्तम व्रत पापियोंके पापोको नष्ट करनेवाला है॥ ४॥ हे राजन्! इसके अलावा कोई दूसरी मोक्षको देनेवाली नही है। इसलिए हे राजन्! मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्य को इसका व्रत अवश्य

त्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ३॥ वाजपेयफलं प्रोक्तं नातः परतरं नृणाम्। पापिनां पापशमनं जयन्तीव्रतमुत्तमम्॥ ४॥ नातः परतरा राजन्न वै मोक्षप्रदायिनी। एतस्मात् कारणाद्राजन् कर्तव्या गतिमिच्छता॥ ५॥ वैष्णवैर्मम भक्तैस्तु मनुजैर्मत्परायणैः। नभस्ये वामनो यैस्तु पूजितस्तैर्जगत्त्रयम्॥ ६॥ पूजितं नात्र संदेहस्ते यान्ति हरिसन्निधिम्। वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः॥ ७॥ नभस्यसितपक्षे तु जयन्त्येकादशीदिनम्। तेनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवाः सनातनाः॥ ८॥ एत-

करना चाहिये॥ ५॥ वैष्णव और मेरे भक्त जिन मनुष्योंने भाद्रपद महीनेमे वामनजीका पूजन किया है, उन्होंने मानो तीनों लोकोंकी ही पूजा की है॥ ६॥ पूजा करनेवाले मनुष्य भगवान्के समीप वास करते हैं, इसमे कोई संदेह नहीं है। जिन्होंने कमलनयन भगवान् वामनजीकी कमलोंसे पूजा की है॥ ७॥ तथा भाद्रपदके शुक्लपक्षमे जयन्ती एकादशीका व्रत किया है।

उसने संपूर्ण जगत्‌की तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों सनातन देवताओंकी भी पूजा की है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इसलिए हरिवासर अवश्य करना चाहिए । इसके करनेपर तीनों लोकोंमें और कुछ करनेके लिये शेष नहीं रहता ॥ ९ ॥ इस एकादशीमें सोये हुए भगवान् करवट लेते हैं । इसलिए सब मनुष्य इसको परिवर्तिनी एकादशी कहते हैं ॥ १० ॥ युधिष्ठिर बोले—हे

स्मात् कारणाद्राजन् कर्तव्यो हरिवासरः । अस्मिन् कृते न कर्त्तव्यं किंचिदस्ति जगत्त्रये ॥ ९ ॥ अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यङ्गपरिवर्त्तनम् । तस्मादेनां जनाः सर्वे वदंति परिवर्तिनीम् ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच । संशयोऽस्ति महान् मह्यं श्रूयतां च जनार्दन । कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं यास्यङ्गवर्तनम् ॥ ११ ॥ किमर्थं देवदेवेश बलिर्बद्धस्त्वयाऽसुरः । सन्तुष्टा पृथिवीदेवाः किमकुर्वञ्जनार्दन ॥ १२ ॥ को विधिः किं व्रतं चैव चातुर्मास्यमुपासताम् । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ किं कुर्वंति जनाः प्रभो ॥ १३ ॥ एतद्विस्त-

जनार्दन ! मुझे बड़ा भारी संदेह है उसे आप सुनिये । हे देवताओं के स्वामी ! तुम कैसे शयन करते हो और किस प्रकार करवट लेते हो ॥ ११ ॥ और हे देवदेवेश ! तुमने बलि नामके दैत्यको क्यों बाँधा । हे जनार्दन ! संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंने क्या किया ॥ १२ ॥ चातुर्मास्यमें व्रत करनेवाले मनुष्योंके लिये कौन व्रत और क्या विधि है । हे जगत्‌के स्वामी ! हे प्रभो ! तुम्हारे शयन करने पर मनुष्य क्या करते हैं ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! यह विस्तार से कहकर मेरा संशय दूर करो ।

श्रीकृष्ण बोले—हे राजशार्दूल ! पापोंको हरने वाली सुन्दर कथाको सुनो ॥ १४ ॥ हे नृप ! पहले त्रेतायुगमें वलि नामका एक दैत्य था। मुझमें श्रद्धा रखता हुआ वह मेरा भक्त बलि ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारके जप तथा सूक्तोंसे नित्य मेरी पूजा करता था। तथा नित्य ब्राह्मणोंका पूजन और यज्ञादि क्रियाओंको करता था ॥ १६ ॥ परन्तु उसने इन्द्रसे द्वेष करके

रतो ब्रूहि संशयं हर मे प्रभो। श्रीकृष्ण उवाच। श्रूयतां राजशार्दूल कथां पापहरां पराम् ॥ १४ ॥ बलिर्वै दानवः पूर्वमासीत् त्रेतायुगे नृप। अपूजयच्च मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ॥ १५ ॥ जपैस्तु विविधैः सूक्तैर्यजते मां स नित्यशः। द्विजानां पूजको नित्यं यज्ञकर्मकृताशयः ॥ १६ ॥ परं त्विन्द्र-कृतद्वेषी देवलोकमजीजयत्। मद्दत्तमिन्द्रलोकं वै जितं तेन महात्मना ॥ १७ ॥ विलोक्य च ततः सर्वे देवाः संहत्य मंत्रयन्। सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं देवं विज्ञापितुं प्रभुम् ॥ १८ ॥ ततश्च देवऋषिभिः साक-मिन्द्रो गतः प्रभुम्। शिरसा ह्यवनिं गत्वा स्तुत इन्द्रेण सूक्तिभिः ॥ १९ ॥ गुरुणा दैवतैः सार्द्धं

देवलोक को जीत लिया था। जब उस दानव बलिने मेरा दिया हुआ इन्द्रलोक जीत लिया ॥ १७ ॥ तब यह देखकर सब देवता इकट्ठे होकर सलाह करने लगे कि हम सब मिलकर जगत्के प्रभु भगवान्के समीप चलें और उनसे सब हाल कह सुनावें ॥ १८ ॥ इसके वाद इन्द्र देवता और ऋषियोंके साथ मेरे पास आए। इन्द्रने पृथिवीपर मस्तक

लगाकर सूक्तोंसे मेरी स्तुति की ॥ १९ ॥ और देवताओंके सहित बृहस्पतिने बहुत प्रकारसे मेरी पूजा की। फिर मैंने वामन रूप धारण करके पाँचवाँ अवतार लिया ॥ २० ॥ और फिर सब ब्रह्माण्डमें फैलने वाले अतिप्रचण्ड रूपसे मैंने उस सत्य प्रतिज्ञा वाले दानवको बालक स्वरूपसे ही जीत लिया ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे देवताओंके स्वामी ! आपने वामन

बहुधा पूजितो ह्यहम् । ततो वामनरूपेण ह्यवतीर्णश्च पञ्चमे ॥ २० ॥ अत्युग्ररूपेण तदा सर्वब्रह्माण्डरूपिणा । बालकेन जितः सो वै सत्यमालम्ब्य तस्थिवान् ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर उवाच । त्वया वामनरूपेण सोऽसुरश्च जितः कथम् । एतत्कथय देवेश मह्यं भक्ताय विस्तरात् ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । मया बालेन स बलिः प्रार्थितो बटुरूपिणा । पदत्रयमितां भूमिं देहि मे भुवनत्रयम् ॥ २३ ॥ दत्तं भवति ते राजन्नात्र कार्या विचारणा । इत्युक्तश्च मया राजा दत्तवांस्त्रिपदां भुवम् ॥ २४ ॥ संकल्पमात्राद्ववृधे देहस्त्रिविक्रमः परम् । भूर्लोके तु कृतौ पादौ भुवर्लोके तु जानुनी ॥ २५ ॥ स्वर्लोके

रूपसे उस दानवको कैसे जीत लिया। यह बात मुझ अपने भक्तसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण बोले—मैंने ब्रह्मचारीका रूप धारण करके बलिसे प्रार्थना की कि तुम मुझे केवल तीन पग भूमि दे दो, वही मुझे त्रिभुवनके समान है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे ऐसा कहनेपर राजाने तीन पग भूमि

दानमे दे दी ॥ २४ ॥ संकल्प करते ही मेरा त्रिविक्रम शरीर वहुत बढ़ गया। मैंने भूलोक (पृथिवी) पर अपने चरण किये और भुवःलोकमें जंघा ॥ २५ ॥ स्वर्गलोकमें कमर, मह-लोकमे उदर, जनलोकमे हृदय और तपलोकमें कण्ठको रक्खा ॥ २६ ॥ और सत्यलोकमे मुख स्थापित करके उसके ऊपर शिर रख लिया। उस समय चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह और योगोके सहित नक्षत्रगण ॥ २७ ॥ तथा इन्द्रके सहित देवता, और शेष आदि नाग ये सब, वेदसे उत्पन्न अनेक प्रकारके

तु कटिं न्यस्य महर्लोके तथोदरम्। जनलोके तु हृदयं तपोलोके च कण्ठकम् ॥ २६ ॥ सत्यलोके मुखं स्थाप्य उत्तमांगं तथोर्ध्वतः ॥ चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव भगणो योगसंयुतः ॥ २७ ॥ सेन्द्राश्चैव तथा देवा नागाः शेषादयः परे। स्तुवन्तो वेदसम्भूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तु माम् ॥ २८ ॥ करे गृहीत्वा तु बलिमब्रुवं वचनं तदा। एकेन पूरिता पृथ्वी द्वितीयेन त्रिविष्टपम् ॥ २९ ॥ तृतीयस्य तु पादस्य स्थानं देहि ममानघ। एवमुक्ते मया सोऽपि मस्तकं दत्तवान् बलिः ॥ ३० ॥ ततो व मस्तके ह्येकं पदं दत्तं

सूक्तोसे मेरी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ इसके बाद मैंने बलिका हाथ पकड़कर कहा कि मैंने एक पगसे तो पृथिवीको नांप लिया और दूसरेसे स्वर्गको नाप लिया ॥ २९ ॥ हे पापरहित! अब तीसरे पगको रखनेके लिए स्थान दो। मेरे ऐसा कहनेपर बलिने अपना मस्तक दे दिया ॥ ३० ॥ और मैंने उसके मस्तकपर अपना तीसरा चरण रख दिया। उस समय हे

राजन् ! मेरी पूजा करने वाला वह दानव पातालमे भेज दिया गया ॥ ३१ ॥ फिर जब बलिको विनयसे नम्र देखा तो मैं [जनार्दन] उस पर प्रसन्न हुआ और मैंने कहा कि हे राजा बलि ! हे मान देनेवाले ! मैं निरन्तर तेरे पास रहूँगा ॥ ३२ ॥ भाद्रपदके शुक्ल पक्षमें होनेवाली परिवर्तिनी एकादशीको ॥ ३३ ॥ पातालमें मेरी एक मूर्ति बलिका आश्रय लेकर रहती

मया तदा । क्षिप्तो रसातले राजन् दानवो मम पूजकः ॥ ३१ ॥ विनयावनतं दृष्ट्वा प्रसन्नोऽस्मि जना-
र्दनः । बले वसामि सततं सन्निधौ तव मानद ॥ ३२ ॥ इत्यवोचं महाभागं बलिं वैरोचनं तदा ।
नभस्यशुक्लपक्षे तु परिवर्तिनि वासरे ॥ ३३ ॥ ममैका तत्र मूर्तिश्च बलिमाश्रित्य तिष्ठति । द्वितीया
शेषपृष्ठे वै क्षीराब्धौ सागरोत्तमे ॥ ३४ ॥ सुप्यते च हृषीकेशो यावच्चायाति कार्त्तिकी । तावद्भवति
तत्पुण्यं सर्वपुण्योत्तमोत्तमम् ॥ ३५ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्या च प्रयत्नतः । एकादशी महापुण्या
पवित्रा पापहारिणी ॥ ३६ ॥ अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यङ्गपरिवर्त्तनम् । एतस्यां पूजयेद्देवं त्रैलोक्यस्य

है। दूसरी समुद्रोंमें उत्तम क्षीरसागरमें शेषनागकी पीठपर स्थित रहती है ॥ ३४ ॥ जबतक कार्त्तिक आता है तबतक हृषीकेश भगवान् शयन करते हैं। उनके शयनसमयमें जो पुण्य (सुकृत) होता है वह सब पुण्यदाताओंमें उत्तम होता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसलिए महापुण्यवाली, पवित्र और पापोंको दूर करने वाली इस एकादशीका व्रत अवश्य

करना चाहिए ॥ ३६ ॥ इस एकादशीके दिन सोये हुए भगवान् करवट लेते हैं। इस एकादशीमे तीनों लोकोंके पितामह भगवान्का पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ इसमे दहीका दान और चावलों के साथ चाँदीका दान करने। तथा रात्रिमें जागरण करनेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! जो इस प्रकार एकादशीका कल्याणकारी व्रत

पितामहम् ॥ ३७ ॥ दधिदानं प्रकर्तव्यं रौप्यतण्डुलसंयुतम्। रात्रौ जागरणं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः ॥ ३८ ॥ एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्यां व्रतं शुभम्। सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ३९ ॥ स देवलोकं संप्राप्य भ्राजते चन्द्रमा यथा। शृणुयाच्चैव यो मर्त्यः कथां पापहरां पराम्। अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ४० ॥

करता है। उसके लिए यह सब पापोंको हरनेवाला और भुक्ति तथा मुक्तिको देनेवाला है ॥ ३९ ॥ तथा व्रत करनेवाला पुरुष देवलोक जाकर चन्द्रमा के समान शोभित होता है। जो मनुष्य इस पापोंको हरनेवाली सुन्दर कथाको सुनता है वह हजार अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे भाद्रपदशुक्लपरिवर्तिन्यैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २० ॥

अथ आश्विनकृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन । आश्विने कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । आश्विनस्यासिते पक्षे इंदिरा नाम नामतः । तस्या व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति ॥ २ ॥ अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनीम् । शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् । पुरा कृतयुगे राजा बभूव रिपुसूदनः ॥ ४ ॥ इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरीं माहिष्मतीं प्रति । स राज्यं पालयामास धर्मेण यशसाऽन्वितः ॥ ५ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः । माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे मधुसूदन ! आश्विन कृष्ण पक्षमें किस नामकी एकादशी होती है उसे आप कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले— आश्विन कृष्ण पक्षमें इन्दिरा नामकी एकादशी होती है। उसके व्रतके प्रभावसे बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ हे राजन् ! यह नरकमे गये हुए पितरोंको सुन्दर गति देती है। अतः पापको हरने वाली इसकी सुन्दर कथाको सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ जिसके सुननेसे ही वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। पहले सत्ययुगमें शत्रुओंको दमन करने वाला एक राजा हुआ ॥ ४ ॥ जो इन्द्रसेन नामसे प्रसिद्ध और माहिष्मती नगरीका राजा था।

उसने यशसे युक्त धर्मके सहित प्रजाका पालन किया ॥ ५ ॥ माहिष्मतीका स्वामी वह राजा पुत्र, पौत्र तथा धनधान्यसे युक्त और विष्णुका भक्त था ॥ ६ ॥ वह राजा मुक्तिको देनेवाले भगवान् गोविन्दके नामोंको जपता हुआ। और विधिपूर्वक अध्यात्मविद्याका विचार करता हुआ समयको व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक दिन राजा सुखपूर्वक सभामें बैठे थे। उसी समय परम बुद्धिमान नारद मुनि आकाशसे उतरकर राजाके समीप आये ॥ ८ ॥ तब नारदमुनिको आये

जपन् गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः। कालं नयति विधिवदध्यात्मस्य विचिन्तकः ॥ ७ ॥ एकस्मिन्दिवसे राज्ञि सुखासीने सदोगते। अवतीर्यागमद्धीमानम्बरान्नारदो मुनिः ॥ ८ ॥ तमागतमधिप्रेक्ष्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पूजयित्वार्घविधिना चासने संन्यवेशयत् ॥ ९ ॥ सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्। कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वङ्गेषु वर्तते ॥ १० ॥ धर्मे मतिर्वर्तते ते विष्णुभक्तिरतिस्तथा। इति वाक्यं तु देवर्षेः श्रुत्वा राजा तमब्रवीत् ॥ ११ ॥ राजोवाच। त्वत्प्रसादा-

हुए देखकर राजाने उठकर, हाथ जोड़कर अर्घादिविधिसे पूजा करके उनको आसनपर बैठाया ॥ ९ ॥ फिर सुखसे बैठे हुए नारद मुनिने उस उत्तम राजासे पूछा। कि हे राजेन्द्र ! तुम्हारे सेना, कोष आदि सातों अङ्ग तो कुशलपूर्वक हैं ॥ १० ॥ क्या तुम्हारी मति धर्ममे है, और विष्णुभक्ति तुमको प्रिय है ? ऐसे देवर्षिके वचन सुनकर राजा उनसे बोले ॥ ११ ॥ राजा

कहने लगे—हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे मेरे यहाँ सब कुशल है। आज आपके दर्शनसे मेरी सब यज्ञादि क्रियायें सफल हुईं ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! अब आप कृपा करके अपने आनेका कारण कहिये। इस प्रकार राजाके वचन सुनकर नारदमुनि बोले ॥ १३ ॥ नारद कहने लगे कि हे राजसिंह ! आश्चर्यको उत्पन्न करने वाले मेरे वचनोंको सुनो। हे नृपोत्तम !

न्मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र कुशलं मम। अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥ १२ ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे ब्रूह्यागमनकारणम्। इति राज्ञो वचः श्रुत्वा देवर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ नारद उवाच। श्रूयतां राजशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम्। ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं नृपोत्तम ॥ १४ ॥ शमनेनार्चितो भक्त्या उपविष्टो वरासने। धर्मशीलः सत्यवांस्तु भास्करिं समुपासते ॥ १५ ॥ बहुपुण्यप्रकर्ता च व्रतवैकल्यदोषतः। सभायां श्राद्धदेवस्य मया दृष्टः पिता तव ॥ १६ ॥ कथितस्तेन सन्देशस्तं निबोध जनेश्वर। इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीप्रभुः ॥ १७ ॥ तस्याग्रे कथय ब्रह्मन् स्थितं मां यमसन्निधौ।

मैं ब्रह्मलोकसे यमलोकको गया था ॥ १४ ॥ वहाँ यमराजने भक्तिके साथ पूजा करके मुझे श्रेष्ठ आसनपर बैठाया। वहाँ धर्मशील राजा सत्यवान् यमकी उपासना करते हैं ॥ १५ ॥ वे तुम्हारे पिता बहुतसे पुण्योंको करने वाले हैं किन्तु एक व्रतके खण्डित हो जानेके दोषसे ही मैंने उन्हें यमकी सभामें देखा है ॥ १६ ॥ और हे राजन् ! उसने जो सन्देश भेजा है उसे

सुनो। उसने मुझसे कहा है कि हे भगवन्! माहिष्मती नगरीमें इन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता है ॥ १७ ॥
तुम मेरे पुत्रसे कह दो कि—मैं [तुम्हारा पिता] पूर्व जन्मके किसी विघ्नके कारण यमलोकमें पड़ा हूँ ॥ १८ ॥
इसलिए हे पुत्र! इन्दिरा एकादशीके व्रतके दानसे मुझे स्वर्गमें भेजो। हे इन्द्रसेन! तुम्हारे पिताके ऐसा कहनेपर मैं तुम्हारे

केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन वै ॥ १८ ॥ स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इन्दिराव्रतदानतः। इत्युक्तोऽहं
समायातः समीपं तव पार्थिव ॥ १९ ॥ पितुः स्वर्गतये राजन्निन्दिराव्रतमाचर। तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं
यास्यति ते पिता ॥ २० ॥ राजोवाच। कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिराव्रतम्। विधिना केन कर्तव्यं
कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा ॥ २१ ॥ नारद उवाच। शृणु राजन् हितं वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम्।
आश्विनस्यासिते पक्षे दशमीदिवसे शुभे ॥२२॥ प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा। ततो मध्याह्न-

पास आया हूँ ॥ १९ ॥ हे इन्द्रसेन! पिताको स्वर्ग भेजनेके लिए इन्दिरा एकादशीका व्रत करो। उस व्रतके प्रभावसे
तुम्हारा पिता अवश्य ही स्वर्गको जायगा ॥ २० ॥ इन्द्रसेन बोला—हे भगवन्! आप कृपा करके इन्दिरा एकादशीका
व्रत मुझसे कहिये कि किस पक्षमें और किस तिथिमें तथा कौन-सी विधिसे यह व्रत करना चाहिए ॥ २१ ॥ नारद
बोले—हे राजन्! सुनो, मैं इस व्रतकी सुन्दर विधि तुम्हारे कल्याणके लिए कहता हूँ। आश्विन मासके कृष्ण पक्षमें

दशमीके दिन ॥ २२ ॥ श्रद्धायुक्त चित्तसे प्रातःस्नान करे। फिर दोपहरके समय स्नान करके जलके बाहर ॥ २३ ॥ श्रद्धापूर्वक पितरोंकी प्रसन्नताके लिए श्राद्ध करे। इसके बाद एक बार भोजन करके पृथिवी पर शयन करे ॥ २४ ॥ दूसरे दिन एकादशीके आने पर जब अच्छी प्रकार प्रातःकाल हो जाय तब दाँतुन आदि करके मुख को धोवे ॥ २५ ॥

समये स्नानं कृत्वा बहिर्जले ॥ २३ ॥ पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः। एकभक्तं ततः कृत्वा रात्रौ भूमौ शयीत च ॥ २४ ॥ प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने। मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥ २५ ॥ उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावतः। अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ॥ २६ ॥ श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत। इत्येवं नियमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा ॥ २७ ॥ शालग्रामशिलाग्रे तु श्राद्धं कृत्वा यथाविधि। भोजयित्वा द्विजाञ्छुद्धान् दक्षिणाभिः सुपूजितान् ॥ २८ ॥ पितृशेषं समाघ्राय गवे दद्याद्विचक्षणः। पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगन्धादिभि-

फिर भक्तिभावसे व्रतके नियमोंको ग्रहण करे कि आज निराहार रहकर सब भोगोंसे वर्जित रहूँगा ॥ २६ ॥ और कल द्वादशीके दिन भोजन करूँगा, हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! तुम मेरी रक्षा करो। इस प्रकार नियम करके दोपहरके समयमें ॥ २७ ॥ शालग्रामकी शिलाके सामने विधिपूर्वक श्राद्ध करके दक्षिणा आदिसे शुद्ध ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको भोजन करावे ॥ २८ ॥

और पितरोंसे बचे हुए अन्नको चतुर पुरुष सूँघकर गौको दे देवे। तथा धूप, गंध आदिसे हृषीकेश भगवान्‌का पूजन करे ॥ २९ ॥ रात्रिमें केशव भगवान्‌के पास जागरण करे। और फिर द्वादशीके दिनप्रातः काल होने पर ॥ ३० ॥ भक्तिके साथ हरि भगवान् की पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और फिर बन्धुवर्ग, दौहित्र और पुत्रोंके साथ मौन होकर स्वयं भी भोजन करे ॥ ३१ ॥

स्तथा ॥ २९ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् केशवस्य समीपतः। ततः प्रभातसमये सम्प्राप्ते द्वादशीदिने ॥ ३० ॥ अर्चयित्वा हरिं भक्त्या भोजयित्वा द्विजानथ। बन्धुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ३१ ॥ अनेन विधिना राजन् कुरु व्रतमतन्द्रितः। विष्णुलोकं प्रयास्यन्ति पितरस्तव भूपते ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिं राजन् मुनिरन्तरधीयत। यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः। कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥ ३४ ॥ तत्पिता गरुडा-

हे राजन्! इस विधिसे आलस्यरहित होकर व्रतको करो। हे भूपति! ऐसा करनेसे तुम्हारे पितर विष्णुलोकको जायेंगे ॥ ३२ ॥ हे राजन्! इन्द्रसेन राजासे ऐसा कहकर नारदमुनि अन्तर्धान हो गये। और कही हुई विधिके अनुसार इन्द्रसेनने उत्तम व्रतको किया ॥ ३३ ॥ हे कुन्तीपुत्र! स्त्री-सहित पुत्र और नौकरोंके साथ राजाके व्रत करने पर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ३४ ॥ और राजाका पिता गरुड़पर चढ़कर विष्णुलोकको गया। तथा राजर्षि इन्द्रसेन भी

अकण्टक राज्य करके ॥ ३५ ॥ अपने पुत्रको राज्य देकर स्वर्गको गया। यह इन्दिरा के व्रतका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा है ॥ ३६ ॥ इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोसे छूट जाता है। और इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर बहुत समय तक विष्णुलोकमें निवास करता है ॥ ३७ ॥

रूढो जगाम हरिमन्दिरम् । इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥ ३५ ॥ राज्यं निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम् । इन्दिराव्रतमाहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ॥ ३६ ॥ पठनाच्छ्रवणाचास्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । भुक्त्वेह निखिलान् भोगान् विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते आश्विनकृष्णैकादशीन्दिरामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २१ ॥

अथ आश्विनशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच । कथयस्व प्रसादेन भगवन् मधुसूदन । इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् । शुक्लपक्षे चाश्वयुजे

युधिष्ठिर बोले—हे भगवन् ! हे मधुसूदन ! आप कृपा करके कहिये कि आश्विन शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजेन्द्र ! सुनो, आश्विन शुक्लपक्षमे होनेवाली एकादशी के माहात्म्यको कहता हूँ जो कि

पापोंको नाश करनेवाला है ॥ २ ॥ इसका नाम पाशांकुशा है और यह सब पापोंको नाश करनेवाली है । इसमें मनुष्य पद्मनाभ भगवान्का पूजन करे ॥ ३ ॥ यह व्रत मनुष्योंको सम्पूर्ण मनोरथ और स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाला है । मनुष्य बहुत काल तक जितेन्द्रिय रहकर अति तीव्र तप करके ॥ ४ ॥ जिस फलको प्राप्त होता है, उसी फलको गरुड़ध्वज भगवान्को नमस्कार

भवेदेकादशी तु या ॥ २ ॥ पाशाङ्कुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा । पद्मनाभाभिधानं तु पूजयेत्तत्र मानवः ॥ ३ ॥ सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै सर्वमोक्षप्रदं नृणाम् । तपस्तप्त्वा नरस्तीव्रं चिरं सुनियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥ यत्फलं समवाप्नोति तं नत्वा गरुडध्वजम् । कृत्वापि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥ ५ ॥ न याति नरकं घोरं नत्वा पापहरं हरिम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ६ ॥ तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् । देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥ ७ ॥ न तेषां यमलोकश्च नृणां वै जायते क्वचित् । उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मानवाः ॥ ८ ॥ न यान्ति

करनेसे भी प्राप्त होता है । मनुष्य अज्ञानसे बहुतसे पापोंको करके भी ॥ ५ ॥ पापोंको हरनेवाले हरिको नमस्कार करके घोर नरकमे नहीं जाता है । पृथिवी पर जितने तीर्थक्षेत्र और पुण्यस्थान हैं ॥ ६ ॥ उन सबको मनुष्य विष्णुके नामके कीर्त्तनसे हीं प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य शार्ङ्गधनुको धारण करनेवाले जनार्दन भगवान् की शरणमे जाते हैं ॥ ७ ॥ उन मनुष्योंको निश्चय

ही यमलोकमे नहीं जाना पड़ता है। मनुष्य प्रसङ्गसे भी एक एकादशीका व्रत करके ॥८॥ अति कठिन पाप करने पर भी यमकी यातनाको प्राप्त नहीं होते हैं। जो मनुष्य वैष्णव होकर शिवजीकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और जो वैष्णवोंकी निन्दा करता है वह निश्चय ही नरकको जाता है। हजारों अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों राजसूय यज्ञ ॥ १० ॥ एकादशी व्रतके सोलहवें भागके

यातनां याम्यां पापं कृत्वातिदारुणम्। वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥ ९ ॥ यो निन्दे-द्वैष्णवं लोकं स याति नरकं ध्रुवम्। अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ १० ॥ एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। एकादशीसमं पुण्यं किञ्चिल्लोके न विद्यते ॥ ११ ॥ नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥ १२ ॥ यावन्नोपोष्यते जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्। तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ॥ १३ ॥ नैकादशीसमं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम् ॥ १४ ॥ स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी।

समान भी नहीं हैं। संसारमें एकादशीके समान कोई पुण्य नहीं है ॥ ११ ॥ जैसा पद्मनाभजीका दिन पापोंको नाश करनेवाला है। ऐसा पवित्र दिन तीनों लोकोंमें कोई भी नहीं है ॥ १२ ॥ हे राजन्! इस शरीरमें तभीतक पाप रहते हैं, जबतक कि मनुष्य भक्तिपूर्वक पद्मनाभके शुभ दिनमें एकादशीका व्रत नहीं करता ॥ १३ ॥ एकादशीके समान तीनों लोकोंमें कुछ भी

नहीं है। हे राजन्! किसी वहानेसे भी इस एकादशीका व्रत कर लेनेपर यमके दर्शन नहीं होते हैं॥ १४ ॥ यह एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, आरोग्यता, सुन्दर स्त्री और धन-धान्यको देनेवाली है॥ १५ ॥ हे राजन्! गङ्गा, गया, पुष्कर, काशी और कुरुक्षेत्र ये सब हरिके दिनसे पवित्र नहीं हैं॥ १६ ॥ हे राजन्! जो एकादशीके दिन व्रत करके रात्रिमे जागरण

सुकलत्रप्रदा ह्येषा धनधान्यप्रदायिनी ॥ १५ ॥ न गङ्गा न गया राजन्न काशी न च पुष्करम्। न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात् ॥१६॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्। अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥ १७ ॥ दश वै मातृपक्षे च दश राजेन्द्र पैतृके। प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥ १८ ॥ चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः। स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ १९ ॥ बालत्वे यौवनत्वे च वृद्धत्वेऽपि नृपोत्तम। उपोष्य द्वादशीं नूनं नैति पापोऽपि

करता है। वह बिना परिश्रमके ही विष्णुलोकमे जाता है॥ १७ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य इस एकादशीके व्रतको करता है, वह मातृपक्ष, पितृपक्ष तथा स्त्रीपक्षकी दस पीढियों को तार देता है॥ १८ ॥ ये सब मनुष्य चार भुजावाले दिव्य रूपको धारण करके गरुड़पर सवार होकर उत्तम माला और पीले वस्त्रोंको पहिनकर विष्णुलोकको जाते हैं॥ १९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें द्वादशीयुक्त एकादशीका व्रत करके पापी मनुष्य भी

दुर्गतिम् ॥ २० ॥ पाशाङ्कुशामुपोष्यैव आश्विने चासितेतरे । सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स
गच्छति ॥ २१ ॥ दत्त्वा हेमतिलान् भूमिं गामन्नमुदकं तथा । उपानद्वस्त्रच्छत्रादि न पश्यति यमं
नरः ॥ २२ ॥ अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दरिद्रोऽपि नृपोत्तम । समाचरन् यथाशक्ति स्नानदानादिकाः
क्रियाः ॥ २३ ॥ तडागारामसौधानां सत्राणां पुण्यकर्मणाम् । कर्तारो नव पश्यन्ति धीरास्तां यमया-
तनाम् ॥ २४ ॥ दीर्घायुषो धनाढ्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः । दृश्यन्ते मानवा लोके पुण्यकर्तार
ईदृशाः ॥ २५ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् । आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नात्र

दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता ॥ २० ॥ जो मनुष्य आश्विन शुक्लपक्षमें पाशांकुशा एकादशीका व्रत करता है। वह सब पापोंसे छूटकर भगवान्के लोकको जाता है ॥ २१ ॥ और जो इस एकादशीके दिन सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूता और छाते आदिका दान करता है वह मनुष्य यमको नहीं देखता है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! दरिद्री (निर्धन) पुरुषको भी अपनी शक्तिके अनुसार स्नान-दान आदि क्रियाओंको करके दिनोंको सफल बनाना चाहिये ॥ २३ ॥ तालाब, बाग, महल, यज्ञ और पुण्योंको करनेवाले धीर मनुष्य यमके मार्गको नहीं देखते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार पुण्य करनेवाले मनुष्य संसारमें दीर्घायु, धनवान्, कुलीन और रोगसे रहित दिखाई पड़ते हैं ॥ २५ ॥ बहुत कहनेसे कोई लाभ नहीं है, अधर्म करनेसे मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होते

हैं। और धर्म करनेसे स्वर्गको जाते हैं, इसमें कुछ विचार करनेकी बात नही है ॥ २६ ॥ हे पापरहित ! हे राजन् ! तुम्हारे पूछने पर यह एकादशी-माहात्म्य मैंने तुमको सुनाया ॥ २७ ॥

कार्या विचारणा ॥ २६ ॥ इति ते कथितं राजन् यत् पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ २७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे आश्विनशुक्लैकादशीपाशाङ्कुशामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २२ ॥



अथ कार्तिककृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच। कथयस्व प्रसादेन मम स्नेहाज्जनार्दन। कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच। श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः। कार्तिके कृष्णपक्षे तु रमानाम्नी सुशोभना ॥ २ ॥ एकादशी समाख्याता महापापहरा परा। अस्याः प्रसंगतो राजन् मा-

युधिष्ठिर बोले—हे जनार्दन ! आप मेरे स्नेहसे कृपा करके बतलाइये कि कार्तिकके कृष्णपक्षमे किस नामकी एकादशी होती है ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजसिंह ! सुनो, मैं तुमसे कहता हूँ। कार्त्तिकके कृष्णपक्षमे रमा नामकी सुन्दर एकादशी होती है ॥ २ ॥ यह एकादशी बड़े-बड़े पापोंको नाश करनेवाली और उत्तम है। हे राजन् ! प्रसङ्गवश इसके माहात्म्यको मैं

तुमसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ हे नृप ! पहले मुचुकुन्द नामका राजा हुआ जिसकी इन्द्रके साथ मित्रता थी ॥ ४ ॥ उसी प्रकार यम, वरुण, कुबेर और विभीषणके साथ भी उसकी मित्रता थी ॥ ५ ॥ वह सदा विष्णुभक्त, और सत्यप्रतिज्ञा वाला था। हे राजन् ! इस प्रकार वह राजा निर्विघ्न राज्य करता था ॥ ६ ॥ उस राजा मुचुकुन्दके घरमें नदियोंमें श्रेष्ठ चन्द्रभागा नामकी

हात्म्यं प्रवदामि ते ॥ ३ ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा। देवेन्द्रेण समं यस्य मित्रत्वमभवन्नृप ॥ ४ ॥ यमेन वरुणेनैव कुबेरेण समं तथा। विभीषणेन चैतस्य सखित्वमभवत् सह ॥ ५ ॥ विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा। तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ६ ॥ बभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा। शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेनसुताय वै ॥ ७ ॥ स कदाचित् समायातः श्वशुरस्य गृहे नृप। एकादशीव्रतमिदं समायातं सुपुण्यदम् ॥ ८ ॥ समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत्। किं भविष्यति देवेश मम भर्तातिदुर्बलः ॥ ९ ॥ क्षुधां न सहते सोऽपि पिता

पुत्री उत्पन्न हुई। उसका चन्द्रसेनके शोभन नामक पुत्रके साथ विवाह हुआ ॥ ७ ॥ हे नृप ! वह शोभन एक समय अपने श्वशुरके घर आया। उसी समय उत्तम पुण्यको देनेवाला यह एकादशीका व्रत आया ॥ ८ ॥ व्रतका दिन आनेपर चन्द्रभागा चिन्ता करने लगी कि हे देवेश ! न जाने क्या होवेगा क्योंकि मेरा पति तो दुर्बल है ॥ ९ ॥ वह भूखको नहीं सहन कर

दशमीका दिन आनेपर ही उनका नकारा (नगाड़ा) बजने लगता है ॥ १० ॥
सकता, और पिताकी ऐसी कठिन आज्ञा है कि दशमीका दिन आनेपर ही उनका नकारा नहीं करना चाहिए। इस प्रकार नकारेकी आवाज
कि एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिए, हे सुन्दरि! उपाय बताओ, जिसको अच्छी
सुनकर शोभन अपनी स्त्रीसे बोला ॥ ११ ॥ हे प्रिये! मुझे अब क्या करना चाहिए, हे सुन्दरि! उपाय बताओ, जिसको अच्छी

चैवोग्रशासनः। पटहस्ताड्यते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने ॥ १० ॥ न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं
हरेर्दिने। श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम् ॥ ११ ॥ किं कर्त्तव्यं मया कान्ते देहि शिक्षां
सुशोभने। कृतेन येन मे सम्यक् जीवितं न विनश्यति ॥ १२ ॥ चन्द्रभागोवाच। मत्पितुर्वेश्मनि विभो
भोक्तव्यं नैव केनचित्। गजैरश्वैस्तथा चोष्ट्रैरन्यैः पशुभिरेव च ॥ १३ ॥ तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं
हरेर्दिने। मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे ॥ १४ ॥ यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गेहात्प्रयास्य-
ताम्। एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसं कुरु ॥ १५ ॥ शोभन उवाच। सत्यमेतत्त्वयैवोक्तं करिष्येऽह-

प्रकार करनेसे मेरे प्राण न चले जावें ॥ १२ ॥ चन्द्रभागा बोली—हे स्वामी! आज मेरे पिताके घर कोई भी भोजन नहीं
करेगा तथा अन्य हाथी, घोड़े, ऊँट, इत्यादि पशु भी व्रती रहेंगे ॥ १३ ॥ एकादशी के दिन जब पशु ही घास, अन्न, और जल
नहीं ग्रहण करेंगे तब मनुष्योंको तो बात ही क्या है ॥ १४ ॥ हे पति! यदि तुम भोजन करना ही चाहते हो तो घरसे

चले जाओ। इस प्रकार मनमें विचारकर अपने मनको पक्का करो ॥ १५ ॥ शोभन बोला—हे प्रिये! तूने सत्य कहा है। मैं भी व्रत करूँगा। जो दैवने रचा है वही होवेगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार दैवपर भरोसा करके उस शोभनने उत्तम व्रतको किया। किन्तु भूख-प्याससे पीडित शरीरवाला शोभन अति दुखी हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकार वह चिन्ता कर ही रहा

मुपोषणम्। दैवेन विहितं यद्वै तत्तथैव भविष्यति ॥ १६ ॥ इति दिष्टे मतिं कृत्वा चकार व्रतमुत्तमम्। क्षुत्तृषापीडिततनुः स बभूवातिदुःखितः ॥ १७ ॥ इति चिन्तयतस्तस्य ह्यादित्योऽस्तमयाद्गिरिम्। वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्धिनी ॥ १८ ॥ हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम्। बभूव नृपशार्दूल शोभनस्यातिदुःसहा ॥ १९ ॥ रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः। दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥ २० ॥ चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पितृवारिता। कृत्वौर्ध्वदैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ॥२१॥ शोभनेन नृपश्रेष्ठ रमाव्रतप्रभावतः। प्राप्तं देवपुरं रम्यं मन्दराचलसानुनि ॥२२॥

था कि सूर्य भगवान् अस्त हो गये और हे नृपराज! वैष्णव मनुष्योंके लिए तथा ॥ १८ ॥ भगवान्की पूजा और जागरण करने वालोंके लिये आनन्दमय वह रात्रि शोभनको अति दुस्सह हुई ॥ १९ ॥ और सूर्यके उदयके समयमे वह शोभन मर गया। तब राजाने उसका राजाके योग्य चन्दनादि काष्ठसे दाह किया ॥ २० ॥ चन्द्रभागा पिताके रोकनेसे

सती नहीं हुई। वह अपने पतिका क्रिया-कर्म करके पिताके ही घरमें रहने लगी ॥ २१ ॥ उस रमा व्रतके करनेसे शोभनको
मन्दराचलके शिखरपर सुन्दर देवपुर प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ वह देवपुर अति उत्तम था, उसपर कोई आक्रमण नहीं कर
सकता था और वह असंख्य गुणोंसे युक्त था तथा उसके महल सुवर्णस्तम्भ और वैदूर्यमणि-जड़ी भित्तियोंसे शोभित हो रहे
थे ॥ २३ ॥ अनेक आकारवाली रंगविरंगी विचित्र स्फटिकमणियोंसे शोभायमान सिंहासनपर शोभनजी बैठे थे,

अनुत्तममनाधृष्यमसंख्येयगुणान्वितम् । हेमस्तम्भमयैः सौधे रत्नवैदूर्यमण्डितैः ॥ २३ ॥ स्फाटिकैर्विविधा-
कारैर्विचित्रैरुपशोभितम् । सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥ २४ ॥ किरीटकुण्डलयुतो हारकेयूर-
भूषितः । स्तूयमानश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥ २५ ॥ शोभनः शोभते तत्र देवराडपरो यथा ।
सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरे वसन् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रमन् विप्रो ददर्श तम् ॥ २६ ॥ नृपजामा-

उनके ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था तथा चमर डुल रहे थे ॥ २४ ॥ शोभनके मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और
बाहुओंमें बाजू शोभित हो रहे थे। गन्धर्व लोग उनकी स्तुति और अप्सरागण सेवा कर रहे थे ॥ २५ ॥ वहाँ शोभन
दूसरे इन्द्रके समान शोभायमान थे। उसी समय मुचुकुन्दके नगरमें रहनेवाला कोई सोमशर्मा नामका ब्राह्मण तीर्थयात्रा करता
हुआ वहाँपर आया। उसने शोभनको देखा ॥ २६ ॥ और उसे राजाका जामाता जानकर वह ब्राह्मण शोभनके पास

गया। शोभनने शीघ्र ही आसनसे उठकर उस उत्तम ब्राह्मणको नमस्कार किया ॥ २७ ॥ और अपने श्वसुर राजा मुचुकुन्दकी, अपनी स्त्री चन्द्रभागा तथा नगरकी कुशल पूछी ॥ २८ ॥ सोमशर्मा बोला—हे राजन्! तुम्हारे श्वसुरके घरमें सब कुशल है, चन्द्रभागा भी कुशल है तथा नगरमे भी सब कुशलपूर्वक हैं ॥ २९ ॥ हे राजन्! तुम अपना वृत्तांत कहो, मुझे बड़ा

तरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः। आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चक्रे द्विजोत्तमम् ॥ २७ ॥ चकार कुशलप्रश्नं श्वशुरस्य नृपस्य च। कांतायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ॥ २८ ॥ सोमशर्मोवाच। कुशलं वर्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव। चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे ॥ २९ ॥ स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं परमं मम। पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित् क्वचित् ॥ ३० ॥ एतदाचक्ष्व नृपते कुतः प्राप्तमिदं त्वया। शोभन उवाच। कार्तिकस्यासिते पक्षे नाम्ना चैकादशी रमा ॥ ३१ ॥ तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्र पुरमध्रुवम्। ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ द्विजेन्द्र उवाच।

आश्चर्य है, क्योंकि यह नगर तो ऐसा विचित्र और सुन्दर है जो कभी किसीने देखा भी नहीं होगा ॥ ३० ॥ हे नृप! यह बतलाओ कि यह तुमको कहाँसे प्राप्त हुआ है। शोभन बोला कि कार्तिकके कृष्ण पक्षमें रमा नामकी एकादशी होती है ॥ ३१ ॥ हे विप्रेन्द्र! रमाका व्रत करके मैंने यह अनिश्चल नगर प्राप्त किया है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ऐसा उपाय करो जिससे यह निश्चल हो

जाय ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण बोला—यह नगर कैसे अनिश्चल है और कैसे निश्चल होवेगा, हे राजेन्द्र ! वह तुम मुझसे कहो, मैं उसे अवश्य करूँगा ॥ ३३ ॥ शोभन बोला—हे ब्राह्मण ! यह उत्तम व्रत मैंने श्रद्धारहित होकर किया है। इसलिए मैं इसे अध्रुव मानता हूँ, अब इसके ध्रुव होनेका उपाय सुनो ॥ ३४ ॥ राजा मुचुकुन्दकी चन्द्रभागा नामकी सुन्दर कन्या है। उससे

कथमध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम्। तत्त्वं कथय राजेन्द्र तत्करिष्यामि नान्यथा ॥ ३३ ॥
शोभन उवाच। मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम्। तेनाहमध्रुवम् मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥३४॥
मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना। तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वाथ द्विजवरस्तस्यै सर्वं न्यवेदयत्। श्रुत्वाऽथ सा द्विजवचो विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षमथवा स्वप्नस्त्वयैतत्कथ्यते द्विज। सोमशर्मोवाच। प्रत्यक्षं पुत्रि ते कांतो मया दृष्टो महावने ॥ ३७ ॥

यह वृत्तान्त कहिये, तब यह ध्रुव (निश्चल) हो जावेगा ॥ ३५ ॥ यह सुनकर उस उत्तम ब्राह्मणने सब वृत्तान्त चन्द्रभागासे कह दिया। ब्राह्मणके वचन सुनकर चन्द्रभागाके नेत्र विस्मयसे खिल उठे ॥ ३६ ॥ वह बोली कि हे ब्राह्मण ! तुम यह आँखों-देखी बात कहते हो या स्वप्नमें देखी हुई ? सोमशर्मा बोला—हे पुत्रि ! मैंने तेरा पति उस महावनमें प्रत्यक्ष देखा है ॥ ३७ ॥ मैंने उसके नगरको इन्द्रपुरीके समान देखा है जिसपर कोई आक्रमण भी नहीं कर सकता।

किन्तु शोभनने मुझे वह नगर अध्रुव बतलाया है, अतः तुम ऐसा उपाय करो जिससे यह पुर निश्चल हो जावे ॥ ३८ ॥ चन्द्रभागा बोली—हे ब्रह्मर्षि ! तुम मुझे वहाँ ले चलो क्योंकि मुझे पतिके दर्शनकी बड़ी लालसा है। मैं अपने व्रतके पुण्यसे उस नगरको ध्रुव कर दूँगी ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मण ! ऐसा उपाय करो जिससे हम दोनोंका संयोग हो जाय। क्योंकि वियोगियोंका संयोग करानेसे

देवतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया। अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥३८॥ चन्द्रभागोवाच। तत्र मां नय विप्रर्षे पतिदर्शनलालसाम्। आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥३९॥ आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु। प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृत्वा योगं वियुक्तयोः ॥४०॥ इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह। आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ॥४१॥ वामदेवोऽशृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः। अभ्यषिञ्चच्चन्द्रभागां वेदमन्त्रैरथोज्ज्वलाम् ॥ ४२ ॥ ऋषिमन्त्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात्। दिव्यदेहा बभूवासौ दिव्यां गतिमवाप ह ॥ ४३ ॥ पत्युः समीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना। सहर्षः

बड़ा भारी पुण्य होता है ॥ ४० ॥ यह सुनकर सोमशर्मा ब्राह्मण चन्द्रभागाके साथ मन्दराचलके समीपस्थित वामदेव ऋषिके आश्रममें गया ॥ ४१ ॥ वहाँ वामदेव ऋषिने उन दोनोंसे कहे हुए संपूर्ण वृत्तान्तको सुना। और फिर वामदेवने उस उज्ज्वल चन्द्रभागाका वेदमन्त्रोंसे अभिषेक किया ॥ ४२ ॥ ऋषिके मन्त्रके प्रभावसे और एकादशी व्रतके करनेसे वह चन्द्रभागा दिव्य

देहवाली हो गई और उसने सुन्दर गतिको प्राप्त किया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार प्रसन्नतासे खिले हुए नेत्रोंवाली चन्द्रभागा अपने पतिके पास गई। स्त्रीको आती हुई देखकर शोभन बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ४४ ॥ और उसे बुलाकर अपने वाम भागमें बैठा लिया। तब चन्द्रभागा प्रसन्नतासे अपने पतिसे शुभ वचन बोली ॥ ४५ ॥ हे प्राणवल्लभ! हितकी बात सुनो,

शोभनोऽतीव दृष्ट्वा कान्तां समागताम् ॥ ४४ ॥ समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तां संन्यवेशयत्। सा चोवाच प्रियं हर्षाच्चन्द्रभागा शुभं वचः ॥ ४५ ॥ शृणु कान्त हितं वाक्यं तत्पुण्यं विद्यते मयि। अष्टवर्षाधिका जाता यदाऽहं पितृवेश्मनि ॥ ४६ ॥ मया ततः प्रभृतिं च कृतमेकादशीव्रतम्। यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ ४७ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम्। सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४८ ॥ एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह। दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता ॥ ४९ ॥ शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः। रमाव्रतप्रभावेण मन्दराच-

मैंने पिताके घरमें आठ वर्षकी अवस्थाके बादसे जो पुण्य किया है वह मुझमे ही विद्यमान है ॥ ४६ ॥ मैंने तभीसे श्रद्धायुक्त मनसे कही हुई विधिके अनुसार एकादशीका व्रत किया है ॥ ४७ ॥ उसी व्रतके पुण्य-प्रभावसे यह पुर निश्चल हो जायगा और प्रलयपर्यन्त सब कामनाओंसे भरा-पूरा रहेगा ॥ ४८ ॥ हे राजसिंह! इस प्रकार वह चन्द्रभागा पतिके

साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगी और दिव्य भोग, दिव्य रूप और दिव्य अलंकारोंसे शोभित हो गई ॥ ४९ ॥
सुन्दर शरीरवाला शोभन भी रमा व्रतके प्रभावसे मन्दराचलके शिखरपर चन्द्रभागाके साथ सुखसे रहने लगा ॥ ५० ॥
हे युधिष्ठिर । रमा नामकी एकादशी जो मैंने तुमसे कही है वह चिन्तामणि अथवा कामधेनुके तुल्य है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! जो

लसानुनि ॥ ५० ॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमाऽथवा । रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता
मया ॥ ५१ ॥ ईदृशं च व्रतं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः । ब्रह्महत्यादिपापानि नाशं यान्ति न संशयः
॥ ५२ ॥ एकादशीव्रतानां च पक्षयोरुभयोरपि । यथा शुक्ला तथा कृष्णा तिथिभेदं न कारयेत्
॥ ५३ ॥ सेवितैकादशी नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । धेनुः कृष्णा यथा श्वेता उभयोः सदृशं पयः

उत्तम पुरुष इस प्रकार व्रतको करते हैं उनके ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५२ ॥
कृष्ण तथा शुक्ल दोनों पक्षोंके एकादशी व्रतोंमे तिथिभेद न करे अर्थात् दोनोंको समान ही माने ॥ ५३ ॥ यह एकादशी
व्रत करनेवाले मनुष्योंको उत्तम भोग और मोक्ष देती है । जैसे काली गौ या सफेद गौ दोनोंका दूध समान ही होता है ॥ ५४ ॥

उसी प्रकार दोनों पक्षोंकी एकादशियोंके व्रतका फल समान ही होता है। एकादशी व्रतोंके माहात्म्यको जो मनुष्य सुनता है ॥५५॥ वह सब पापोसे छूटकर विष्णुलोकमे सुखपूर्वक निवास करता है ॥ ५६ ॥

॥ ५४ ॥ तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीव्रतम्। एकादशीव्रतानां च माहात्म्यं शृणुयान्नरः ॥ ५५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ५६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणे कातिककृष्णैकादशीरमामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २३ ॥



अथ कार्तिकशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

ब्रह्मोवाच। प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम्। मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां शृणुष्व मुनिसत्तम ॥१॥ तावद्गर्जति विप्रेन्द्र गङ्गा भागीरथी क्षितौ। यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! तुम प्रबोधिनी एकादशीके माहात्म्यको सुनो, जो कि पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यको बढ़ानेवाला तथा उत्तम बुद्धिवालोको मोक्ष देनेवाला है ॥ १ ॥ हे द्विजेन्द्र! भागीरथी गंगा पृथिवीपर तभी तक गरजती है जबतक कि पापोंको नाश करनेवाली कार्त्तिककी हरिबोधिनी एकादशी नहीं आती ॥ २ ॥ और पुण्य क्षेत्र तथा

सरोवरसे लेकर समुद्रतक सब पवित्र तीर्थ भी तभीतक गरजते हैं। जबतक कि कार्त्तिकमें विष्णुप्रबोधिनी (देवउठनी) एकादशी नहीं आती है ॥ ३ ॥ हजारों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञोंका फल मनुष्य एक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करनेसे ही प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥ नारद बोले—हे पितामह ! दिनमें एक बार भोजन करनेसे और रात्रिमें भोजन करनेसे तथा

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च। यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥ ४ ॥ नारद उवाच। एकभुक्तेन किं पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने। उपवासेन किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच। एकभुक्तेन जन्मोत्थं नक्तेन द्विजनुर्भवम्। सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ॥ ६ ॥ यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्ये न तु गोचरम्। यदप्यप्रार्थितं पुत्र ददाति हरिबोधिनी ॥ ७ ॥ मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि तु। एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रैस्तु

उपवास करनेसे क्या पुण्य होता है, वह सब मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ ब्रह्मा बोले—एक बारके भोजनसे एक जन्मके, रात्रि-भोजनसे दो जन्मके तथा उपवास करनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! जो वस्तु दुर्लभ है, जो प्राप्त नहीं हो सकती तथा जो तीनों लोकोंमें भी दृष्टिगोचर नहीं है उन सबको हरिबोधिनी विना माँगे ही दे देती है ॥ ७ ॥

पापोंको हरनेवाली यह एकादशी एक व्रतके करनेसे ही मेरु और मन्दराचल पर्वतके समान भयंकर पापोंको भस्म कर देती है ॥ ८ ॥ हज़ारों पूर्वजन्मोंका इकट्ठा किया गया पाप प्रबोधिनी एकादशीको जागरण करनेसे रूईके ढेरके समान भस्म हो जाता है ॥ ९ ॥ हे मुनिराज ! जो मनुष्य स्वभावसे ही विधिपूर्वक प्रबोधिनीका व्रत करता है, वह कहे हुए श्रेष्ठ

यद्दुष्कर्म उपार्जितम् । जागरेण प्रबोधिन्यां दहते तूलराशिवत् ॥ ९ ॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः । विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥ १० ॥ यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः । स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥ ११ ॥ विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम् । अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद ॥ १२ ॥ सन्ध्याहीने व्रतभ्रष्टे नास्तिके वेदनिन्दके । नैतेषां तिष्ठते देहे धर्मशास्त्रविदूषके ॥ १३ ॥ परदाररते मूर्खे कृतघ्ने बन्धके तथा । धर्मो

फलको प्राप्त करता है ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मनुष्य कही हुई विधिपूर्वक थोड़ा भी पुण्य कर्म करता है वह मेरुके समान अधिक फलको पाता है ॥ ११ ॥ और हे नारद ! बिना विधिके मेरुके समान भी जो पुण्य किया जाता है। उस धर्मका फल लेशमात्र भी नहीं मिलता ॥ १२ ॥ सन्ध्या न करनेवाले, व्रतभ्रष्ट, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाले और शास्त्रमें दोष लगानेवालेके शरीरमे धर्म नही ठहरता ॥ १३ ॥ दूसरोंकी स्त्रियोंमे रति करनेवाले, मूर्ख, कृतघ्नी तथा धूर्त

या ठग इन मनुष्योंके शरीरमें भी धर्म स्थित नहीं रहता ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण अथवा शूद्र दूसरेकी स्त्रीका विशेष कर ब्राह्मणीका सेवन करता है। वे दोनों चाण्डाल के समान हैं ॥ १५ ॥ हे मुनिराज! जो ब्राह्मण पतिवाली अथवा विधवा ब्राह्मणीका सेवन करता है। वह कुटुम्बके सहित नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥ जो अधम ब्राह्मण

न तिष्ठते देहे एतेषामपि देहिनाम् ॥ १४ ॥ ब्राह्मणो वापि शूद्रो वा सेवते परयोषितम्। ब्राह्मणीं च विशेषेण चाण्डालसदृशावुभौ ॥ १५ ॥ सभर्तृकां वा विधवां ब्राह्मणीं ब्राह्मणो यदि। सेवते मुनिशार्दूल सान्वयो याति संक्षयम् ॥ १६ ॥ परदाराभिगमनं कुरुते यो द्विजाधमः। सन्ततिर्न भवेत्तस्य फलं जन्मार्जितं नहि ॥ १७ ॥ गुरुणा सह विप्रैश्च योऽहङ्कारेण वर्तते। सुकृतं नश्यते शीघ्रं धनं नाप्नोति सन्ततिम् ॥ १८ ॥ आचारभ्रष्टदेहानां वृषलीगामिनां तथा। दुर्जनं सेवमानानां धर्मस्तेषां पराङ्मुखः ॥ १९ ॥ पतितैः सह सङ्गं च तद्गृहे गमनं तथा। ये कुर्वन्ति नृपश्रेष्ठ ते गच्छन्ति यमा-

दूसरोंको स्त्रियोंमें गमन करता है। उसको सन्तान नहीं होती और उसका पूर्वजन्मका उपार्जित पुण्य भी नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥ जो गुरु और ब्राह्मणके साथ अहंकार करता है। उसका पुण्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और उसको धन तथा संतान की प्राप्ति भी नहीं होती ॥ १८ ॥ जिनके शरीर आचारसे भ्रष्ट हो गये हैं, जो शूद्रीमे गमन करते हैं तथा जो

दुर्जनकी सेवा करते हैं, इन सबका धर्म नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जो मनुष्य पतितोके साथ संगति करते हैं तथा उनके घर जाते हैं, वे यमलोक (नरक) को जाते हैं ॥ २० ॥ हे वत्स ! जिन मनुष्योंका धर्म अतिथिके लिए स्वागत न करनेसे, आसन न देनेसे और भोजन न करानेसे नष्ट हो गया है । उनकी कीर्ति, आयु, सन्तान और सुख ये निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं

लये ॥ २० ॥ धर्मो नष्टो नृणां येषां स्वागतासनभोजनैः । तेषां वै नश्यते वत्स कीर्तिरायुः प्रजा-स्सुखम् ॥ २१ ॥ साधूनामपमानं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः । त्रिवर्गफलहीनास्ते दह्यन्ते नरकाग्निना ॥ २२ ॥ कृत्वाऽवमानं साधूनां ये हृष्यन्ति नराधमाः । वारयन्ति न ये मूढास्ते पश्यन्ति कुल-क्षयम् ॥२३॥ आचारभ्रष्टदेहस्य पिशुनस्य शठस्य च । ददतो जुह्वतो वापि गतिस्तस्य न विद्यते ॥२४॥ तस्मान्न त्वाचरेत्किञ्चिदशुभं लोकगर्हितम् । सदाचारवता भाव्यं यथा धर्मो न नश्यति ॥ २५ ॥ ये

॥ २१ ॥ जो नीच पुरुष साधुओंका अपमान करते हैं । वे धर्म, अर्थ, काम, आदि त्रिवर्गसे रहित होकर नरककी अग्निमे जलाये जाते हैं ॥ २२ ॥ जो मनुष्य साधुओंका अपमान करके प्रसन्न होते हैं वे नीच हैं । और जो उनको नहीं रोकते हैं वे मूर्ख हैं तथा उनका वंश नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ आचारसे भ्रष्ट शरीरवाले, चुगली करनेवाले और धूर्त्तोंको दान तथा हवन करनेपर भी श्रेष्ठ गति नहीं प्राप्त होती ॥ २४ ॥ इसलिए कुछ भी अशुभ और लोकनिन्दित कर्म न करे ।

सदा सदाचारपूर्वक रहे जिससे धर्म नष्ट न हो ॥ २५ ॥ जो मनुष्य मनमें विचारते हैं कि हम प्रबोधिनीका व्रत करेंगे। उनके सौ जन्म पहले के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २६ ॥ और जो प्रबोधिनी एकादशीके दिन रात्रिमें जागरण करता है वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान के दश सहस्र कुलोंको शीघ्र ही विष्णुलोकमे ले जाता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार व्रत करनेवाले

ध्यायन्ति मनोवृत्त्या करिष्यामः प्रबोधिनीम्। तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ २६ ॥
समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायुतम्। विष्णुलोकं नयत्याशु प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ २७ ॥
वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेऽत्यलंकृताः। विमुक्ता नारकैर्दुःखैः पूर्वकर्मसमुद्भवैः ॥ २८ ॥
कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः। कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौतपापो भवेन्मुने ॥ २९ ॥
दुष्प्राप्यं यत्फलं रम्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः। प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ ३० ॥

के पितर विष्णुलोकमें प्रसन्नता और अलंकारसे युक्त होकर वास करते हैं। और पूर्व जन्मके दुष्कर्मोंसे पैदा हुए नरकके दुखोंसे छूट जाते हैं ॥ २८ ॥ हे मुनि! ब्रह्महत्यादि घोर पाप करनेपर भी जो मनुष्य प्रबोधिनोकी रात्रिमें जागरण करता है उसके ये पाप दूर हो जाते हैं ॥ २९ ॥ जो सुन्दर फल अश्वमेधादि यज्ञोंसे भी दुर्लभ है वह प्रबोधिनीके जागरणसे अनायास ही मिल जाता है ॥ ३० ॥ सब तीर्थोंमें स्नान करने तथा गौ, सुवर्ण और पृथिवीका दान करनेसे भी मनुष्य उस फलको प्राप्त नहीं होता

जिस फलको एकादशीके दिन जागरण करनेसे प्राप्त करता है ॥ ३१ ॥ हे मुनिराज ! संसारमे वही सौभाग्यशाली उत्पन्न हुआ, और उसीने कुलको पवित्र किया है जिसने कि कार्त्तिकमें प्रबोधिनीका व्रत किया है ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार मनुष्योंकी मृत्यु निश्चय है उसी प्रकार धननाश भी निश्चय है। हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा जानकर एकादशीका व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ३३ ॥

आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु दत्त्वा गाः काञ्चनं महीम्। न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः ॥ ३१ ॥
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम्। कार्त्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥ ३२ ॥
यथा ध्रुवं नृणां मृत्युर्धननाशस्तथा ध्रुवः। इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं वैष्णवं दिनम् ॥ ३३ ॥
यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये सम्भवन्ति च। तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम् ॥३४॥
सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः। उपोष्यैकादशी रम्या कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥ ३५ ॥
स ज्ञानी स च योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः। भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति ह्युपास्ते हरिबोधिनीम्

तीनों लोकोंमे जितने तीर्थ हैं वे सब अच्छी प्रकार प्रबोधिनीका व्रत करने वाले के घर मे वास करते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिए सब कर्मोंको छोड़कर विष्णुकी प्रसन्नताके लिए कार्त्तिकके महीनेमे उत्तम हरिबोधिनी (देवउठनी) एकादशीका व्रत करना चाहिये ॥ ३५ ॥ वही ज्ञानी है, वही योगी है, वही तपस्वी है और वही जितेन्द्रिय है तथा उसीका भोग और मोक्ष है

जो हरिबोधिनीका व्रत करता है ॥ ३६ ॥ यह एकादशी विष्णुको अतिशयप्रिय है और धर्मतत्त्वको देनेवाली है। इसका एक बार ही व्रत करके मनुष्य मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ मनुष्य प्रबोधिनीका व्रत करके जन्म मरणके लिए फिर गर्भमें प्रवेश नहीं करता है। हे नारद ! अतः सब धर्मोंको छोड़कर इसका व्रत करना चाहिए ॥ ३८ ॥ जो पाप मन, कर्म, और

॥ ३६ ॥ विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी। सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक् च भवेन्नरः ॥ ३७ ॥ प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भे विशते नरः। सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद ॥ ३८ ॥ कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम्। तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ ३९ ॥ स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम्। नरैर्यत्क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥ ४० ॥ येऽर्चयन्ति नरास्तस्यां भक्त्या देवं च माधवम्। समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्ते शतजन्मभिः ॥ ४१ ॥ महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम्। प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत् ॥ ४२ ॥

वचनसे इकट्ठा किया है उसे गोविन्द भगवान् प्रबोधिनीकी रात्रिमें जागरण करनेसे ही दूर कर देते हैं ॥ ३९ ॥ हे वत्स ! प्रबोधिनी एकादशीके दिन भगवान्के निमित्त मनुष्य जो स्नान, दान, जप, और होम करता है वह अक्षय (नाशरहित) हो जाता है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य प्रबोधिनी एकादशीके दिन भक्तिके साथ माधव भगवान्की पूजा करते हैं तथा व्रत करते हैं वे

सौ जन्मके पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे पुत्र ! यह महाव्रत पापोके समूहको नष्ट करने वाला है। इसलिये विष्णुके उठनेके दिन विधिपूर्वक व्रत करे ॥ ४२ ॥ मनुष्य इस प्रबोधिनीके व्रतसे जनार्दन भगवान्‌को प्रसन्न करके सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ विष्णुके धामको जाता है ॥ ४३ ॥ हे मनुष्योंमे श्रेष्ठ ! कान्ति चाहने वाले मनुष्योंको कार्त्तिक महीनेमें द्वादशी युक्त एकादशीका व्रत यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ ४४ ॥ हे पुत्र ! बाल्यावस्थामें, युवावस्थामे तथा वृद्धपनमे

व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम्। विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति भवनं हरेः ॥ ४३ ॥
कर्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कांतिमभीप्सुभिः। द्वादशी द्विपदां श्रेष्ठ कार्तिके तु प्रबोधिनी ॥ ४४ ॥
बाल्ये यच्चार्जितं वत्स यौवने वार्धके तथा। शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ४५ ॥
शुष्कमार्द्रं मुनिश्रेष्ठ स्वगुह्यमपि नारद। तत्क्षालयति गोविन्दमस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ॥ ४६ ॥
धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा। तामुपोष्य हरेर्भक्त्या दुर्लभं न भवेत्क्वचित् ॥ ४७ ॥ चन्द्र-

जो सौ जन्मके पाप इकट्ठे हो गये हैं वे थोड़े हैं या बहुत हैं ॥ ४५ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! हे नारद ! जो पाप शुष्क, गीला और छिपानेके योग्य है, उसको मनुष्य भक्तिपूर्वक गोविन्द भगवान्‌की पूजा करके दूर कर देता है ॥ ४६ ॥ यह एकादशी धन-धान्यको देने वाली, पवित्र और पापोंको नाश करने वाली है। इसका भक्तिके साथ व्रत करने पर संसारमें कोई वस्तु

सूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ ४८ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः । तत्सर्वं कोटितुल्यं तु प्रबोधिन्यां तु यत्कृतम् ॥ ४९ ॥ जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणाभ्यर्जितं भवेत् । वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिकव्रतम् ॥ ५० ॥ अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः । जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं नाप्नोति नारद ॥ ५१ ॥ तस्मात्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः । उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥ ५२ ॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः । परान्नवर्जनाद्वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ ५३ ॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्न

अप्राप्य नहीं है ॥ ४७ ॥ चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें जो फल कहा है उससे हजार गुना फल प्रबोधिनी एकादशीके जागरणसे मिलता है ॥ ४८ ॥ प्रबोधिनीके दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, और भगवान्‌का पूजन करनेसे करोड़ गुना अधिक फल मिलता है ॥ ४९ ॥ प्रबोधिनीका व्रत किये विना मनुष्यका जन्मभरका किया हुआ पुण्य वृथा होता है ॥ ५० ॥ हे नारद ! जो मनुष्य विष्णु भगवान्‌का नियम व्रत किये विना कार्त्तिकके महीनेको व्यतीत करता है, वह जन्मभरके इकट्ठे किये हुए पुण्यका फल नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ इसलिए हे नारद ! तुमको यत्न पूर्वक सब कामनाओंके फलको देने वाले जनार्दन भगवान्‌का पूजन करना चाहिए ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! जो मनुष्य विष्णु भक्त होकर कार्त्तिकमे दूसरेके अन्नको त्याग देता

है वह अवश्य ही चान्द्रायण व्रतके फलको पाता है ॥ ५३ ॥ कार्त्तिक मासमें मधुसूदन भगवान् यज्ञ और हाथी आदिके दानसे उस प्रकार प्रसन्न नहीं होते हैं जैसे कि शास्त्र और कथाओं को कहनेसे प्रसन्न होते हैं ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य कार्त्तिकमासमे विष्णुकी कथाका एक श्लोक या आधा श्लोक ध्यानपूर्वक कहते या सुनते हैं उन्हें सौ गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

दानैर्वा गजादिभिः । यथा शास्त्रकथालापैः कार्तिके मधुसूदनः ॥ ५४ ॥ ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति समाहिताः । श्लोकं वा श्लोकपादं वा कार्तिके गोशतं फलम् ॥ ५५ ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य ममाग्रे कार्तिके नरैः । शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च सदा मुने ॥ ५६ ॥ श्रेयसां लोभबुद्ध्या वा यः करोति हरेः कथाम् । कार्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५७ ॥ नित्यं शास्त्रविनोदेन कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः । निर्दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् ॥ ५८ ॥ नियमेन नरो यस्तु शृणुते

हे मुने ! कार्त्तिक मासमे सब धर्मोंको छोड़कर मनुष्योको मेरे आगे शास्त्रोंका अवधारण और श्रवण करना चाहिए ॥ ५६ ॥ हे मुनिराज ! जो मनुष्य कार्त्तिकमासमे विष्णुकी कथाको कल्याण या लोभकी बुद्धिसे करता है वह अपने सैकड़ों कुलोंको तार देता है ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य नित्य शास्त्रोंके पठन-पाठनसे कार्त्तिकमासको व्यतीत करता है वह सब पापोंको जलाकर दसहज़ार यज्ञोंके फलको प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥ जो पुरुष विशेष करके कार्त्तिकमासमें विष्णुकी कथाको नियमसे सुनता है

उसे हज़ार गौ दानका फल मिलता है ॥ ५९ ॥ हे मुनि ! जो प्रबोधिनीके दिन विष्णु भगवान्‌की कथाको कहता है वह सप्तद्वीपसे युक्त भूमिदानके फलको प्राप्त करता है ॥ ६० ॥ हे मुनिराज ! जो विष्णुकी सुन्दर कथाको सुनकर अपनी शक्तिके अनुसार कथावाचकका पूजन करते हैं उनको भगवान्‌का सनातन लोक मिलता है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी के वचन सुनकर

वैष्णवीं कथाम् । कार्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५९ ॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो
हरेः कथाम् । सप्तद्वीपवतीदाने तत्फलं लभते मुने ॥ ६० ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति
कथाविदम् । स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकाः सनातनाः ॥ ६१ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत् ।
नारद उवाच । विधानं ब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्याः सुरोत्तम ॥६२॥ चीर्णेन येन भगवन् यादृशं फलमाप्नु-
यात् । नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां
द्विजोत्तम । स्नानं चैव प्रकर्त्तव्यं दंतधावनपूर्वकम् ॥ ६४ ॥ नद्यां तडागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैव

नारदजी फिर कहने लगे । नारद बोले—हे स्वामिन् ! हे देवश्रेष्ठ ! मुझे इस एकादशीका विधान बतलाइये ॥ ६२ ॥ जिसके करनेसे हे भगवन् ! ऐसा फल प्राप्त होवे । नारदजीका वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा ॥ ६३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे द्विजोत्तम ! एकादशीके दिन ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठकर दाँतुन आदि करके स्नान करना चाहिए ॥ ६४ ॥ स्नान नदीमें या तालाबमें

अथवा कूपमे वा बावड़ीमे अथवा घरमे ही करे और केशव भगवान्का पूजन करके कथाका श्रवण करे ॥ ६५ ॥ और हे महाभाग ! नियमके लिए इस मंत्रका उच्चारण करे । कि मैं एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीके दिन ॥ ६६ ॥ भोजन करूँगा और हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मेरी रक्षा करो । देवताओके देव चक्रपाणि भगवान्के मन्त्रका उच्चारण करे

च । केशवञ्चैव संपूज्य कथायाः श्रवणं तथा ॥ ६५ ॥ नियमार्थे महाभाग इमं मंत्रमुदीरयेत् । एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ॥ ६६ ॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत । अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ६७ ॥ भक्तिभावेन तुष्टात्मा ह्युपवासं समर्पयेत् । रात्रौ जागरणं काय देवदेवस्य सन्निधौ ॥ ६८ ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च तथा कृष्णकथां मुने । यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ॥ ६९ ॥ बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः । हरेः पूजा विधातव्या कार्तिक्यां बोधवासरे ॥ ७० ॥ वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे । यस्मात्पुण्यमसं-

॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् भक्तिभावसे प्रसन्न चित्त होकर उपवासको भगवान्मे अर्पण करे । फिर देवेश भगवान्के पास रात्रिमे जागरण करे ॥ ६८ ॥ ॥ हे मुने ! जो प्रबोधिनीके दिन नृत्य, गान, वाद्य और कृष्णकी कथाको करता है वह पुण्यात्मा तीनों लोकोंके ऊपर स्थित रहता है ॥ ६९ ॥ कार्त्तिकमे एकादशीके दिन बहुत से फूल, फल, और कपूर, अगर तथा

ख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥ ७१ ॥ फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे । शङ्खे तोयं समादाय ह्यर्घो देयो जनार्दने ॥ ७२ ॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वार्घं बोधवासरे ॥ ७३ ॥ अगस्त्यकुसुमैर्दिव्यैः पूजयेद्यो जनार्दनम् । देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ करोति करसंपुटम् ॥ ७४ ॥ न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः । यत्करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलंकृतः ॥ ७५ ॥ बिल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्त्तिके कलिवर्धन । पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां

केशरसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए ॥ ७० ॥ और एकादशीके आने पर कृपणता न करे । हे मुनिश्रेष्ठ ! कृपणता नहीं करनेसे मनुष्य असंख्य पुण्यको प्राप्त करता है ॥ ७१ ॥ प्रबोधिनी एकादशीको जागरणके समय अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंसे पूजा करे । और शंखमें जल भरकर जनार्दन भगवान्‌को अर्घ देवे ॥ ७२ ॥ जो फल सब तीर्थोंमें और जो फल सब दानोंमें है उससे करोड़ गुना अधिक फल प्रबोधिनीके दिन भगवान्‌को अर्घ देनेसे मिलता है ॥ ७३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो अगस्तके सुन्दर पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा करता है । उसको इन्द्रदेव भी हाथ जोड़ते हैं ॥ ७४ ॥ हे नारद ! तपस्यासे संतुष्ट हरि भगवान् भी वह बात नहीं करते हैं, जो कि अगस्त्यके फूलोंसे सुशोभित हृषीकेश भगवान् करते हैं ॥ ७५ ॥ हे कलिसमुच्छेदक ! जो कार्त्तिकमें बड़ी भक्तिसे बिल्वपत्रोंसे कृष्णकी पूजा करते हैं उनको मेरी कही हुई मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ७६ ॥ हे वत्स ! जो कार्त्तिकमें

तुलसीदल और पुष्पोंसे भगवान्‌को पूजा करते हैं उनके दशहजार वर्ष पूर्वके सभी पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं ॥ ७७ ॥ मनुष्योंसे देखी हुई, स्पर्श की हुई, ध्यान की हुई, नमस्कार की हुई, स्तुति की हुई, कीर्तन की गई, लगाई हुई, सींची हुई, और नित्य पूजा की हुई तुलसी कल्याणको देती है ॥ ७८ ॥ जो प्रतिदिन तुलसीको नौ प्रकारकी भक्ति करते हैं वे हजार

मयोदिता ॥ ७६ ॥ तुलसीदलपुष्पैश्च पूजयन्ति जनार्दनम् । कार्त्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ॥ ७७ ॥ दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता । रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ ७८ ॥ नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने । युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥ ७९ ॥ रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम् । यावद्युगसहस्राणि तनोति सुकृतं मुने ॥८०॥ यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने । रोपिता तुलसो पुंभिर्वर्धते वसुधातले ॥ ८१ ॥ कुले तेषां तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः । आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥ ८२ ॥ कदम्बकुसुमै-

करोड़ युग पर्यन्त विष्णु लोकमे वास करते है ॥ ७६ ॥ हे मुने ! पृथिवीमे लगाई हुई तुलसीकी जितनी जड़ फैलती हैं। उतने ही हजार युग तक लगाने वालेके पुण्यका विस्तार करती है ॥ ८० ॥ हे मुने ! पुरुषोंसे लगाई हुई तुलसी पृथिवी पर जब तक शाखा, प्रशाखा, बीज, पुष्प और पत्तोंके द्वारा बढ़ती है ॥ ८१ ॥ तब तक लगाने वालों के कुलमे जो उत्पन्न हुए

हैं और आगे होंगे, तथा जो भूतकालमें हो गये हैं उनका वास हजारों कल्पतक हरिके धाममे होता है ॥ ८२ ॥ जो
मनुष्य कदम्बके पुष्पोंसे जनार्दन भगवान्की पूजा करते हैं उनको भगवान्की कृपासे यमराजके यहाँ नहीं जाना पड़ता है
॥ ८३ ॥ हे नारद ! कदम्बके पुष्पोंको देखकर ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं । तब फिर पूजनसे तो अवश्य ही सब कामनाओंको

देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम् । तेषां यमालयो नैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ८३ ॥ दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं
प्रीतो भवति केशवः । किं पुनः पूजितो विप्र सर्वकामप्रदो हरिः ॥ ८४ ॥ यः पुनः पाटलापुष्पैः
कार्तिके गरुडध्वजम् । अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेद्धि सः ॥ ८५ ॥ बकुलाशोककुसुमैर्येऽ-
र्चयन्ति जगत्पतिम् । विशोकास्ते भविष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८६ ॥ येऽर्चयन्ति जगन्नाथं कर-
वीरैः सितासितैः । चतुर्युगानि विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ॥ ८७ ॥ मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि

पूरी करते हैं ॥ ८४ ॥ और फिर जो पाटलाके पुष्पोंसे कार्त्तिकमें परम भक्तिके साथ भगवान्की पूजा करता है वह मोक्षको
प्राप्त हो जाता है ॥ ८५ ॥ जो मौलसिरी और अशोकके पुष्पोंसे भगवान्की पूजा करते हैं वे चन्द्रमा और सूर्यके रहने तक
शोकहीन हो जाते हैं ॥ ८६ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जो सफेद और लाल कन्नेरके पुष्पोंसे जगत्पतिकी पूजा करते हैं उनसे भगवान्
चार युगों तक प्रसन्न रहते हैं ॥ ८७ ॥ और जो मनुष्य भगवान्के ऊपर आमकी मंजरी (बौर) चढ़ाते हैं वे महाभाग

करोड़ गोदानके फलको प्राप्त करते है ॥ ८८ ॥ जो पूजाके समय दूर्वासे हरि भगवान्की पूजा करते हैं उनको भली प्रकारसे पूजाका सौ गुना फल मिलता है ॥ ८९ ॥ हे नारद ! सुख देने वाली भगवान्की पूजा जो मनुष्य शमीपत्रोंसे करते हैं वे महाघोर यमके मार्गसे पार हो जाते है ॥ ९० ॥ जो वर्षाकालमें भगवान्की पूजा चम्पाके पुष्पोंसे करते हैं वे

ये नराः । यच्छन्ति ते महाभागा गोकोटिफलभागिनः ॥ ८८ ॥ दूर्वाङ्कुरैर्हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति । पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति मानवः ॥ ८९ ॥ शमीपत्रैस्तु ये देवं पूजयन्ति सुखप्रदम् । यममार्गो महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ॥ ९० ॥ वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः । येऽर्चयन्ति न ते मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे ॥ ९१ ॥ कुम्भीपुष्पं तु विप्रर्षे ये यच्छन्ति जनार्दनम् । सुवर्णपलमात्रं ते लभन्ते वै फलं मुने ॥ ९२ ॥ सुवर्णकेतकीपुष्पं यो ददाति जनार्दने । कोटिजन्मार्जितं पापं दहते गरुडध्वजः ॥ ९३ ॥ कुङ्कुमारुणवर्णां च गन्धाढ्यां शतपत्रिकाम् । यो ददाति

मनुष्य फिर संसारमे जन्म नहीं लेते ॥ ९१ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! जो मनुष्य पाटलाके पुष्पोंसे जनार्दनकी पूजा करते हैं वे एक पल स्वर्ण चढ़ानेके फलको प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ जो पीली केतकी के फूल भगवान् पर चढ़ाते हैं उनके करोड़ों जन्मके इकट्ठे किये हुए पापोंको भगवान् भस्म कर देते हैं ॥ ९३ ॥ जो केशरके समान लाल वर्णकी शतपत्रिका (सौपत्ते) को गन्ध

युक्त करके जगन्नाथजीको अर्पण करता है वह श्वेतद्वीपमे वास करता है ॥ ६४ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भोग और मोक्षको देने वाले केशव भगवान्‌की रात्रिमे पूजा करके फिर प्रातःकाल उठकर जलवाली नदीमें जावे ॥ ६५ ॥ और वहाँ नदीमे स्नान, जप आदि प्रातःकालकी क्रिया करके घर आवे और घरमे विधिपूर्वक केशव भगवान्‌की पूजा करे ॥ ६६ ॥ और

जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥ ९४ ॥ एवं सम्पूज्य रात्रौ च केशवं भुक्तिमुक्तिदम् । प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥ ९५ ॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पूर्वाह्णिकीः क्रियाः । गृहे गत्वा च सम्पूज्यः केशवो विधिवन्नरैः ॥ ९६ ॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान् भोजयेत्सुधीः । क्षमापयेच्च शिरसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ९७ ॥ गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः । दक्षिणा तैश्च दातव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ ९८ ॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥ ९९ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।

बुद्धिमान् पुरुष व्रतके समाप्त होने पर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और भक्तियुक्त चित्तसे शिरसे क्षमापन करे ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् भोजन और वस्त्रादिकोंसे गुरुकी पूजा करे और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिए गुरुको दक्षिणा देवे ॥ ९८ ॥ फिर प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको बहुतसी दक्षिणा देवे और उनके सामने किये हुए व्रत-नियमका यथाशास्त्र त्याग करे ॥ ९९ ॥ और

आमंत्रित कर ब्राह्मणोंके लिए यथाशक्ति दक्षिणा देवे। हे राजन्! रात्रिमे भोजन करनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १०० ॥ और अयाचित व्रतमे सुवर्णसहित बलवान् बैलका दान करे और चार महीने मांस न खानेवाला मनुष्य दक्षिणासहित गौका दान करे ॥ १०१ ॥ हे राजन्! आमलोंसे स्नान करनेवाला मनुष्य दही और शहदका दान करे

नक्तभोजी नरो राजन्ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ॥ १०० ॥ अयाचिते बलीवर्दं सहिरण्यं प्रदापयेत्। अमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गां सदक्षिणाम् ॥ १०१ ॥ धात्रीस्नायी नरो दद्याद्दधिमाक्षिकमेव च। फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥ १०२ ॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृतस्थाने पयः स्मृतम्। धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥ १०३ ॥ दद्याद्भूशयने शय्यां सतूलां सपरिच्छदाम्। पत्रभोजी नरो राजन् भाजनं घृतसंयुतम् ॥ १०४ ॥ मौने घण्टां तिलांश्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत्। दंपत्योर्भोजनं देयं निःस्नेहं सर्पिषा युतम् ॥ १०५ ॥ धारणेन स्वकेशानामादर्शं दाप-

और फलोंके नियममें फलोंका ही दान करे ॥ १०२ ॥ और हे राजन्! तेलके स्थानमें घीका दान और घीके स्थानमें दूधका दान करे। तथा धान्यके व्रतमें चावलोंका दान करें ॥ १०३ ॥ पृथिवीमे सोने का व्रत करने पर रजाई, तोशक और वस्त्रोंके सहित शय्याका दान करे। तथा हे राजन्! पत्तोंको खानेवाला घीसे युक्त पात्रका दान करे ॥ १०४ ॥ मौन व्रतमे

सुवर्णसहित घण्टा और तिलोंका दान देवे। तथा घीके व्रतमें स्त्री–पुरुषको घृतयुक्त भोजन कराने ॥ १०५ ॥ बुद्धिमान्
पुरुष केशोंके रखानेमें दर्पण (शीशे) का दान करे और जूता न पहनने पर जूतोंका दान देवे ॥ १०६ ॥ नमकके
छोड़ने पर खाँड़का दान करे और जिसने नित्य विष्णु या देवस्थानमें दीपक जलाया हो ॥ १०७ ॥ वह व्रतके संपूर्ण

येद्बुधः। उपानहौ प्रदातव्ये उपानत्परिवर्जनात् ॥ १०६ ॥ लवणस्य च संत्यागे शर्करां च प्रदा-
पयेत्। नित्यं दीपः प्रदेयस्तु विष्णोर्वा विबुधालये ॥ १०७ ॥ सदीपं सघृतं ताम्रं कांचनं वा दशा-
युतम्। प्रदद्याद्विष्णुभक्ताय संपूर्णव्रतहेतवे ॥ १०८ ॥ एकांतरोपवासे तु कुम्भानष्टौ प्रदापयेत्।
सवस्त्रान् कांचनोपेतान्सर्वान् सालंकृताञ्छुभान् ॥ १०९ ॥ सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना।
द्विजवाक्यं स्मृतं राजन्संपूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥ ११० ॥ नत्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम्।

होनेके लिए विष्णुभक्तके लिए घृतसहित ताँबे या सोनेका दीपक-वत्ती बनवाकर दान करे ॥ १०८ ॥ जिसने एक
दिनके अन्तरसे व्रत किया हो वह आठ कुम्भों (कलशों) को वस्त्र और सुवर्णसे सजाकर दान करे ॥ १०९ ॥
हे राजन्! यदि कही हुई विधिके अनुसार वस्तुओं का अभाव हो तो व्रतके संपूर्ण होनेके लिए ब्राह्मणोंका आशीर्वाद
लेवे ॥ ११० ॥ तत्पश्चात् नमस्कार करके ब्राह्मणोंको विदा करे, फिर आप भोजन करे और चातुर्मास्यमें जिस

वस्तुका त्याग किया हो उसका ग्रहण करे ॥ १११ ॥ हे राजेन्द्र ! जो चतुर मनुष्य इस प्रकार करता है वह अनन्त फलको प्राप्त होता है और अन्तमे विष्णुलोकको जाता हैं ॥ ११२ ॥ हे युधिष्ठिर ! जो चतुर्मासके व्रतको निर्विघ्न पूरा करता है वह कृतकृत्य होकर फिर जन्म नही लेता ॥ ११३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार करनेसे व्रत पूर्ण हो जाता है। यदि व्रतभंग हो

यत्त्यक्तं चतुरो मासान्समाप्तिं तस्य चाचरेत् ॥ १११ ॥ एवं य आचरेत्प्राज्ञः सोऽनन्तफलमाप्नुयात्। अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत् ॥ ११२ ॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैवं चातुर्मास्यव्रतं नृप। स भवेत् कृतकृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥ ११३ ॥ एतत्कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रतं भवेत्। व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यंधः कुष्ठी प्रजायते ॥ ११४ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया। पठनाच्छ्रवणाद्वापि लभेद्गोदानजं फलम् ॥ ११५ ॥

जाय तो व्रती अन्धा या कोढ़ी होता है ॥ ११४ ॥ हे युधिष्ठिर ! तुमने मुझसे जो व्रत पूछा था वह सब मैंने तुमसे कह दिया। इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य गोदानके फलको प्राप्त होता है ॥ ११५ ॥

इति श्रीस्कंदपुराणे कार्तिकशुक्लैकादशीप्रबोधिनीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २४ ॥



युधिष्ठिर बोले कि हे जनार्दन! मलमासके शुक्ल पक्षमे कौन-सी एकादशी होती है। उसका क्या नाम और कैसी विधि है वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि मलमासमें जो पवित्र एकादशी होती है उसका नाम पद्मिनी है। उसका यत्नपूर्वक व्रत करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको जाता है ॥ २ ॥ मेरे मासकी यह एकादशी अतिपवित्र और पापोंका

अथाधिकमासशुक्लैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच। मलिम्लुचस्य मासस्य का वा एकादशी भवेत्। किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच। मलमासस्य या पुण्या प्रोक्ता नाम्ना च पद्मिनी। सोपोषिता प्रयत्नेन पद्मनाभपुरं नयेत् ॥ २ ॥ मम मासे महापुण्या कीर्तिता कल्मषापहा। तस्याः फलं कथयितुं न शक्तश्चतुराननः ॥ ३ ॥ नारदाय पुरा प्रोक्तं विधिना व्रतमुत्तमम्। पद्मिन्याः पापराशिघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४ ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुरारेस्तु प्रोवाचातिमुदान्वितः। युधिष्ठिरो

नाश करनेवाली कही गई है। इसके फलको कहनेके लिये ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥ पहले ब्रह्माजीने पापोंके समूहको नष्ट करनेवाला और मुक्ति तथा भुक्तिके फलको देनेवाला इस पद्मिनीका उत्तम व्रत नारदसे कहा था ॥ ४ ॥ भगवान् के वचन सुनकर धर्मज्ञ युधिष्ठिरजी प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजीसे व्रतकी विधि पूछने लगे ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरका वचन सुनकर प्रीतिसे

खिले हुये नेत्रवाले भगवान् बोले—हे युधिष्ठिर! सुनो, मैं मुनियोंसे भी अदृष्ट व्रतको कहता हूँ ॥ ६ ॥ यह व्रत दशमीके दिनसे आरम्भ किया जाता है। दशमीके दिन काँसेके पात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चना तथा कोदों ॥ ७ ॥ साग, शहद और पराया अन्न, इन आठ वस्तुओंको छोड़ दे और जौ, चावल आदि हविष्य अन्नका भक्षण करे तथा खारी नमक न खावे ॥ ८ ॥

जगन्नाथं विधिं पप्रच्छ धर्मवित् ॥ ५ ॥ श्रुत्वा राज्ञस्तु वचनं प्रीत्युत्फुल्लांबुजेक्षणः। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि मुनीनामप्यगोचरम् ॥ ६ ॥ दशमीदिवसे प्राप्ते व्रतारम्भो विधीयते। कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥ ७ ॥ शाकं मधु परान्नं च दशम्यामष्ट वर्जयेत्। हविष्यान्नं चभुञ्जी त अक्षारलवणं तथा ॥ ८ ॥ भूमिशायी ब्रह्मचारी भवेच्च दशमीदिने ॥ ९ ॥ एकादशीदिने प्राप्ते प्रातरुत्थाय सादरम्। विधाय च मलोत्सर्गं न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ १० ॥ कृत्वा द्वादश गण्डूषाञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः। सूर्योदये शुभे तीर्थे स्नानार्थं प्रव्रजेत् सुधीः ॥ ११ ॥ गोमयं मृत्तिकां गृह्य तिलान् दर्भाञ्छु-

दशमीके दिन पृथिवीपर सोवे तथा ब्रह्मचर्यसे रहे ॥ ९ ॥ एकादशीके दिन आदरपूर्वक प्रातःकाल उठकर मलका त्याग करे, किन्तु दाँतुन न करे ॥ १० ॥ बुद्धिमान् पुरुष बारह कुल्ला करके शुद्ध तथा सावधान हो जावे और सूर्योदयके समय शुभतीर्थमें स्नानके लिये जावे ॥ ११ ॥ वहाँ गोबर, मिट्टी, तिल, पवित्र कुशा तथा आमलेका चूरा लेकर शरीरमें

लगावे और विधिपूर्वक स्नान करे ॥ १२ ॥ और कहे कि हे मृतिके ! तू सौ भुजावाले वराहरूपी भगवान् कृष्णके द्वारा उठाई गई है, परशुरामजीसे ब्राह्मणोंको दी गई है तथा कश्यपजीसे अभिमन्त्रित की गई है ॥ १३ ॥ तू मेरे नेत्र तथा शिरमें लग कर मुझे पवित्र कर । हे मृत्तिके ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, तू मुझे विष्णुके पूजनके योग्य कर दे ॥ १४ ॥

चीर्तथा । चूर्णैरामलकीभूतैर्विधिना स्नानमाचरेत् ॥ १२ ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमंत्रिता ॥ १३ ॥ त्वं मे कुरु पवित्राङ्गं लग्ना नेत्रे शिरोरुहे । हरिपू-
जनयोग्यं मां मृत्तिके कुरु ते नमः ॥ १४ ॥ सर्वौषधिसमुत्पन्नं गवोदरमधिष्ठितम् । पवित्रकरणं भूमेर्मां
पावयतु गोमयम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मष्ठीवनसंभूता धात्री भुवनपावनी । संस्पृष्टा पावयांगं मे निर्मलं कुरु
ते नमः ॥ १६ ॥ देवदेव जगन्नाथ शंखचक्र गदाधर । देहि विष्णो ममानुज्ञां तव तीर्थावगाहने

हे भूमि ! सब ओषधियोंसे उत्पन्न, गौके उदरमे स्थित और पृथिवीको पवित्र करनेवाला गोबर मुझे पवित्र करे ॥ १५ ॥ ब्रह्माके थूकसे उत्पन्न और जगत्को पवित्र करनेवाली पृथिवी ! मैंने तेरा स्पर्श किया है अतः तू मेरे अङ्गोंको पवित्र और निर्मल कर, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ हे देवोंके देव ! हे जगत्पते ! हे शंख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले विष्णु ! मुझे अपने तीर्थमें स्नान करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ १७ ॥ फिर वरुणके मन्त्रोंका जाप और गंगा आदि तीर्थोंका

स्मरण करके किसी भी जलाशय मे विधिपूर्वक स्नान करे ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! फिर विधिसे मुख, पीठ, हृदय, बाहु, शिर और शरीरके नीचे के भागमे मार्जन करे, अर्थात् धोवे ॥ १९ ॥ तथा सुखकारी, सफेद, पवित्र और अखण्डित वस्त्रोको धारण करे। और फिर विष्णुकी पूजा करे जिससे कि महापाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥ विधिपूर्वक सन्ध्या करके

॥ १७ ॥ वारुणांश्च जपेन्मंत्रान्स्नानं कुर्याद्विधानतः। गंगादितीर्थं संस्मृत्य यत्र कुत्र जलाशये ॥१८॥ पश्चात्संमार्जयेद्गात्रं विधिना नृपसत्तम। मुखे पृष्ठे च हृदये बाह्वोः शिरसि चाप्यधः ॥ १९ ॥ परिधाय सुखं वासःशुक्लं शुचि ह्यखंडितम्। ततः कुर्याद्धरेः पूजां महापापं विनश्यति ॥ २० ॥ संध्यामुपास्य विधिना तर्पयेच्च पितॄन्सुरान्। हरेर्मंदिरमागत्य पूजयेत्कमलापतिम् ॥ २१ ॥ स्वर्णमात्रं कृतं देवं राधिकासहितं हरिम्। पार्वत्या सहितं देवं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ धान्योपरि न्यसेत् कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा। दिव्यवस्त्रसमायुक्तं दिव्यगन्धानुवासितम् ॥ २३ ॥ तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं

देवता और पितरोंका तर्पण करे, तत्पश्चात् भगवान्‌के मन्दिरमे जाकर विष्णुकी पूजा करे ॥ २१ ॥ स्वर्णके बने हुये राधा और कृष्ण तथा पार्वतीके सहित शिवका विधिपूर्वक पूजन करे ॥ २२ ॥ धान्यके ऊपर ताँबेका या मिट्टीका कलश स्थापित करे और उसे सुन्दर वस्त्रसे ढककर उत्तम गन्धादिसे सुगन्धित करे ॥ २३ ॥ उस कलशके ऊपर सुवर्ण, चाँदी अथवा

तॉबेका पात्र रखकर उसमें फिर भगवान्‌को स्थापित करे और विधिसे उनकी पूजा करे ॥ २४ ॥ गन्ध, धूप आदिसे सुवासित श्रेष्ठ जलसे स्नान करावे। और चन्दन, अगर, केशरसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ २५ ॥ अनेक प्रकारके पुष्प, कस्तूरी, केशर, सफेद कमल और उस ऋतुमें होनेवाले पुष्पोंसे भगवान्‌का पूजन करे ॥ २६ ॥ यथाशक्ति अनेक

रौप्यं हिरणमयम्। तस्मिन्संस्थापयेद्देवं विधिना पूजयेत्ततः ॥ २४ ॥ संस्नाप्य सलिलैः श्रेष्ठगंधधूपादि-वासितैः। चन्दनागुरुकर्पूरैः पूजयेद्देवमीश्वरम् ॥ २५ ॥ नानाकुसुमकस्तूरीकुंकुमेन सितांबुजैः। तत्कालजातैः कुसुमैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ २६ ॥ नैवेद्यैर्विविधैः शक्त्या तथा नीराजनादिभिः। धूपैर्दीपैः सकर्पूरैः पूजयेत्केशवं शिवम् ॥ २७ ॥ नृत्यं गीतं तदग्रे तु कुर्याद्भक्तिपुरःसरम्। नालपेत् पतितान्पापांस्तस्मिन्नहनि न स्पृशेत् ॥ २८ ॥ नानृतं हि वदेद्वाक्यं सत्यपूतं वचो वदेत्। रजस्वलां न स्पृशेच्च न निन्देद्ब्राह्मणं गुरुम् ॥ २९ ॥ पुराणं पुरतो विष्णोः शृणुयात्सह वैष्णवैः। निर्जला सा

प्रकारके मिष्टान्न तथा धूप-दीपके सहित कपूरकी आरतीसे विष्णु और शिवकी पूजा करे ॥ २७ ॥ उस दिन उनके आगे भक्तिपूर्वक नृत्य करे और गीत गावे, पतित तथा पापियोंके साथ न बातचीत करे और न उनका स्पर्श ही करे ॥ २८ ॥ उस दिन झूठ न बोले, सत्यसे पवित्र वचन बोले। रजस्वला स्त्रीका स्पर्श न करे और ब्राह्मण तथा गुरुकी निन्दा न

और मलमासके शुक्लपक्षकी एकादशीका निर्जल करे ॥ २९ ॥ विष्णुके सामने वैष्णवोंके साथ पुराणकी कथा सुने । व्रत करे ॥ ३० ॥ यदि निर्जल न रह सके तो जलपान या दुग्धपान कर ले और रात्रिमें गीत-वाद्यसे युक्त जागरण करे ॥ ३१ ॥ पहले प्रहरमे नारियल-जलके अर्घकी, दूसरे प्रहरमे बिल्वफलकी, तीसरे प्रहरमें बिजौरा नीबूकी ॥ ३२ ॥ और

प्रकर्तव्या या च शुक्ले मलिम्लुचे ॥ ३० ॥ जलपानेन वा कुर्याद्दुग्धाहारेण नान्यथा । रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रसंयुतम् ॥ ३१ ॥ प्रथमे प्रहरे पूजा नारिकेलार्घमुत्तमम् । द्वितीये श्रीफलैश्चैव तृतीये बीजपूरकैः ॥ ३२ ॥ चतुर्थे पूजयेत्पूगैर्नारंगैश्च विशेषतः । प्रथमे प्रहरे पुण्यमग्निष्टोमस्य जायते ॥ ३३ ॥ द्वितीये वाजपेयस्य तृतीये हयमेधजम् । चतुर्थे राजसूयस्य जाग्रतो जायते फलम् ॥ ३४ ॥ नातः परतरं पुण्यं नातः परतरा मखाः । नातः परतरा विद्या नातः परतरं तपः ॥ ३५ ॥ पृथिव्यां

चौथे प्रहरमे सुपारीकी पूजा उत्तम है, विशेषकरके नारङ्गीकी पूजा उत्तम है । पहले प्रहरके जागरणसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥ ३३ ॥ दूसरेसे वाजपेय यज्ञका, तीसरेसे अश्वमेधयज्ञका और चौथे प्रहरसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ न इससे अधिक कोई पुण्य है न कोई यज्ञ है । न इससे बढ़कर कोई विद्या और न कोई तपस्या हो है ॥ ३५ ॥ जिसने इस भगवान्की एकादशीका व्रत किया है उसने पृथिवीके सम्पूर्ण तीर्थ, क्षेत्र और स्थान देख लिये,

कृतवीर्य नामका बड़ा भारी राजा हुआ ॥ ४९ ॥ उस राजाके यहाँ प्राणोंको प्रिय लगनेवाली हजार रानियाँ थीं । किन्तु उन रानियों में किसीसे भी राज्यको धारण करनेवाले राजाने पुत्र नहीं प्राप्त किया ॥ ५० ॥ बड़े-बड़े देवता, पितर, सिद्ध और वैद्यों की पूजा करते हुए और उनके कहनेसे व्रत करते हुए भी राजाको पुत्र नहीं हुआ ॥ ५१ ॥ पुत्रके विना राजाको राज्य

श्रुत्वा पुलस्त्यो मुनिमब्रवीत् । शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यसमुद्भवम् ॥ ४८ ॥ पुरा त्रेतायुगे ब्रह्मन् माहिष्मत्यां बृहत्तरः । हैहयानां कुले जातः कृतवीर्यो महीपतिः ॥ ४९ ॥ सहस्रं प्रमदास्तस्य नृपस्य प्राणवल्लभाः । न तासां तनयं कश्चिल्लेभे राजधुरंधरः ॥ ५० ॥ यजन्देवान्पितॄन् सिद्धान्प्रचिकित्सान् बृहत्तरान् । तेषां वाक्याद्व्रतं कुर्वन्न लब्धस्तनयस्तदा ॥ ५१ ॥ सुतं विना तदा राज्यं न सुखाय महीपतेः । क्षुधितस्य यथा भोगा न भवन्ति सुखप्रदाः ॥ ५२ ॥ विचार्य चित्ते नृपतिस्तपस्तप्तुं मनो दधे । तपसैव सदा सिद्धिर्जायते मनसेप्सिता ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वा सह धर्मात्मा चीरवासा जटा-

वैसे ही अच्छा नहीं लगता था, जैसे कि भूखे मनुष्यको भोग सुखदाई नहीं लगते ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् राजाने मनमे विचार कर तप करनेका निश्चय किया, क्योंकि सदा तपसे ही मनोवांछित सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ ऐसा कहकर धर्मात्मा वह राजा चीर (तपस्वियोंके वस्त्र) और जटाओंको धारण करके तथा अच्छे मन्त्रीको घर सौंपकर तप करनेके लिए चल दिया

॥ ५४ ॥ उस समय इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हरिश्चन्द्रकी कन्या पद्मिनी; जो स्त्रियोंमें उत्तम थी, उसने राजाको जाते हुए देखा
॥ ५५ ॥ उस पतिव्रताने तपके लिए उद्योग करनेवाले पतिको देखकर अपने गहने उतार कर चीरको धारण किया
॥ ५६ ॥ और फिर पतिके साथ गन्धमादन पर्वतपर गई। वहाँ जाकर राजाने दश हजार वर्षतक तप किया ॥ ५७ ॥ किंतु

निर्गतं नृपतिं वीक्ष्य पद्मिनी प्रम-
दोत्तमा। हरिश्चन्द्रस्य तनया इक्ष्वाकुकुलसम्भवा ॥ ५५ ॥ पतिव्रता प्रियं दृष्ट्वा तपस्तप्तुं कृतोद्यमम्।
भूषणानि परित्यज्य चीरमेकं समाश्रयत् ॥ ५६ ॥ जगाम पतिना सार्द्धं पर्वते गन्धमादने। गत्वा
तत्र तपस्तेपे वर्षाणामयुतं नृपः ॥ ५७ ॥ न लेभे तनयं राज्ये ध्यायन्देवं गदाधरम्। अस्थिस्नायु-
मयं कान्तं दृष्ट्वा सा प्रमदोत्तमा ॥ ५८ ॥ अनसूयां महासाध्वीं पप्रच्छ विनयान्विता। भर्तुः प्रतपतः
साध्वि वर्षाणामयुतं गतम् ॥ ५९ ॥ तथापि न प्रसन्नोऽभूत्केशवः कष्टनाशनः। व्रतं मम महाभागे

(preceding line, printed above: धरः। तपस्तप्तुं गृहं न्यस्य सुविचार्य सुमन्त्रिणे ॥ ५४ ॥)

वहाँ विष्णु भगवान्‌का ध्यान करते हुए भी पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। तब उस उत्तम पतिव्रताने अपने पतिको अस्थिपिंजर
देखकर ॥ ५८ ॥ विनययुक्त होकर महासाध्वी अनसूयासे पूछा—हे पतिव्रते! मेरे पतिको तप करते हुए दश हजार वर्ष
व्यतीत हो गये ॥ ५९ ॥ किन्तु दुःखको दूर करनेवाले केशव भगवान् प्रसन्न नहीं हुए। हे पतिव्रताओंमे श्रेष्ठ! तुम मुझे

कोई अच्छा व्रत बतलाओ ॥ ६० ॥ भक्तिके साथ जिसके करनेसे भगवान् मुझपर प्रसन्न हो जावें । और जिससे मुझे बड़ा भारी चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होवे ॥ ६१ ॥ इसके बाद दीक्षायुक्त अपने पतिको जाते हुए देखकर जो पतिके साथ गई थी उस रानीके वचन सुनकर ॥ ६२ ॥ और प्रसन्न होकर कमलनेत्रवाली पद्मिनी रानीसे अनसूया बोली—हे सुन्दर

कथयस्व यथातथम् ॥ ६० ॥ येन प्रसन्नो भगवान् मम भक्त्या प्रजायते । येन मे जायते पुत्रश्चक्रवर्ती बृहत्तरः ॥ ६१ ॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं पतिव्रतपरायणा । यं प्रव्रजन्तं नृपतिं स्वयं वव्राज दीक्षितम् ॥ ६२ ॥ तदा प्रोवाच संहृष्टा पद्मिनीं पद्मलोचनाम् । स्नात्वा मलिम्लुचे सुभ्रु मासद्वादशसंमते ॥ ६३ ॥ त्रिंशद्दिनैश्च भवति मासः पूर्णः शुभानने । तन्मध्ये द्वादशीयुग्मं पद्मिनी परमा तथा ॥ ६४ ॥ उपोष्य तत्प्रकर्तव्यं विधिना जागरैः समम् । शीघ्रं प्रसन्नो भगवान्भविष्यति सुतप्रदः ॥६५॥ इत्युक्त्वाकथयत्सर्वं मया पूर्वोदितं नृप । विधिं व्रतस्य विधिवत्प्रसन्ना कर्दमाङ्गजा ॥ ६६ ॥ श्रुत्वा व्रत-

भौंहों वाली ! बारह माससे अधिक मास मलमास होता है ॥६३॥ हे सुन्दर मुखवाली! तीस दिनका वह मास भी होता है । और उस मासमें पद्मिनी तथा परमा नामकी दो एकादशी होती हैं ॥६४॥ तू उसमें स्नान कर इनका विधिपूर्वक उपवास और जागरण करना । ऐसा करनेसे पुत्र देनेवाले भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँगे ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहकर कर्दम

ऋषिकी कन्या अनसूयाने प्रसन्न होकर मेरी पहली कही हुई व्रतकी सब विधि पद्मिनीको बतला दी ॥ ६६ ॥ अनसूयासे यथोक्त व्रतकी विधिको सुनकर पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे सुन्दर अंगवाली रानीने पूर्ण व्रत किया ॥ ६७ ॥ वह रानी एकादशीको सदा निर्जल तथा निराहार व्रत करती थी। और रात्रिमें गीत-नृत्यके सहित जागरण करती थी ॥ ६८ ॥ तत्पश्चात् व्रतके

विधिं सर्वं यथोक्तमनसूयया । चार्वंग्यकृत तत्सर्वं पुत्रप्राप्तिमभीप्सती ॥ ६७ ॥ एकादश्यां निराहारा सदा जाता च निर्जला । जागरेण युता रात्रौ गीतनृत्यसमन्विता ॥ ६८ ॥ पूर्णे व्रते च वै शीघ्रं प्रसन्नः केशवः स्वयम् । बभाषे गरुडारूढो वरं वरय शोभने ॥ ६९ ॥ श्रुत्वा वाक्यं जगद्धातुः स्तुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता । ययाचेऽद्य वरं देहि मम भर्तुर्बृहत्तरम् ॥ ७० ॥ पद्मिन्यास्तद्वचः श्रुत्वा कृष्णः प्रीतः प्रियंवदः । त्वयाऽहं तोषितो भद्रे प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ७१ ॥ मलिम्लुचश्च मासोऽसौ नाऽन्यो मे प्रीतिदायकः । तन्मध्यै-

पूर्ण होनेपर भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो गये तथा गरुड़पर चढ़कर आये और स्वयं बोले—हे सुन्दरी ! तू वर मांग ॥ ६९ ॥ वह मन्दहास्यवाली भगवान्‌का वचन सुनकर प्रीतिके साथ भगवान्‌की स्तुति करके बोली—हे भगवन् ! आप मेरे पतिको बहुत बड़ा वर दीजिए ॥ ७० ॥ पद्मिनीके उस वचनको सुनकर भगवान् जनार्दन प्रसन्न हुये और प्रिय वचन बोले कि—कल्याणि ! मैं तुझसे संतुष्ट हूँ ॥ ७१ ॥ यह मलमास मुझे अधिक प्रिय है, ऐसा प्रिय दूसरा नहीं है। उसमें

भी मेरी प्रीतिको बढ़ानेवाली सुन्दर एकादशी होती है ॥ ७२ ॥ हे सुन्दरि ! उसका व्रत तूने कही हुई विधिके अनुसार किया है।
हे सुन्दर मुखवाली ! तूने उस व्रतसे मुझको प्रसन्न किया है ॥ ७३ ॥ अतः तेरे पतिको मनोवांछित वर दूँगा। ऐसा कहकर
संसारके दुःखको दूर करनेवाले विष्णु राजासे बोले ॥ ७४ ॥ हे राजेन्द्र ! तुमने मनमे जिसकी इच्छा की है उस वरको मांगो।

कादशी रम्या मम प्रीतिविवर्धिनी ॥ ७२ ॥ सा त्वयोपोषिता सुभ्रु यथोक्तविधिनामुना। तेन त्वया
प्रसन्नोऽहं कृतोऽस्मि सुभगानने ॥ ७३ ॥ तव भर्तुः प्रदास्यामि वरं यन्मनसेप्सितम्। इत्युक्त्वा नृपतिं
प्राह विष्णुर्विश्वार्तिनाशनः ॥ ७४ ॥ वरं वरय राजेन्द्र यत्ते मनसि कांक्षितम्। सन्तोषितोऽहं प्रियया
तव सिद्धिचिकीर्षया ॥७५॥ श्रुत्वाः तद्वचनं विष्णो प्रसन्नो नृपसत्तमः। वव्रे सुतं महाबाहुं सर्वलोकनम-
स्कृतम् ॥ ७६ ॥ न देवैर्मानुषैर्नागैर्दैत्यदानवराक्षसैः। जेतुं शक्यो जगन्नाथ विना त्वां मधुसूदन ॥७७॥
इत्युक्तो बाढमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत। नृपोऽपि सुप्रसन्नात्मा हृष्टः तुष्टः प्रियायुतः ॥ ७८ ॥ समाया-

मैं सिद्धिकी इच्छा करनेवाली तुम्हारी रानीसे प्रसन्न हूँ ॥ ७५ ॥ विष्णुके उस वचनको सुनकर राजा प्रसन्न हुआ
और बोला कि मुझे ऐसा पुत्र दीजिए जिसकी बड़ी-बड़ी भुजायें हों और जिसको सब संसार नमस्कार करे ॥ ७६ ॥ हे
जगत्पति ! हे मधुसूदन ! तुम्हारे विना उसे देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य, दानव और राक्षस, इनमें से कोई भी जीत न सके

त्स्वपुरं रम्यं नरनारीमनोरमम् । स पद्मिन्यां सुतं लेभे कार्त्तवीर्यं महाबलम् ॥ ७९ ॥ न तेन सदृशः कश्चित्त्रिषु लोकेषु मानवः । तस्मात्पराजितः संख्ये रावणो दशकन्धरः ॥ ८० ॥ न तं जेतुं समर्थोऽस्ति त्रिषु लोकेषु कश्चन । विना नारायणं देवं चक्रपाणिं गदाधरम् ॥८१॥ न त्वया विस्मयः कार्यो रावणस्य पराजये । मलिम्लुचप्रसादेन पद्मिन्याश्चाप्युपोषणात् ॥ ८२ ॥ दत्तो देवाधिदेवेन कार्तवीर्यो महाबलः । इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ८३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं

॥ ७७ ॥ जब उसने भगवान्‌से ऐसा कहा तो 'ऐसा ही होगा' यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । अच्छी तरह प्रसन्नचित्त वह राजा भी हृष्ट होकर अपनी स्त्रीके सहित ॥ ७८ ॥ नर-नारियोंसे शोभित अपने सुन्दर नगरमें आया । और राजाकी पद्मिनी रानीसे कार्तवीर्य नामका महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७९ ॥ उसके समान तीनों लोकोंमें कोई पुरुष नहीं था । उस कार्तवीर्यसे रणमें रावण भी परास्त हो गया ॥ ८० ॥ श्रीविष्णु भगवान्‌के विना तीनों लोकोंमें उसे जीतनेके लिए कोई समर्थ नहीं था ॥ ८१ ॥ रावणके परास्त होनेमें तुमको आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि मलमासके प्रसादसे तथा पद्मिनी एकादशीके उपवास करनेसे ॥ ८२ ॥ देवताओंके देवने महाबली कार्तवीर्यको दिया है, यह कहकर प्रसन्नचित्त पुलस्त्यजी चले गये ॥ ८३ ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे पापरहित युधिष्ठिर ! तुमने जो मलमासके शुक्ल पक्षका उत्तम व्रत मुझसे पूछा था सो सब मैंने तुमसे कह दिया ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य इस एकादशीका व्रत करेंगे वे भगवान्‌के पदको प्राप्त करेंगे । हे राजेन्द्र ! यदि तुम भी अभिलषित वस्तुकी इच्छा करते हो तो इस व्रतको करो ॥ ८५ ॥ भगवान्‌के वचन सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए । और उन्होंने

त्वयानघ । मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लाया व्रतमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ ये करिष्यन्ति मनुजास्ते यास्यन्ति हरेः पदम् । त्वमेवं कुरु राजेन्द्र यदि चेष्टमभीप्ससि ॥ ८५ ॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा धर्मराजोऽतिहर्षितः । चक्रे व्रतं विधानेन बन्धुभिः परिवारितः ॥ ८६ ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं पुरा द्विज । पुण्यं पवित्रं परमं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८७ ॥ एवंविधं येऽपि व्रतं मनुष्या भक्त्या करिष्यन्ति मलिम्लुचस्य । उपोषिता यैस्तु सुखप्रदात्री या शुक्लपक्षे भुवि तेऽपि धन्याः ॥ ८८ ॥

भाई-बन्धुओंके सहित विधिपूर्वक इस व्रतको किया ॥ ८६ ॥ सूतजी बोले—हे द्विज ! पहले तुमने जो मुझसे पूछा था वह सब मैंने तुमसे कह दिया । यह व्रत पुण्यवाला और परम पवित्र है, अब फिर और क्या सुनना चाहते हो ॥ ८७ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य इस मलमासके व्रतको भक्तिके साथ करेंगे । अथवा जिन्होंने शुक्ल पक्षकी सुख देनेवाली इस एकादशीका व्रत किया

है वे पृथिवीपर धन्य हैं ॥ ८८ ॥ जो मनुष्य इसकी संपूर्ण विधिको सुनेंगे वे भी थोड़ेसे फलके भागी होवेंगे और जो इसकी सपूर्ण कथाको पढ़ेंगे वे निश्चय ही विष्णुधामको प्राप्त होंगे ॥ ८९ ॥

श्रोष्यन्ति ये तस्य विधिं समग्रं तेऽप्यंशभाजा मनुजाः प्रशस्ताः। ये वै पठिष्यन्ति कथां समग्रां ते वै गमिष्यन्ति हरेर्निवासम् ॥ ८९ ॥

इत्यधिकशुक्लैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २५ ॥



अथाधिककृष्णैकादशीमाहात्म्यम्

युधिष्ठिर उवाच ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य कृष्णा का कथ्यते विभो। किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जगत्पते ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ परमेति समाख्याता पवित्रा पापहारिका। भुक्तिमुक्ति-

युधिष्ठिरजी बोले—हे प्रभो! मलमासके कृष्ण पक्षकी एकादशी कौनसी कही जाती है। और हे जगत् के स्वामी! उसका क्या नाम और क्या विधि है वह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—इस एकादशीका नाम परमा है और यह पवित्र

तथा पापोंको हरनेवाली है। हे युधिष्ठिर ! यह मनुष्योंको भुक्ति, मुक्ति और भोगोंको देनेवाली है ॥ २ ॥ पहले कही हुई विधिके अनुसार शुक्ल पक्षके समान ही इसका भी व्रत करना चाहिए। और इसमें परम भक्तिसे नरोत्तम भगवान्का पूजन करना चाहिए ॥ ३ ॥ अब मैं तुमसे इस मनोहर कथाको कहता हूँ, जो कांपिल्य नगरमें हुई थी और जो मैंने मुनियोंसे सुनी है ॥ ४ ॥

प्रदा नृणां भोगदा च युधिष्ठिर ॥ २ ॥ पूर्वोक्तविधिना कार्या शुक्लायाः सदृशेन वै। पूजयेत्परया भक्त्या नाम्ना देवं नरोत्तमम् ॥ ३ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम्। काम्पिल्यनगरे जातां मुनीनामग्रतः श्रुताम् ॥ ४ ॥ आसीद् द्विजवरः कश्चित्सुमेधा नाम धार्मिकः। तस्य पत्नी पवित्राख्या पातिव्रत्यपरायणा ॥ ५ ॥ कर्मणा केनचिद्विप्रो धनधान्यविवर्जितः। न क्वापि लभते भिक्षां याचन्नपि नरान् बहून् ॥ ६ ॥ न भोज्यं लभते तादृङ्न वस्त्रं नैव मण्डनम्। रूपयौवनमाधुर्यं नारी शुश्रूषते पतिम् ॥ ७ ॥ अतिथिं पूजयेत्क्वापि तदा सा क्षुधिता गृहे। तिष्ठत्येव विशालाक्षी न म्लान-

पहले एक सुमेधा नामका कोई धर्मात्मा ब्राह्मण था। उसकी पवित्रा नामकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी ॥ ५ ॥ किसी कर्मके करनेसे वह ब्राह्मण धन-धान्यसे रहित हो गया। और बहुतसे मनुष्योंसे मांगनेपर भी उसे भिक्षा न मिली ॥ ६ ॥ यद्यपि उस ब्राह्मणको भोजन, वस्त्र और आभूषण कहीं भी नहीं मिले। परन्तु रूप, यौवन और माधुर्यसे युक्त उसकी स्त्री पतिसेवामें लगी रही

॥ ७ ॥ यदि वह कभी अतिथिकी पूजा करती तो आप घरमें भूखी रहती। परन्तु उस विशालाक्षीका मुख भूखसे मलिन नहीं होता था ॥ ८ ॥ उस ब्राह्मण ने देखा कि यह मेरी अच्छे दाँतवाली स्त्री अपने शरीरको कस रही है और मुझ पतिसे कभी भी यह तक नहीं कहती कि घरमें अन्न नहीं है ॥ ९ ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण चित्तमें अपनी स्त्रीके प्रेमबन्धनको

मुखपङ्कजा ॥ ८ ॥ विलोक्य भार्यां सुदतीं कर्शतीं स्वकलेवरम्। न भर्त्तारं कचिच्चैव नास्त्यन्नमिति भाषते ॥ ९ ॥ विचार्य ब्राह्मणश्चित्ते भार्यायाः प्रेमबन्धनम्। निन्दन्भाग्यं स्वकं विप्रः प्रोचे वाक्यं प्रियंवदाम् ॥ १० ॥ कान्ते! करोमि किं कार्यं न मया लभ्यते धनम्। याचयामि नरान् भव्यान्न यच्छन्ति च मे धनम् ॥ ११ ॥ किं करोमि क गच्छामि त्वं मे कथय शोभने। विना धनेन सुश्रोणि गृहकार्यं न सिध्यति ॥ १२ ॥ देह्याज्ञां परदेशाय गच्छामि धनलब्धये। तस्मिन्देशे च यद्भाव्यं भाग्यं तत्रैव लभ्यते ॥ १३ ॥ उद्यमेन विना सिद्धिः कर्मणां नोपलभ्यते। तस्माद् बुधाः

विचारकर अपने भाग्यकी निन्दा करने लगा और अपनी स्त्री प्रियंवदासे बोला ॥ १० ॥ हे कान्ते! मैं क्या कार्य करूँ, मुझे धन नहीं मिलता है। यदि बड़े मनुष्योंसे माँगता हूँ तो वे भी मुझे धन नहीं देते हैं ॥ ११ ॥ हे सुन्दरी! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ, तू ही बता। क्योंकि हे सुन्दर नितम्बवाली! विना धनके घरका कार्य नहीं चलता है ॥ १२ ॥ जो

तू मुझे आज्ञा दे तो मैं धन लेनेके लिए दूसरे देशमें जाऊँ। उस देशमें भी जो होनहार होगा वह भाग्यसे ही मिलेगा (क्योंकि विना भाग्यके कहीं नहीं मिलता है) ॥ १३ ॥ और उद्यमके विना भी कर्मोंकी सिद्धि नहीं होती है। इसलिए पण्डित सदा शुभ उद्यमकी प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥ पतिके ऐसे वचन सुनकर वह सुनयना आँखोंमे आँसू भरकर

प्रशंसंति सर्वथैव शुभोद्यमम् ॥ १४ ॥ श्रुत्वा कान्तस्य वचनं साश्रुनेत्रा विचक्षणा। प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयानतकन्धरा ॥ १५ ॥ त्वत्तो नास्ति सुविज्ञाता त्वयाऽऽज्ञप्ता ब्रवीम्यहम्। हितैषिणो नरा ब्रूयुः शश्वदापद्गता अपि ॥ १६ ॥ पूर्वदत्तं हि लभते यत्र कुत्र महीतले। विना दानं न लभ्येत मेरौ कनकपर्वते ॥ १७ ॥ पूर्वदत्ता हि या विद्या पूर्वदत्तं हि यद्धनम्। पूर्वदत्ता हि या भूमिरिह जन्मनि लभ्यते ॥ १८ ॥ यद्धात्रा लिखितं भाले तत्तत्रैव हि लभ्यते। विना दत्तेन किं क्वापि लभ्यते नैव

और नम्रतासे हाथ जोड़कर नीचा मुख करके कहने लगी ॥ १५ ॥ कि तुमसे अधिक कोई जानकार नहीं है। तुम्हारी आज्ञा पाकर मैं कहती हूँ कि आपत्तिमें स्थिर रहना चाहिए, ऐसा हितैषी जन कहते हैं ॥ १६ ॥ पृथिवीपर जहाँ कहीं भी मिलता है वह सब पूर्वजन्मका दिया हुआ ही मिलता है। विना दिये तो सोनेके सुमेरु पर्वतपर भी नहीं मिलता है ॥ १७ ॥ पूर्वजन्ममें दी हुई जो विद्या है, पूर्व जन्ममें दिया हुआ जो धन है और पूर्वजन्ममें दी हुई जो भूमि है

वह इस जन्ममें भी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ ब्रह्माने जो ललाटमें लिख दिया है वह सब जगह मिलता है। विना दिये तो कहीं कुछ भी नहीं मिलता है ॥ १९ ॥ हे पतिदेव ! पूर्वजन्ममें मैंने और तुमने कभी सुपात्रोंको थोड़ा या बहुत धन नहीं दिया है ॥ २० ॥ इस देशमें या परदेशमे सब जगह दिया हुआ ही मिलता है। और भगवान् अन्न मात्र तो विना दिये भी

किञ्चन ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र न मया न त्वया क्वचित्। सत्पात्राणां करे दत्तं स्वल्पं भूर्यपि सद्धनम् ॥ २० ॥ इह देशे परे वापि दत्तं सर्वत्र लभ्यते। अन्नमात्रं तु विश्वेशो विना दत्तं च यच्छति ॥ २१ ॥ तस्मादत्रैव भो विप्र स्थातव्यं भवता मया। भवद्विना न तिष्ठामि क्षणमात्रं महामुने ॥ २२ ॥ न माता न पिता भ्राता न श्वश्रूः श्वशुरो जनाः। न सत्कुर्वन्ति तां केऽपि स्वजनाश्च पुरो गताः ॥२३॥ भर्तृहीनां विनिन्दन्ति दुर्भगेति वदन्ति ताम्। तस्मादत्र स्थिरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ॥ २४ ॥ भवतां भाग्ययोगेन प्राप्तिश्चात्र भविष्यति। श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं स्थितस्तत्र विचक्षणः ॥ २५ ॥ ताव-

दे देता है ॥ २१ ॥ इसलिए हे ब्राह्मण ! तुमको और मुझको यहीं रहना चाहिए। हे महामुने ! तुम्हारे विना तो मैं क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकती हूँ ॥ २२ ॥ क्योंकि अपने पतिके विना माता, पिता, भाई, सास, ससुर, कोई भी स्त्रीका आदर नहीं करते हैं ॥ २३ ॥ पतिहीन स्त्रीकी सब निन्दा करते हैं और उसे दुर्भगा नामसे पुकारते हैं। अतः यहाँपर ही रहकर आनन्दपूर्वक

विहार करो ॥ २४ ॥ तुम्हारे भाग्यमें जो होगा वह यहीं मिल जायगा । इस प्रकार स्त्रीके वचन सुनकर वह सुमेधा ब्राह्मण वहीं ठहर गया ॥ २५ ॥ इतनेमें वहाँ मुनिश्रेष्ठ कौण्डिन्यजी आ गये । उनको देखकर सुमेधा ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥ २६ ॥ उसने सहसा स्त्रीसहित उठकर उनको शिर नवाकर बार-बार प्रणाम किया । और बोला कि आज आपके दर्शनसे मैं धन्य और कृतकृत्य हूँ, मेरा जीवन सफल हुआ ॥ २७ ॥ मुझे बड़े भाग्यसे आपके दर्शन हुए । ऐसा कहकर उसने मुनीश्वरको

तत्र समायातः कौंडिन्यो मुनिसत्तमः । दृष्ट्वा समागतं हृष्टः सुमेधा द्विजसत्तमः ॥२६॥ सभार्यः सहसोत्थाय ननाम शिरसाऽसकृत् । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥२७॥ यद्दृष्टोऽसि महद्भाग्यादित्युवाच मुनीश्वरम् । दत्त्वा सुविष्टरं तस्मै पूजयामास तं द्विजम् ॥२८॥ भोजयित्वा विधानेन पप्रच्छ प्रमदोत्तमा । विद्धन्केन प्रकारेण दारिद्र्यस्य क्षयो भवेत् ॥२९॥ विना दत्तं कथं लभ्येद्धनं विद्यां कुटुंबिनीम् । मां मे भर्त्ता परित्यज्य गन्तुकामोऽद्य वर्त्तते ॥३०॥ अन्यदेशं पराँल्लोकान् याचितुं परपत्तने । रक्षितोऽस्ति

आसन दिया और उनकी पूजा की ॥ २८ ॥ उनको अच्छी प्रकार भोजन कराकर वह श्रेष्ठ स्त्री पूछने लगी कि हे मुनिश्रेष्ठ ! हमारी दरिद्रता कैसे नष्ट होगी ॥ २९ ॥ क्योंकि पूर्वजन्ममें विना दिये धन, विद्या और स्त्रीकी प्राप्ति कैसे हो सकती है । आज मेरा पति मुझे छोड़कर ॥ ३० ॥ दूसरे नगरमें अन्य देशके रहनेवाले पुरुषोंसे माँगनेके लिये जाना चाहता है ।

परन्तु हे मुनीश्वर ! मैंने उसे कई बड़े-बड़े कारणोसे रोका है ॥३१॥ और कहा है कि विना दिये कुछ नही मिलता है। इस प्रकार उसके जानेका निवारण किया है। हे मुनीन्द्रों मे श्रेष्ठ ! इतने ही मे मेरे भाग्यसे आप यहाँ आ गये ॥ ३२ ॥ अब आपकी कृपासे मेरी दरिद्रता निश्चय ही शीघ्र नष्ट हो जायगी। हे मुनिश्रेष्ठ ! किस उपायसे मेरा दारिद्रय निश्चय ही दूर हो जायगा ॥३३॥

मया विद्वन् हेतुभिः कैर्महत्तरैः ॥३१॥ नादत्तं लभ्यते किञ्चिदित्युक्त्वा स निवारितः। मम भाग्यान्मुनीन्द्राद्य त्वमत्रैव समागतः ॥ ३२ ॥ त्वत्प्रसादाद्दरिद्रं मे शीघ्रं नश्यत्यसंशयम्। केनोपायेन विप्रेन्द्र दरिद्रं नश्यति ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ कथयस्व कृपासिन्धो व्रतं तीर्थं तपादिकम्। श्रुत्वा तस्याः सुशीलाया भाषितं मुनिपुङ्गवः ॥ ३४ ॥ प्रोवाच प्रवरं चित्ते विचार्य व्रतमुत्तमम्। सर्वपापौघशमनं दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥ ३५ ॥ परमा नाम विख्याता विष्णोस्तिथिरनुत्तमा। मलिम्लुचे तु या कृष्णा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ ३६ ॥ तस्या उपोषणं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत्। विधिना जागरैः साकं गीतनृत्यादिकं चरेत् ॥ ३७ ॥ धनदेन पुरा चीर्णं व्रतमेतत्सुशोभनम्। तदा तुष्टेन रुद्रेण धनानामधिपः कृतः ॥ ३८ ॥

हे दयाके सागर ! कोई व्रत, तीर्थ या तप आदि बतलाइए। इस प्रकार मुनिराजने उस सुशीलाके वचन सुनकर ॥ ३४ ॥ और मनमे विचार कर सब पापोंके समूह और दुःख-दारिद्र्यका नाश करनेवाला उत्तम व्रत बतलाया ॥ ३५ ॥ कि परमा नामकी एकादशी अति उत्तम है। जो मलमासके कृष्ण पक्षमे मुक्ति और भुक्तिके फलको देती है ॥ ३६ ॥ उसका व्रत करके

मनुष्य धनधान्यसे युक्त हो जाता है। उस दिन गीत-नृत्य आदिके सहित विधिपूर्वक जागरण करे ॥ ३७ ॥ पहले इस उत्तम व्रतको कुवेरने किया था। इससे प्रसन्न होकर शिवने कुवेरको धनका स्वामी बना दिया ॥ ३८ ॥ पहले हरिश्चन्द्रने भी इस व्रतको किया था, जिससे फिर उसे स्त्री और निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसलिए हे दीर्घनेत्रे ! इस उत्तम व्रतको विधिपूर्वक जागरणके साथ करो ॥ ४० ॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार कहकर मुनिने उससे व्रतकी सब विधि

हरिश्चंद्रेण च कृतं पुरा क्रीतसुतेन वै। पुनः प्राप्ता प्रिया तेन राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ३९ ॥ तस्मात्कुरु विशालाक्षि व्रतमेतत्सुशोभनम्। विधिना विधियुक्तेन समं जागरणेन च ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वा तद्विधिं सर्वं कथयामास पाण्डव। प्रीत्या परमसन्तुष्टस्ततो भक्त्या प्रसादतः ॥ ४१ ॥ पुनः प्रोवाच तं विप्रं पञ्चरात्रिव्रतं शुभम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च प्राप्यते ॥ ४२ ॥ परमादिवसे प्रातः कृत्वा पौर्वाह्णिकं विधिम्। कुर्यात्सुनियमाञ्छक्त्या पञ्चरात्रिव्रतादरात् ॥ ४३ ॥ प्रातः स्नात्वा निराहारो यस्तिष्ठेद्दिनपञ्चकम्। स गच्छेद्वैष्णवं स्थानं पितृमातृप्रियासमम् ॥ ४४ ॥ एकाशनस्तु यो भूयाद्दिनानां

कह दी। तत्पश्चात् प्रीतिसे परम संतुष्ट होकर भक्तिके प्रभावसे ॥ ४१ ॥ उस ब्राह्मणको पाँच रात्रिका उत्तम व्रत बतलाया। जिसका अनुष्ठान करनेसे मुक्ति और भुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ परमा एकादशीके दिन प्रातःकाल पूर्वकालकी क्रिया करके आदरसे शक्तिके अनुसार पञ्चरात्रि व्रतके सुन्दर नियमको करे ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य पाँच दिन प्रातःकाल स्नान

जो मनुष्य पाँच दिन तक एक बार भोजन करके निराहार रहता है । वह माता-पिता और स्त्रीके साथ विष्णुलोकको जाता है ॥४४॥ जो मनुष्य पाँच दिन स्नान करके ब्राह्मणको भोजन कराता है । वह सब पापोंसे छूटकर स्वर्गलोकको जाता है ॥४५॥ जो मनुष्य सुन्दर जलसे भरा हुआ घड़ा ब्राह्मणको करता है वह मानो विधिसे देवता, दैत्य और मनुष्योंके सहित सबको भोजन कराता है ॥४६॥

स्नात्वा यो भोजयेद्विप्रं दिनानां पञ्चकं नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ ४५ ॥ पूर्णकुम्भं सुतोयेन यो ददाति द्विजातये ॥ भोजितं तेन विधिना सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥ तिलपात्रं तु यो दद्यात्स्नात्वा पञ्चदिनं नरः । स दत्तं तेनैव सकलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ ४७ ॥ ब्रह्मचर्येण यस्तिष्ठेद्दिनानां पञ्चकं नरः ॥ स स्वर्गे भुक्त्वा विपुलान् भोगान्सूर्यलोके महीयते ॥ ४८ ॥ एवंविधं व्रतं साध्वि कुरु त्वं पतिना शुभे । धन-धान्ययुता भूत्वा स्वर्गं यास्यसि सुव्रते ॥ ५० ॥ भुञ्जते भोगान् स्ववेंश्याभिः समं मुदा ॥ ४९ ॥ इत्युक्ता सा व्रतं चक्रे कौण्डिन्येन यथोदितम् ।

जो मनुष्य पाँच दिन स्नान करक तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है । वह मानो चराचरके सहित संपूर्ण ब्रह्माण्ड दान करता है ॥४७॥ जो जन पाँच दिन तक ब्रह्मचर्यसे रहता है । वह स्वर्ग देता है वह संपूर्ण भोगोको भोगकर सूर्यलोकमे जाता है ॥४८॥ हे शुभे ! तू पतिके सहित इस विधिसे व्रत कर । हे सुव्रते ! इसके लोकमे अप्सराओके साथ प्रसन्नतासे भोगोंको भोगता है ॥४९॥ इसके बाद उसने मलमासमे यथोक्त विधिसे पति-सहित करनेसे तू धन-धान्यसे युक्त होकर स्वर्गलोकको जायगी ॥ ५० ॥

स्नान करके कौण्डिन्य ऋषिके बतलाये हुए व्रतको किया ॥ ५१ ॥ परमा एकादशीका पाँच रातका व्रत पूर्ण हो जानेपर पतिसहित उस सुमेधाकी स्त्रीने राजभवनसे आते हुए राजकुमारको देखा ॥ ५२ ॥ स्वयं विधातासे प्रेरित उस राजपुत्रने सुमेधा ब्राह्मणको सब सुन्दर वस्तुओंसे युक्त एक नवीन भवन दिया। और विधिपूर्वक उस ब्राह्मणको वसाया ॥ ५३ ॥ उसकी

भर्त्रा समं भावयुता स्नात्वा मासि मलिम्लुचे ॥ ५१ ॥ पञ्चरात्रव्रते पूर्णे परायाः प्रियसंयुता । सापश्यद्राजभवनादायान्तं नृपनन्दनम् ॥ ५२ ॥ दत्त्वा नवीनं भवनं भव्यवस्तुसमन्वितम् । वासयामास विधिना विधिना प्रेरितः स्वयम् ॥ ५३ ॥ दत्त्वा ग्रामं वृत्तिकरं ब्राह्मणाय सुमेधसे । प्रसन्नस्तपसा राजा तं स्तुत्वा स्वगृहं ययौ ॥ ५४ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य परायाः परमादरात् । उपोषणात्सकृष्णायाः पञ्चरात्रव्रतेन च ॥ ५५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसौख्यसमन्वितः । भुक्त्वा भोगान् प्रियासार्द्धमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥५६॥ ये करिष्यन्ति मनुजाः पराया व्रतमुत्तमम् । पञ्चरात्रभवं पुण्यं मया वक्तुं न शक्यते

जीविकाके लिए ग्राम देकर राजा उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्राह्मणकी स्तुति करके अपने घरको चला गया ॥ ५४ ॥ तत्पश्चात् मलमासके कृष्ण पक्षकी परमा एकादशीका परम आदरसे उपवास करने से पञ्चरात्रिके व्रतसे ॥ ५५ ॥ वह ब्राह्मण सब पापोंसे छूटकर, सब सुखोंसे युक्त होकर स्त्रीसहित सब भोगोंको भोगकर विष्णुके लोकको गया ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य परमा एकादशीके उत्तम व्रतको करेंगे, उनके पुण्यको और पञ्चरात्रि व्रतके पुण्यको मैं भी कहनेमें असमर्थ

हूँ ॥ ५७ ॥ जिसने इसका व्रत किया है उसने पुष्कर आदि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियोंमें स्नान, और गोदान आदि दान ये सब किये हैं ॥ ५८ ॥ जिसने यह व्रत किया मानो उसने गया श्राद्ध किया, अपने पितरोंको संतुष्ट किया तथा व्रतखण्डमें कहे हुए संपूर्ण व्रतोंको कर लिया ॥ ५९ ॥ जिस प्रकार दो चरण वालों (मनुष्यों) में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, चार चरण वालोंमें गौ श्रेष्ठ है तथा देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार महीनोंमें मलमास श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ मलमासमें पंचरात्रि व्रत

॥५७॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । धेनुमुख्यानि दानानि तेन चीर्णानि सर्वथा॥५८॥ गयाश्राद्धं कृतं तेन पितरः परितोषिताः । व्रतानि तेन चीर्णानि व्रतखण्डोदितानि वै ॥ ५९-॥ द्विपदां ब्राह्मणः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् । देवानां वासवः श्रेष्ठस्तथा मासा मलिम्लुचः ॥६०॥ मलिम्लुचे पञ्चरात्रं महापापहरं स्मृतम् । पञ्चरात्रे च परमा पद्मिनी पापशोषणी ॥ ६१ ॥ साप्यशक्तैः प्रकर्तव्या यथाशक्त्या विचक्षणैः । मानुषं जनुरासाद्य न स्नातो यैर्मलिम्लुचः ॥६२॥ ते जन्मघातिनो नूनं नोपोष्य हरिवासरे । चतुरशीति लक्षाणि लभन्ते योनिसंकटे ॥ ६३ ॥ प्राप्यते मानुषं जन्म दुर्लभं पुण्यसञ्चयैः । तस्मात्कार्यं

महापापोंका नाश करनेवाला है । पंचरात्रिमें भी परमा और पद्मिनी दोनों एकादशी पापोंको हरनेवाली हैं ॥ ६१ ॥ यह एकादशी बुद्धिमानोंको अशक्त होनेपर भी यथाशक्ति करनी चाहिए । जिन्होंने मनुष्यका जन्म पाकर भी मलमासका व्रत ॥६२॥ तथा हरिवासर का व्रत नहीं किया है वे निश्चय ही अपने जन्मके घाती हैं । और वे मनुष्य कष्टप्रद चौरासी लाख योनियोंमें

घूमते हैं ॥ ६३ ॥ यह दुर्लभ मनुष्यजन्म पुण्यके समूहसे प्राप्त होता है । इसलिए परमाका यह शुभ व्रत यत्नपूर्वक करना चाहिए ॥ ६४ ॥ कृष्णजी बोले कि हे पापरहित युधिष्ठिर ! तुमने जो मलमासकी परमा एकादशीका फल पूछा था वह सब मैंने तुमसे कह दिया ॥ ६५ ॥ हे नृप ! मैंने सब तुमसे कहा है इसलिए तुम सावधान होकर इसे करो ॥ ६६ ॥ इसके बाद कृष्णसे

प्रयत्नेन परमाया व्रतं शुभम् ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ । मलिम्लुचस्य मासस्य परमायाः समुद्भवम् ॥ ६५ ॥ तत्सर्वं ते समाख्यातं कुरुष्वावहितो नृप ॥ ६६ ॥ माहात्म्यं यदुपतिनोदितं निशम्य तच्चक्रे व्रतमथ प्रियासमेतः । भुक्त्वाऽसौ दिवि भुवि दुर्लभांश्च भोगान्नीतोऽसौ सुरवरमंदिरं सुहृष्टः ॥ ६७ ॥ येऽप्येवं भुवि मनुजा मलिम्लुचस्य सुस्नाताः शुभविधिना समाचरंति । ते भुक्त्वा दिवि विभवं सुरेन्द्रतुल्यं गच्छेयुस्त्रिभुवनवंदितस्य गेहम् ॥ ६८ ॥

कहे हुए माहात्म्यको सुनकर युधिष्ठिरने स्त्री-भाई आदि सबके सहित व्रतको किया और स्वर्ग तथा पृथिवीमे भी दुर्लभ भोगोंको भोगकर, अन्तमें प्रसन्नचित्त वह विष्णुके मन्दिरमें पहुँचाया गया ॥ ६७ ॥ पृथिवी पर जो मनुष्य सुन्दर विधिसे मलमासमें स्नान करेंगे, वे स्वर्गमें इन्द्रके समान ऐश्वर्य भोगकर तीनों लोकोंके पूजनीय विष्णु भगवान्‌के धामको जायेंगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदधिककृष्णैकादशीपरमामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २६ ॥